D
2·1

सूची-पत्र

पृष्ठाङ्क

द्वितीय प्रकाश

विषय | पृष्ठाङ्क

तृतीय प्रकाश

चतुर्थ प्रकाश

विषय पृष्ठाङ्क

पञ्चम प्रकाश

षष्ट प्रकाश

सप्तम प्रकाश

अष्टम प्रकाश

नवम प्रकाश

दशम प्रकाश

एकादश प्रकाश

त्रयोदश प्रकाश

वक्तव्य

भारत वर्ष में योग की महिमा सदा से ही चली आती है, और हमारे पूर्वज योग के ज्ञाता ऋषि, मुनि, योगियों ने इस विषय पर कई एक ग्रंथ लिखे हैं जो अद्यावधि हम लोगों के व्यवहार में आते हैं, परन्तु योग का विषय जटिल होने से भिन्न २ आचार्यों द्वारा विभिन्न प्रकार से लिखा गया है, इसलिये उन ग्रंथों से किसी अनुभवी योगी की सहायता के बिना योग को समझना, सीखना, और करना सर्व साधारण के लिये सहज साध्य नहीं है, तथापि योग के विषय में लोगों की महान् उच्च धारणा है कि योग ही सर्वोपरि विज्ञान और परम कल्याण का प्रशस्त पथ है, वास्तविक ही योग का विज्ञान सर्वोपरि होने पर भी उसका यथातथ्य निहित गूढ़ रहस्य लोग जानने नहीं पाते कि योग कैसे करना चाहिये, योग का फल क्या है और कैसे मिलता है। इस समस्या को सुलझाने के लिये महा योग के प्रवर्तक परमकारुणिक पूज्यपाद श्रीमद्-गुरु देव की इच्छा थी कि महायोग के वास्तविक विज्ञान को ग्रंथ रूप से प्रकाशित किया जाय ताकि योग के जिज्ञासु लोग समझ सकें कि योग क्या है और कैसा है।

अतएव उनकी आज्ञानुसार उनकी ही परम कृपा से इस ग्रंथ की रचना हुई है, इस महायोग के विज्ञान के विषय को

ग्रंथाकार लिखने के पूर्व इस के साधन करने वाले साधकों को इस विषय में जो आवश्यक उपदेश दिया जाता था वह साधकों के आग्रह से अन्य साधकों के लाभार्थ प्रचलित प्रणाली अनुसार ग्रंथ रूप में प्रकाशित करने का विचार हुआ, परन्तु इस महा योग के विज्ञान के समग्र विषय क्रम वार किसी एक ग्रंथ में नहीं होने के कारण यह कार्य सहज साध्य नहीं था, क्योंकि जितने भी आर्ष ग्रंथ हैं उन सब ही में महायोग का निहित तत्त्व—गुप्त विषय सांकेतिक रूप से मिलता है, उसको साधारण लोग तो समझ भी नहीं सकते परन्तु संस्कृत की अच्छी योग्यता वाले अनुभव रहित विद्वान् पुरुषों के लिये भी समझना और समझाना सहज नहीं है। तथापि गुरु देव की आज्ञा और साधकों की इच्छा के वशवर्ती होकर यथामति योग के विषयों को वेद उपनिषद् दर्शन तथा तंत्र पुराणादि ग्रंथों से संग्रह कर इस ग्रंथ में क्रमबद्ध किया गया है ताकि हरेक जिज्ञासु महायोग के रहस्यमय विज्ञान को सरलता से समझ सके।

साधारणतया इस ग्रंथ में जितने भी प्रमाण दिये गये हैं वे सब वेद, उपनिषद्, दर्शन, मंत्र, तंत्र, इतिहास पुराणादि आर्ष ग्रंथों के ही हैं उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। परन्तु पूर्वापर की विषय संगति मिलाने के लिये श्लोकों को ज्यों का त्यों कहीं २ आगे पीछे जोड़ दिया गया है। तीन श्लोक मात्र छोड़कर और सभी श्लोक पूर्व कथित शास्त्रोक्त हैं, जिनका द्वितीय संस्करण में जिन २ ग्रंथों से वे उद्धृत किये गये उनके नाम सहित उल्लेख किया जायगा।

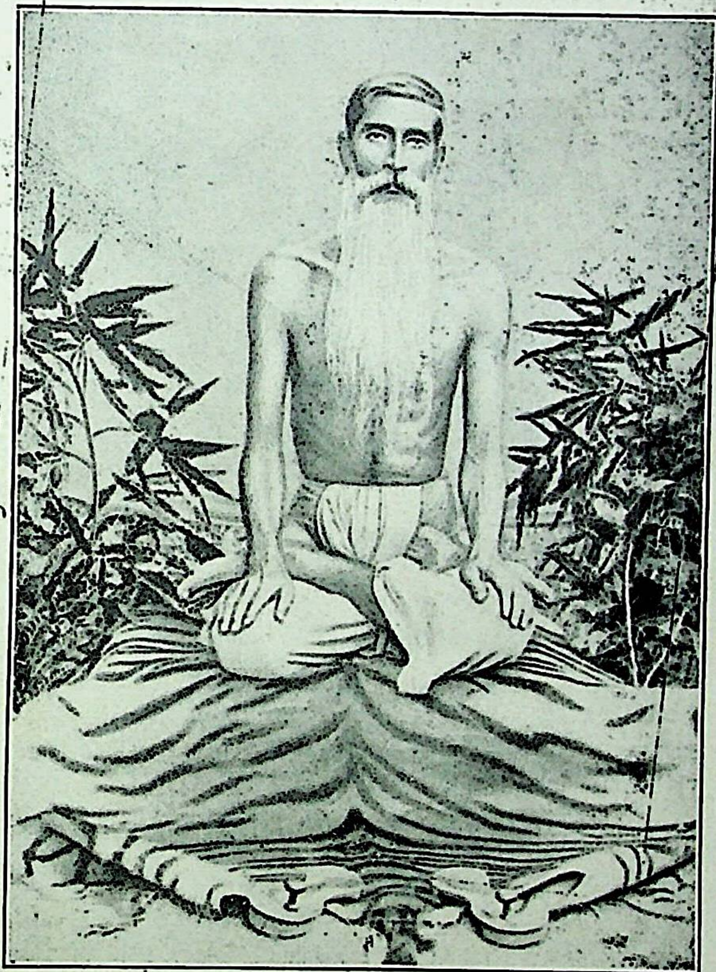
इस समय लोगों के आग्रह से शीघ्र ग्रंथ प्रकाशित करने के कारण समय के अभाव से श्लोकों के साथ ग्रंथों के नाम अध्याय इत्यादि दिये नहीं जासके, इसके अतिरिक्ति और भी बहुत सी छापे की त्रुटियां रह गई हैं वे सब द्वितीय बार ठीक करने की चेष्टा की जायगी । इस ग्रंथ में श्लोकों के शब्दार्थ की अपेक्षा विशेष करके भावार्थ को ही ग्रहण करने की चेष्टा की है संभव है कि कोई संस्कृत जानने वाले पाठक पसन्द न करें, तथापि सद् उद्देश्य से प्रेरित्त होकर वास्तविकता को ही समझने और समझाने का प्रयत्न किया गया है अतएव विज्ञ पाठक गण इससे अपना थोड़ा बहुत कुछ भी लाभ समझेंगे तो ईश्वर कृपा से लेखक का परिश्रम सार्थक होगा, इति ओम् ।

देहली,
चैत्र बदि प्रतिपदा १९९४

योगानन्द ब्रह्मचारी
(Y. B.)



महायोग प्रवर्तक



ब्रह्मलीन श्री श्री १००८

श्रीमद् गुरु नारायण तीर्थ देव, योगाचार्य



पर ब्रह्मणे नमः

अथ महा योग विज्ञान प्रारम्भः

❀ मङ्गलाचरणम् ❀

शिवं नत्वा शिवां चापिशिवसुनुं पुनः पुनः ।
शिवं कुर्वन्तु सर्वेऽपि सर्वदा सदनुग्रहाः ॥

यतो जातानि भूतानि जीवन्ति यदनुग्रहात् ।
यस्मिन्नेव लयं यान्ति तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुषः सूर्योऽजायत ।
यद्विभूति र्जगत्सर्वं तस्मै चिद्ब्रह्मणे नमः ॥

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्र भाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥

नित्यं शुद्धनिराभासं निराकारं निरञ्जनम् ।
नित्यबोधचिदानन्दं गुरुब्रह्म नमाम्यहम् ॥

देव गुरु वन्दनम्



यो भक्त विघ्नौघ विनाश शीलः
सत्सिद्धि सम्पादन भूरि लीलः ।
श्रेयो निमित्तं विनयेन नित्यम्,
तं भावये योगिजनैः समित्थम् ॥१॥

यो देव देवः शमिलोक सेवः
जागर्ति संसार हिते सदैव ।
तं योगिगम्यं भुवनैकनम्यं
नमामि भक्त्या भव नाम धन्यम् ॥२॥

शक्त्या सनाथं यतिलोक नाथं
गङ्गाधरंभावितयोग पाथम् ।
सिद्धेश्वरं लोकहितैषिवर्य्यं
नमामि भक्त्याद्भुत साधु चर्य्यम् ॥३॥

नारायणं योग कला प्रदानं
शान्त स्वभावं कलितात्मभानम् ।
भक्त प्रियं दिव्य गुणावतारं
वन्दे गुरुं तं परमार्थ सारम् ॥४॥

सिद्धेश्वरा ये भुवनोपकारं
वितन्वते योगगतिप्रसारम् ।
ताँल्लोक कल्याण विधान लग्नान्
सश्रद्धमीडे शिव भक्ति मग्नान् ॥५॥

ओ३म्

अथ महायोग विज्ञान



प्रथम प्रकाश

मनुष्य की प्रभुता

एक द्वित्रि चतुष्पादो बहु पादस्तथाऽपदः ।
बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥
सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या ।
वृक्षान्सरीसृप पशून्खगदंशमत्स्यान् ॥
तैस्तैरतुष्ट हृदयः पुरुषं विधाय ।
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥

भगवान, ने कहा कि मैंने एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद, चतुष्पाद एवं बहुपाद तथा अपाद रूप से नाना प्रकार के प्राणियों के शरीरों की रचना की है परन्तु उन सब में मनुष्य शरीर ही मुझे अधिक प्रिय है श्री भगवान् ने अपनी अजेय आत्म शक्ति माया से वृक्ष योनि तथा सरक के चलने वाले सर्प, छपकली, कीड़े-मकोड़े,

मक्खी-मच्छर एवं पशु-पक्षी आदि स्थलचर जीव-जन्तु और जलचर मत्स्य मकर ग्राह आदि नाना प्रकार की योनियां रचीं, परन्तु उनसे सन्तुष्ट न हो कर फिर भगवान् ने ब्रह्म दर्शन की योग्यता वाले इस मनुष्य शरीर को रचा, धर्म, अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करने के सामर्थ्य वाला तथा सब योनियों का भोक्ता इस पुरुष शरीर को रच कर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुये, इसलिये हे मनुष्यो ! परमात्मा ने तुम्हारे ही उपभोगार्थ जगत् में सब कुछ बनाया है, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, चर-अचर इत्यादि सब के तुम स्वामी हो; जगन्नियंता ने तुम्हें दिव्य ज्ञान के लिये बल बुद्धि तेज युक्त सुन्दर शरीर दिया, तुम्हारे ही बुद्धि बल से सद्विद्या सत् शास्त्र अज्ञात को ज्ञात कराते हैं, तुम ही ईश्वर के ज्ञान की सारी सामग्री हो, ईश्वर का क्रीड़ा स्थान सर्वत्र होने पर भी तुम्हारे मनुष्य शरीर से भगवान अपना भाव प्रकट करते हैं।

ईश्वर ज्ञान की आवश्यकता

तुम्हें स्मृति होगी कि इस सृष्टि का आधिपत्य किसी व्यक्ति विशेष के लिये नहीं है परन्तु तुम्हारे ही परस्पर के कर्म फल भोगार्थ है, अत एव जिनकी शासन सत्ता से सारा ब्रह्माण्ड स्वयं कार्य कर रहा है, जिनकी शासन सत्ता सब को ही माननी पड़ती है ऐसे ब्रह्माण्डाधिपति परमेश्वर की महिमा तुम्हें जाननी चाहिये, उनके अनुग्रह के बिना तुम त्राण नहीं पा सकते; जन्म मरण रूप दुःख भोगते २ तुम्हारा वास्तविक ज्ञान विकृत हो गया

है ऐसे संशय युक्त विपरीत ज्ञान से तुम अपना अभीष्ट-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कुछ नहीं पा सकते, तुम्हें चाहिए कि सावधान होकर सत् असत् का विचार करके सत् का ग्रहण करना और और असत् को त्यागना।

तुम्हारे कोटि कोटि जन्म हो गये

जब से सृष्टि हुई है तब से आज तक तुम ईश्वर से नहीं मिल सके, प्रलय में तुम ईश्वर से मिलोगे, परन्तु अज्ञान रूप से ही मिलोगे, ऐसे मिलने से क्या लाभ ? जैसे किसी व्यक्ति को क्लोरो फ़ार्म करके चाहे कहीं ले जांय या कुछ भी करें उसे उसका भान नहीं होता, तद्रूप प्रकृति तुम्हें प्रलयकाल में अपने में लेकर ईश्वर में लीन होगी, उस अवस्था में तुम्हारा ज्ञान अन्धकारमय कर्मफल से आवृत होगा, सो कल्पारम्भ में पुनः सुख दुःख भोगने के लिये तुम्हारे शरीर बनते रहेंगे, इसी तरह जन्म मरण (आवागमन) का चक्कर काटते २ तुम्हारे कोटि २ जन्म हो गये और होते रहेंगे ; आज तक तुमने जितने शरीर धारण किये हैं उनका हिसाब लगाके देखोगे तो तुम्हें आश्चर्य होगा कि तुम हो कहां ?

कल्प की गणना

पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ।
द्वापरञ्च कलिश्चैव युगान्येतानि कृत्स्नशः ॥

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षान्तं तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः
इतरेषुससन्ध्येषु सन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥
एतद्द्वादश साहस्रं साधिकञ्च चतुर्युगम् ।
चतुर्युग सहस्रं यत् स कल्प इति कथ्यते ॥

जितने समय में पलक लगता है उतने समय को निमेष कहते हैं, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है । तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक दिन रात होता है । पंद्रह दिन रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास होता है । एक मास का पितरों का दिन रात–शुक्ल पक्ष पितरों का दिन, और कृष्ण पक्ष रात्रि है । छः महीने का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है । मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक दिनरात होता है, उसमें उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन रात्रि है । मनुष्यों के तीस वर्ष में देवताओं का एक मास होता है और मनुष्यों के ३६० वर्ष में देवताओं के बारह मास का एक दिव्य वर्ष होता है, उस दिव्य वर्ष के प्रमाण से शास्त्रों में युग संख्या कही गई है ।

शास्त्रकार विद्वानों ने सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि नाम के चार युग माने हैं । इनमें ४००० दिव्य वर्षों का सत्ययुग, ४०० दिव्य वर्षों की उसकी सन्ध्या और ४०० दिव्य वर्षों का सन्ध्यांश

होता है। युग के प्रथम भाग में सन्ध्या और अन्त में सन्ध्यांश होता है। परन्तु सत्ययुग के विना दूसरे युगों के सन्ध्या और सन्ध्यांश एक एक पाद कम होते हैं अर्था त्रेतायुग ३००० दिव्य वर्ष और उसकी सन्ध्या ३०० वर्ष, तथा सन्ध्यांश ३०० वर्ष, द्वापर २००० दिव्य वर्ष, उसकी सन्ध्या सन्ध्यांश दो दो सो वर्ष, कलियुग की आयु १००० दिव्य वर्ष तथा सन्ध्या और सन्ध्यांश एक एक सौ वर्ष, इस प्रकार चारों युग सन्ध्या और सन्ध्याशों सहित १२००० दिव्य वर्षों के होते हैं। चारों युग की संख्या मिल कर १२००० दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है। हजार चतुर्युगी का एक कल्प कहलाता है।

युगों की आयु के प्रमाण में मनुष्यों के मानुषीय वर्षों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

युगों के नाम	मानुषी वर्ष	पूर्व संध्या के वर्ष	पर संध्या के वर्ष	योग।
सत्ययुग	१४४००००	१४४०००	१४४०००	१७२८०००
त्रेतायुग	१०८००००	१०८०००	१०८०००	१२९६०००
द्वापरयुग	७२००००	७२०००	७२०००	८६४०००
कलियुग	३६००००	३६०००	३६०००	४३२०००

इस हिसाब से एक चतुर्युगी में देवताओं के १२००० दिव्य वर्ष होते हैं और मनुष्यों के ४३२०००० मानुषीय वर्ष होते हैं

और ऐसी ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। एक कल्प में १४ मन्वन्तर या मनु होते हैं, इस प्रकार हजारों मन्वन्तर और कल्प बीत गये, उन्हें कोई नहीं जान सकता न उनकी संख्या हो सकती है। एक कल्प में ब्रह्मा का एक दिन होता है और उतनी ही बड़ी रात्रि होती है, इस प्रमाण से सौ वर्ष को ब्रह्मा की आयु मानी गई है। उसमें ब्रह्मा जी के ५० वर्ष बीत चुके हैं इक्यावनवें का आरम्भ हो रहा है। इस कल्प में जब से सृष्टि आरम्भ हुई है यह अट्ठाईसवां कलियुग चलता है। १७२८००० वर्षों का सत्ययुग, १२९६००० वर्षों का त्रेतायुग ८६४००० वर्षों का द्वापरयुग और ४३२००० वर्षों का कलियुग होता है। उसमें भी इस कलियुग के ५०३५ वर्ष व्यतीत हुये हैं, इस संख्या को मिलाकर देखोगे तो पता चलेगा कि तुम्हें जन्म लेते और मरते कितने लक्ष लक्ष वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथापि तुम्हें अभी तक विश्राम नहीं मिला। यदि इस मनुष्य जन्म में भी तुमने अपने कल्याण का कोई उपाय न किया तो तुम्हारा और कोई ठिकाना नहीं है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के समय की संज्ञा

चतुर्युगसहस्राणि दिनमेकं पितामहम्।
पितामहसहस्राणि विष्णोश्च घटिका स्मृता॥
विष्णोरेक सहस्राणि पलमेकं महेश्वरम्।
महेश्वरसहस्राणि शक्तेरर्द्धपलं भवेत्॥

लोकनां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्द्धपरायुषः ॥

इस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग नाम के चार युगों की एक चतुर्युगी होती है, ऐसी हजार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के दिन में सृष्टि उत्पन्न होकर रहती है और उसी हिसाब से ब्रह्मा की रात्रि में यह सृष्टि पुनः लय हो जाती है। इतने बड़े ब्रह्मा के एक दिन के हिसाब से पक्ष, मास, संवत्सर का हिसाब लगाया जाय तो अंक भी हार मानते हैं। ऐसे सौ वर्ष की ब्रह्मा की आयु है, ब्रह्मा की समाप्ति के साथ यह दृश्य अदृश्य सारा ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है। ऐसे हजार ब्रह्मा हो जाते हैं तब विष्णु की घड़ी होती है, ऐसे हजार विष्णु हो जाते हैं तब महेश्वर का एक पल होता है और जब हजार महेश्वर हो जाते हैं तब कहीं मेरी शक्ति का आधा पल होता है, इसी कालक्रम से ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर आदि सभी चले जायेंगे क्योंकि कालका भय मात्र मनुष्यों को ही है ऐसा नहीं है किन्तु लोक, कल्पजीवी लोक, लोकपाल और बड़ी लम्बी आयुवाले ब्रह्मा को भी मुझ कालरूप से मृत्यु का भय है। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और महाशक्ति की आयु के हिसाब से मनुष्यों की आयु तो नाममात्र भी नहीं गिनी जा सकती तथापि हे मनुष्यो ! तुम अपने को न जाने क्या क्या समझते हो।

देवताओं की आयु का अनुमान ।

यह तो हुई तुम्हारे ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर के समय की संज्ञा

परन्तु उनसे नीचे देवता हैं कि जिनकी आयु का अनुमान भी पुराणकर्त्ताओं ने लगाया है, जिस लोक में तुम निवास करते हो उसका नाम भूलोक है, इसमें रहनेवाले मनुष्य मर्त्यलोक वासी कहलाते हैं क्योंकि यहां पर मरने के लिये ही जन्म होता है। यहां का रहन सहन मरना जीना तुम जानते हो परन्तु यहां से ऊपर के जो लोक हैं उनको तुम शास्त्र से या अनुमान से जान सकोगे अथवा तपस्या करके अनुभव से भी जान लोगे। वहां वालों की प्रकृति तुम्हारी प्रकृति से भिन्न है तथापि तुम्हारी आयु की तरह ऊपर वाले अमर देवताओं की आयु भी निर्दिष्ट है।

असंख्य लोकों में सप्त लोक प्रधान हैं

भूर्भुवः स्वर्महश्चेति जनश्चैव तपस्तथा।
सप्तमः सत्यलोकस्तु सप्त लोका इति स्मृताः॥
सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात्।
लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा॥
देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम्।
मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम्॥

इस दृश्य ब्रह्माण्ड में कोटि २ लोक हैं, आकाश में जितने तारे हैं वे सब लोक ही हैं, उन सब लोकों में देवादि प्राणी वास करते हैं वे भी काल पाकर समय में प्रलय को प्राप्त होंगे,

ब्रह्माण्ड में जितने लोक हैं उन असंख्य लोकों में सप्त लोक भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य लोक मुख्य कहे हैं, सृष्टि के आरम्भ में विश्वात्मा ब्रह्मा ने तपस्या की और मेरे अनुग्रह से रजोगुण द्वारा लोक पालों सहित भूः भुवः स्वः उन तीनों लोकों की रचना की एवं हर एक प्राणी के कर्मानुसार सब का वास स्थान नियत किया, स्वर्ग लोक देवताओं का निवास स्थान है, भुवःलोक भूतगणों के लिये है और भूः लोक मृत्यु लोक वासी मनुष्यादि प्राणियों के लिये है और सिद्धों के रहने के स्थान इन तीनों लोकों से ऊपर महलोक, जनलोक तपलोक आदि हैं।

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ।
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥
योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ।
महर्जनस्तपः सत्यं भक्ति योगस्य मद्गतिः ॥
मया कालात्मना धात्रा कर्म युक्तमिदं जगत् ।
गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥

जगत् प्रभु ब्रह्मा ने असुर और नागों के लिये भूर्लोक से नीचे के लोक बनाये हैं, तीनों लोकों में त्रिगुणात्मक कर्मानुसार सब प्राणियों की गतियां होती हैं इसलिये हर एक प्राणी अपने २ सात्विक राजसिक और तामसिक कर्मानुसार ऊपर मध्य में और नीचे जाते आते रहते हैं; योग तप और संन्यास से महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक आदि उत्तम लोकों

की प्राप्ति होती है परन्तु भक्तियोग से मेरा परमधाम मिलता है, इसी तरह मुझ काल रूप विधाता की प्रेरणा से यह जगत कर्म कलाप में पड़ा हुआ गुणों के वेग से कभी उछलता है और कभी डूबता है; सत्त्वगुण प्रधान एवं शुद्ध सत्त्व वाले देवादि प्राणी ऊपर के लोकों में वास करते हैं उनको और उनके लोकों को तुम अपनी स्थूल दृष्टि से देख नहीं सकते, ऐसे ही नीचे पाताल आदि लोकों में रहने वाले असुर नाग आदि तमोगुण एवं घोर तमोगुण वाले प्राणियों और उनके लोकों को भी तुम नहीं देख सकते हो, इनको देखने के लिये ज्ञानमयी दिव्य दृष्टि चाहिये।

पुण्य कर्म से देवत्व

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।
भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥
तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्काल चालितः ॥

तुम यहां अच्छे पुण्य कर्म करके देवता हो सकते हो, यहां पर मृत्युलोक में जो लोग सुख भोगने की इच्छा से कामना करके यज्ञ, दान, जप, तप, योग साधन आदि सत्कर्म करते हैं वे ही सकामी लोग मरने के बाद यहां से ऊपर स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं एवं वहां के उपयुक्त दिव्य शरीर धारण कर दिव्य भोग भोगते हैं; वहां वालों की आयु यहाँ वालों की अपेक्षा अपने

पुण्य कर्मानुसार शत् गुण, सहस्रगुण, लक्षगुण एवं कोटि गुणा अधिक होती हैं, जिनका जैसा प्रल पुण्य कर्म होता है उन्हें वैसा ही स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक आदि की प्राप्ति होती है और लोकानुसार अधिकाधिक सुख एवं आयु भी पाते है, यहां तक कि ब्रह्मा की आयु तक ब्रह्म लोक में सुख भोगते हैं और पुण्य क्षीण होते ही मृत्यु लोक में आते हैं; इसी तरह देवत्त्व पाकर भी तुम्हारा आवागमन से निस्तार नहीं है।

बिना ज्ञान के शान्ति नहीं

अतएव पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के ज्ञान को नहीं पाकर कोई भी चिर सुखी नहीं हो सकता, शास्त्र कथनानुसार तुम अपनी आयु वल वुद्धि का अनुमान लगा सकते हो और अपने पुरुषार्थ से आवागमन रूप भव व्याधि मिटा कर परम सुखी हो सकते हो; कल्प की गणना की स्मृति करने से यह उचित है कि तुम्हें निश्चिन्त नहीं रहना चाहिये ज्ञान के लिये प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि ज्ञान प्राप्त करना ही परम कर्त्तव्य है।

ब्रह्म की सोलह कला का प्रदर्शन

परमात्मा परिपूर्ण है, वह अव्यक्त हैं, अतीन्द्रिय है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है ओर महान् से भी महान् है, उसका कोई पारावार नहीं, ब्रह्म अंश और कला रूप से सारे ब्रह्माण्ड में प्रकाशित होता है, ऊर्ध्व स्थित सूर्य ब्रह्म का साक्षात् विष्णु रूप अंश-आदित्य मण्डलान्तर्गत पुरुष-ईश्वर रूप से मनुष्यों को

बल बुद्धि तेज देकर पालन करता है, सूर्य ही सब प्राणियों का जीवन है, साक्षात् परमात्मा की प्रत्यक्ष विभूति भास्कर भगवान् को तुम नित्य देखते हो। वह सोलह कला वाला पूर्ण ब्रह्म ही सर्वत्र है, परन्तु सब की दृष्टि में नहीं आता, उसको देखने के लिये दिव्य चक्षु चाहिये।

ब्रह्म की स्थूल कला का अवलम्बन करके सूक्ष्म को देखने वाले समदर्शी महात्मा पुरुषों का कथन है कि सोलह कला में पूर्ण ब्रह्म होता है जैसे सोलह आने में एक रूपया होता है, एक रूपये में बारह आने, दस आने, आठ आने, छः आने, चार आने और दो आने के हिसाब से पूरे रूपये का शक्ति अंश रूप में वंट जाती है और मूल्य में अल्पाधिक पना आ जाता है, ठीक तद्रूप ब्रह्म सोलह कला का होते हुए भी "पादोऽस्य विश्वानि भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" इत्यादि श्रुति कथनानुसार ब्रह्म का सामर्थ्य विभाजन करके समझाया जाता है।

पूर्ण ब्रह्म निराकार का कोई पारावार नहीं है तो भी वही अंश और कला रूप से चराचर जीव जन्तु में प्रकाशित हो रहा है, उसका प्रकाश किस योनि में, किस वस्तु में, किस परिमाण से अर्थात दो-चार-छः आने की तरह कैसा प्रकाशित होता है, यह उसकी शक्ति का निश्चय करना तुम्हारी स्थूल बुद्धि के ज्ञान से परे की बात हैं, तो भी तुम मनुष्य अपनी २ योग्यता अनुसार बुद्धि से या युक्ति से अनुमान लगाते ही हो, इसी तरह मङ्गलमय

परमेश्वर की प्रकाश शक्ति का अनुमान करके अपने अभीष्ट की सिद्धि कर सकते हो।

जगत् में जो कुछ दीखता है उसमें स्थावर, परमात्मा की एक कला की शक्ति के सूचक हैं, जङ्गम में कीट पतङ्ग आदि परमात्मा की चार कला की शक्ति के प्रकाशक हैं, पशु पक्षी परमेश्वर की छः कला के सामर्थ्य को प्रकट करते हैं, छः से ऊपर सात आठ कला वाले मनुष्य ईश्वर की आधी शक्ति की महिमा को पाते हैं, ईश्वर का आधा सामर्थ्य तुम में है, इसलिये जगत् में तुम सब प्राणियों के स्वामी और श्रेष्ठ हो क्योंकि तुम्हारे ही भोगार्थ जगत् है; जब तुम्हें अपनी शक्ति का वास्तविक बोध होगा तब तुम समझ सकोगे कि तुम्हारे लिये जगत् में कोई कार्य असाध्य नहीं है; तुम से ऊपर ईश्वर को आठ से दश कला की महिमा प्रकाशित करने वाले अलौकिक ऐश्वर्य युक्त देवता हैं और उन देवताओं ही की श्रेणी में परमात्मा की दश से बारह कला की शक्ति रखने वाले अणिमादि महाऐश्वर्य युक्त काम चारित्वादि सिद्धि-सम्पन्न सिद्ध कहलाते हैं और बारह से ऊपर सोलह कला तक तुम्हारे हीं सङ्कट उद्धार के लिये भगवान् अवतार संज्ञा में आते हैं, इसी तरह ब्रह्म की शक्ति, कला और अंश रूप से प्रकाशित होती है।

मनुष्य देव सिद्ध और अवतार का अर्थ एवं सामर्थ्य

तुम मनुष्य ही अपने गुण कर्म से देव सिद्ध और अवतार

हो सकते हो, तुम में जब शास्त्र कथित दिव्य गुणों का आविर्भाव होगा तब इसी शरीर से देव कहलाओगे और दिव्य गुण का फल दैव शक्ति का विकास रूप ऐश्वर्य अनुभव करने से सिद्ध होगे; जब तुम मनुष्य ही देव और सिद्ध संज्ञा में पहुँचोगे तब तुम्हारे में अलौकिक अद्भुत् सामर्थ्य आ जायगा एवं इस सृष्टि में वैषम्य घटाने की शक्ति हो जाएगी, तब तुम परमात्मा को दश कला की शक्ति विकास करने वाले देव और बारह कला के सामर्थ्य वाले सिद्ध कहलाओगे और जब तुम अधर्म का उच्छेद करके धर्म की स्थापना करोगे, दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन कर जिस काल में जैसी आवश्यकता है अपनी आत्म शक्ति से सम्पादन करोगे तब बारह कला से ऊपर ईश्वर का अवतार कहलाओगे।

जैसे देवता कहने से तुम्हें आकाश की ओर देखना पड़ता है तैसे ही अवतार कहने से राम, कृष्ण, बुद्ध. शङ्कराचार्य आदि को स्मृति होती है क्योंकि अवतार के नाम से राम, कृष्ण की ही प्रधानता समझी जाती है, परन्तु शब्दार्थ से स्पष्ट होता है कि दिव्य गुण युक्त शक्ति वाले देव और अणिमादि ऐश्वर्य–सङ्कल्प सिद्धि संपन्न सिद्धहोते हैं, वे चाहे आकाश में रहें या मृत्यु लोक में ही रहें उसमें कोई हानि लाभ नहीं है क्योंकि तुम मनुष्य ही अच्छे कर्मसे देव होगे और बुरे कर्म से पशु होगे, और यदि जगत् में कोई महान् कार्य करने की तुम्हारी प्रबल वासना होगी तो अवतार होगे, जो कार्य तुम्हारी शक्ति से असाध्य है यदि आवश्यकता हुई

तो भगवान् स्वयं करेंगे, वह भी तुम्हारे मनुष्य शरीर से ही सम्पादित होगा, अतएव दैत्य, दानव देव सिद्ध और अवतार तुम ही होगे, तुम्हारे ही लिये इस पृथवी पर बड़े २ उत्पात होते हैं और जब तक तुम यहां रहोगे होते ही रहेंगे, तुम्हारे ही निमित्त यह जगत् बना है।

पुराण कर्त्ताओं ने मनुष्य में परमात्मा की सामान्य और विशेष शक्ति का प्रकाश देखकर शक्तिमान् को अवतार संज्ञा दी है, ये अवतार तुमसे विशेष शक्ति वाले पुराण में चौबीस कहे हैं, उनमें से दस बड़े और उन दश में भी दो-राम और कृष्ण को प्रधान माना है; जो कुछ भी हो मानना न मानना तुम्हारी इच्छा पर है, जो अवतीर्ण होता है वही अवतार है, माता के उदर से उत्पन्न हुए सब ही अवतार शब्द के अर्थ में आ जाते हैं, परन्तु पुराण का मत है कि उसमें शक्ति विकास का तार तम्य है, जो सामर्थ्य रखते हैं वे ही अवतार भगवान् पद वाच्य होते हैं; वैसे तो अवतीर्ण हुए-जन्म लिया, इसलिये अवतार शब्द का अर्थ आने में सार्थक होता है, परन्तु देखना है कि अवतार होते हैं किस कार्य के लिये ?

राम, कृष्ण, बुद्ध, शङ्कर को आलोचना तुम सब ही करते हो, इन चार पुरुषों ने धर्म की रक्षा की थी अधर्म का उच्छेद किया था, अपने आत्म बल से सबको अपनी इच्छा पर चलाया था, इसलिये अवतार कहलाये, परन्तु जगत् में धर्माधर्म बढ़ने में देर भी नहीं लगती, वर्षा का जल नदियों में

आ जाता है और नदियां मैला जल समुद्र में पहुंचा देती हैं, हर साल वर्षा काल में ऐसा ही होता रहता है इसी तरह अवतार का भी आवागमन समय विशेष में होता रहता है, अवतीर्ण कोई आकाश से नहीं होता, पिता के वीर्य से माता के उदर से अवतीर्ण होते रहते हैं, इसलिये लोग झगड़ा मचाते हैं कि अवतारी पुरुष का सामर्थ्य देखकर अवतार मानना चाहिये, सो वह सामर्थ्य है परमात्मा की कला शक्ति का विकास, सो भगवान् के जितने अवतार हुए हैं उनमें सभी अंश और कला रूप से हुए हैं परन्तु पुराण में श्री कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म कहा है— "एते चांश कलाःपुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं", श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हुए थे, उनका कहा हुआ गीता का ज्ञान तुम्हारे लिये महा कल्याण प्रद है, गीता का कथन है कि वह तो स्वयं भगवान् हैं— माया को आधीन करके जन्म लेते हैं, तुम जीव, माया के आधीन होकर जन्म लेतेहो, तुममें और उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है, माया उनके आधीन है, तुम माया के आधीन हो; जब तुम अवतार संज्ञा में आओगे तो भी उनके सदृश्य नहीं हो सकते क्योंकि उनका कार्य तुम्हारी शक्ति का नहीं है।

श्री राम भी अवतार थे और परशुराम भी अवतार थे, एक समय दोनों मिल गये, परस्पर को न पहचानने के कारण दोनों में झगड़ा हो गया था; परशुराम ने क्षत्रियों का नाश किया था, श्री राम क्षत्रिय थे उन्होंने राक्षसों का नाश किया था; इसी तरह अवतार के विषय की समस्या तुम्हारे लिये बड़ी ही विवादा-

स्पद है, परन्तु तुम्हें मान लेना चाहिये कि भगवान् के लिये कोई कार्य असाध्य या असम्भव नहीं है, चाहे वह स्वयं पूरा करें अथवा औरों से करावें, उसमें तुम्हें हानि लाभ नहीं है, परन्तु परमार्थ की दृष्टि से ब्रह्म की शक्ति को सीमा वद्ध नहीं कर देना चाहिये।

अवतारी पुरुष भी अष्ट प्रहर ब्रह्म में संलग्न नहीं रहते

अर्जुन उवाच

यत्तु तद् भवता प्रोक्तं पुरा केशव सौहृदात्।
तत्सर्वं पुरुष व्याघ्र नष्टं मेव्यग्र चेतसः॥

श्री भगवानुवाच

श्रावितस्त्वं मया गुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम्।
न च माद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे संभविष्यति॥
न शक्यं तन्मया वक्तुमशेषेण धनञ्जय।
परं हिं ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया॥

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से अपने पूर्ण ब्रह्म होने का पूरा परिचय देकर भी कहा था कि शरीर धारी अवतारी पुरुष भी सर्वदा काल पूर्ण ब्रह्म भाव में नहीं रहते; जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया और महाराज युधिष्ठिर को राज्याभिषेक हो

गया तब भगवान् श्री कृष्ण, अर्जुन से कहने लगे कि कहो अर्जुन और कोई बात बाक़ी है तब महाराज अर्जुन ने कहा कि भगवन् आपके अनुग्रह से हम युद्ध जय कर सके हैं और हमारा राज्य हमें पूर्ववत् प्राप्त हो गया है, यह तो व्यवहार है, परन्तु हे केशव ! आपने कृपा करके युद्ध क्षेत्र में मुझे जो गीता का ज्ञान कहा था वह चित्त की व्यग्रता के कारण मेरा सब नष्ट हो गया है, अतएव कृपया वह पुनः कहिये ; तब श्री कृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! तुमने बड़ी भूल की जो उस ज्ञान को अच्छी तरह याद न रख सके, वह परम सनातन गुह्य ज्ञान मैंने उस समय योगावलम्बन करके तुमको दिया था, ऐसा उस समय कहा हुआ ब्रह्म दिव्य ज्ञान अब मैं नहीं कह सकूंगा, आज उसका स्मरण मुझे नहीं है, इसलिए समग्र नहीं कहा जा सकता; तथापि अब भी जो मैं कहूँगा उसमें भी तुम्हारा मङ्गल होगा, इसके बाद भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन के प्रति अनु गीता कही है, अतएव इससे ही तुमको समझ लेना चाहिये कि अवतारी पुरुष भी अष्ट प्रहर योग में संलग्न नहीं रहते, इसी तरह तुम भी सर्वदा काल ब्रह्म में निमग्न नहीं हो सकते, जब तक शरीर के साथ तुम्हारा सम्बन्ध है तब तक तुमको आवश्यकता अनुसार सभी कर्म करने पड़ेंगे।

तुम मध्य में हो—अपना कर्त्तव्य विचारो

ब्रह्म की स्थिति सब कर्मों से परे है, शेष उसको ही प्राप्त करना है, तुम मनुष्य परमात्मा की आधी शक्ति के मध्य में हो

तुम्हारे ऊपर देव, सिद्ध और अवतार हैं तथा नीचे पशु-पत्ती कीट पतङ्ग आदि हैं, तुम्हारे ऊपर वाले मात्र सुख ही भोग रहे हैं और नीचे वाले दुःख ही भोग रहे हैं, तुम मनुष्य ही एक ऐसे हो जो सुख और दुःख दोनों एक साथ ही भोगते हो, यदि तुम चाहो तो नीचे पशु पत्ती भी हो सकते हो और चाहो तो देव, सिद्ध, अवतार भी हो सकते हो; ऊपर वाले बड़े सुखी होने से क्या होगा ? उन्हें कर्म करने का अधिकार नहीं है, इसलिये जो कमाई यहां की था वही निःशेष कर रहें हैं, कर्म फल–पुण्य समाप्त होते ही यहां आवेंगे; जैसे ऊपर वाले सुख भोगकर यहां फिर कमाने आवेंगे तैसे नीचे वाले पशु-पत्ती आदि भी दुःख भोग कर क्रम से कर्मानुसार कभी यहां ही आवेंगे, बीच में आकर खड़े होने के लिये ऊपर से भी आवेंगे और नीचे से भी आवेंगे, सदा विश्राम करने के लिये तुम्हारा मनुष्य जन्म ही उत्तम और श्रेयस् का साधक है, इस लिये अब तुम अपनी बुद्धि से नीचे ऊपर दृष्टि करके देख लो कि क्या करना है, कहां जाना है, ठीक करलो।

यदि तुम नीचे जाना है तो खाओ पीओ, मौज करो, ईश्वर रहो न रहो तुम्हें तो सुख के लिये धन ही चाहिये, वह चाहे न्याय से हो चाहे अन्याय से; नीचे आने में बाधा या कष्ट नहीं है–पहाड़ से नीचे उतरने में देर नहीं लगती, इसी तरह यदि तुम अपने भाग्य को नष्ट करना चाहो तो कर सकते हो परन्तु पीछे तुम्हें महा अनुताप करना पड़ेगा, यदि तुम उपर जाना चाहो तो तुम्हें सत्य-मिथ्या, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म के बड़े २ विचार

करने पड़ेंगे ; पर्वत के ऊपर चढ़ने में क्लेश तो है ही परन्तु क्लेश का फल सुख भी मिलेगा, यदि तुम सब क्लेशों के दुःख को यहीं सिर पर ले लोगे तो परम सुखी हो जाओगे।

दोनों बातें तुम्हारे लिये यहीं हैं क्योंकि तुम बीच में खड़े हो, मध्य में रहने वाले आगे पीछे अच्छी तरह देख सकते हैं, ऐसे ही तुम भी अपने भाग्य के विधाता हो चाहे जो कर सकते हो, तुम्हारे लिये उपयुक्त और अनुकूल यही समय है, समय चूक जाने से कार्य सिद्धि रह जाती है—अनुताप होता है, अतएव आक्षेप न करके तुम्हें परम शान्ति ही पानी है तो उसका उपाय योग, जप, तप, तीर्थ, व्रत, प्रायश्चित, यज्ञ, दान आदि सभी कर्म करने चाहियें जो आगे कहे जायेंगे।



द्वितीय प्रकाश

यह शरीर ही ब्रह्माण्ड है।

अतएव अब तुम कर्म की गति-विधि सृष्टि की स्थिति तथा देवता सिद्ध और अवतार का अर्थ एवं ब्रह्म के भाव को समझ गये होगें। और यह भी समझ गये होगे कि बिना आत्मज्ञान लाभ किये मनुष्यों को परम शान्ति नहीं मिल सकती, इस लिये मनुष्य जन्म का महत् उद्देश्य परमार्थ लाभ करने का परम कर्त्तव्य तुमने ठीक कर लिया होगा, इस कर्त्तव्य के उद्देश्य सिद्धि के लिये तुम्हें अपने शरीर से और कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो तुम प्राप्त करना चाहते हो और प्राप्त करोगे वह सत्यस्वरूप ईश्वर तुम्हारे अन्तर में ही है।

त्रिकालदर्शी आत्माराम योगियों का कहना है कि विश्वकर्त्ता परमेश्वर ने मनुष्यों को असीम शक्ति दे रक्खी है. जिसके बल से मनुष्य सब कुछ जान सकते और कर सकते हैं। बुद्धिमान पुरुषार्थी मनुष्यों के लिये जगत् में कोई कार्य असम्भव वा असाध्य नहीं है तथाऽपि मन्द बुद्धि वाले मनुष्य होने वाले जन्ममरणरूप दुःख की भावना नहीं करते और बाहर तीर्थों में अन्तर्यामी ईश्वर को खोजते हैं क्योंकि अन्तर के तीर्थों को नहीं जानने वाले बहुत से अज्ञानी मनुष्यों की यह धारणा है कि

ज्ञानी और ज्ञान बाहर के तीर्थों में मिलते हैं, इसलिये वे लोग तीर्थों में जाते हैं, उनमें बहुत से लोग तो तीर्थों का माहात्म्य स्वर्गादि फल की प्राप्ति सुन कर मुग्ध हो जाते हैं एवं मरने के पश्चात् स्वर्ग में सुख भोगने की इच्छा से दान, पुण्य, हवन, जप, तप, व्रत आदि कर्म करते हैं। ऐसे स्वर्ग सुख के लोभी अविवेकी मनुष्य अपने मनुष्य जन्म का महत् उद्देश्य आत्मज्ञान प्राप्ति से वञ्चित रहते हैं; तैसे ही जो मुमुक्षु अपने में स्थित ईश्वर को न खोज के प्राप्त विवेकसाधन छोड़ कर बाहर तीर्थों में ईश्वर को ढूंडते हैं वे भी ज्ञान से विमुख रहते हैं क्योंकि जिन तीर्थों में ईश्वर मिलते हैं वे तुम्हारे मनुष्यकृत तीर्थ नहीं है किन्तु तुम्हारे ही शरीर के अन्दर में मंगलविधाता ने सब तीर्थ बना रखे हैं जिनको कि तुम लोग जानते ही नहीं हो।

ईश्वर ने विश्व को रचना करके मनुष्य शरीर को ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति-नमूना बना कर उसमें अपने ज्ञान का समावेश किया ताकि मनुष्य अपने में ही यावत् विश्वस्थित पदार्थ के ज्ञान को सहज में जान सके और भोग सके, उसको और कहीं जाना न पड़े।

॥ पिण्ड ब्रह्माण्ड की एकता ॥

देहेऽस्मिन् वर्त्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।

पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्त्तन्ते पीठदेवताः ॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नभो वायुश्च वन्हिश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्व्वाणि देहतः
मेरुं संवेष्ट्य सर्व्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते ॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ।

इसलिये श्री महेश्वर कहते हैं कि जिन तीर्थों का वेद पुराण आदि शास्त्र बड़ा भारी माहात्म्य कहते हैं। जो सब पापों से मनुष्यों को मुक्त करते हैं और अपने २ अभीष्ट धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष को देते हैं और जहां साक्षात् ईश्वर विराजमान हैं वे तीर्थस्थान और बाहर ब्रह्माण्ड के लोकलोकान्तर सभी कुछ तुम्हारे में ही हैं अतएव इस शरीर के भीतर सप्त द्वीप समन्वित सुमेरु पर्वत और नदियों के समूह तथा सागर, पर्वत, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, और ऋषि मुनि ग्रह उपग्रह यावतीय नक्षत्र समूह और सब पवित्र तीर्थ, सिद्धपीठ तथा पीठों के देवता आदि देह में अवस्थित हैं और काल को उत्पन्न करने वाले सृष्टि संहारकारी सूर्यचंद्र शरीर के भीतर में परिभ्रमण करते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी आदि त्रैलोक्य में जो कुछ वस्तु है वे समस्त इस शरीर में ही विद्यमान हैं और सभी सुमेरु को वेष्टन करके सम्यक प्रकार से स्थित है एवं सबके ही अपने २ कार्य यथाविधि सम्पादित होते रहते हैं; इस प्रकार जो वस्तु

बाहर ब्रह्माण्ड में है वह सब इस पिण्डरूप शरीर में ही व्यवस्थित है, जो इन सब विषयों को अपने अन्तर में जानता है वही निःसन्देह ज्ञानी महात्मा योगी है।

पिण्ड ब्रह्माण्डयोरैक्यं शृणिवदानीम्प्रयत्नतः ।
पातालभूधरा लोकास्तथाऽन्ये द्वीपसागराः ॥
आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ।
पिण्डमध्ये तु तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

श्री महेश्वर भगवती पार्वती देवी के प्रति बोले कि हे देवि अब पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता कहता हूँ सो सुनो, पाताल से लेकर स्वर्गादि लोक पर्यन्त जितने लोक हैं वे सब तथा सप्त द्वीप सात सागर तथा अष्ट कुलाचल एवं आदित्यादि ग्रह इत्यादि जो कुछ बाहर ब्रह्माण्ड में दीखते हैं वे सभी शरीर में विद्यमान हैं इन सबको अपने शरीर में जानने से मनुष्य सब प्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है।

शरीर में चतुर्दशभवन और उनके स्थान

इदानीम्पिण्डमध्ये तु सप्तलोकं शृणु प्रिये ।
भूर्भुवः स्वर्महश्चेति जनश्चैव तपस्तथा ॥
सप्तमः सत्यलोकस्तु सप्तलोका इति स्मृताः ।
तलं तलातलञ्चेति महातल रसातलम् ॥

सप्तपातालमेतत्तु सुतलं वितलं तथा ।
सप्तलोकैस्तु पातालैर्भुवनानि चतुर्दश ॥

हे देवि ! शरीर में जिस २ स्थान में जो वस्तु जहां २ है उसको सुनो—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक, ये सात लोक कहलाते हैं और तल, तलातल महातल, रसातल, सुतल, वितल तथा पाताल, ये सात पाताल हैं। सप्तलोक और सप्तपाताल मिलकर चौदह भुवन कहलाते हैं।

मूलाधारे तु भूर्लोको स्वाधिष्ठाने भुवस्ततः ।
स्वर्लोको नाभिदेशे च हृदये तु महस्तथा ॥
जनलोकं कण्ठदेशे तपोलोकं ललाटके ।
सत्यलोकं महारन्ध्रे इति लोकाः पृथक् पृथक् ॥
तलम्पादाङ्गुष्ठतले तस्योपरि तलातलम् ।
महातलं गुल्फमध्ये गुल्फोपरि रसातलम् ॥
सुतलं जङ्घयोर्मध्ये वितलं जानुमध्यगम् ।
ऊर्वोर्मध्ये तलम्प्रोक्तं सप्तपातालमीरितम् ॥

मूलाधार में भूलोक, स्वाधिष्ठान में भुवर्लोक, नाभि में स्वर्गलोक, हृदय में महर्लोक, कंठ में जनलोक, ललाट में तपलोक और ब्रह्मरन्ध्र में सत्यलोक है, इसी प्रकार कटि देश से उपरिस्थान में पृथक् २ ये ऊपर के सात लोक हैं और ऐसे ही

पग से ऊपर कटिं पर्यन्त सातपाताल लोक हैं। पावों के तले में तल लोक तथा पांव के उपरिभाग में तलातल लोक है और गुल्फ के बीच में महातल लोक एवं गुल्फ के ऊपर रसातल लोक हैं और दोनों जंघा के मध्य में सुतललोक एवं जानु के मध्य में वितल लोक हैं और ऊरुओं के मध्य में पाताल लोक है, इस प्रकार यह सप्तपाताल कहलाते हैं। नीचे के सात पाताल और ऊपर के सात लोक मिलकर चौदह भुवन का नाम ब्रह्माण्ड है।

मनुष्य अपने किये हुये कर्मानुसार बाहर के इन चौदह भुवनों में कर्मफल सुखदुःख भोगने के लिये जाते आते रहते हैं परन्तु जब मनुष्यों को इनका ज्ञान अपने शरीर में ही हो जाता है तो उसके जन्ममरण—आने जाने का दुःख सदा के लिये मिट जाता है और वह परम सुखी हो जाते हैं।

शरीर में सप्तद्वीप और सप्तसागर।

सप्तद्वीपानि कथ्यन्तेऽधुना तानि शृणु प्रिये।
जम्बू शाकस्तथा शाल्मः कुशः क्रौञ्चश्च गोमयः॥
श्वेतः सप्तेति द्वीपानि सप्तखण्ड वसुन्धरा॥
समुद्राः सप्तकथ्यन्ते पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः।
लवणेक्षु सुरासर्पिर्दधि दुग्ध जलान्तकाः॥

हे देवि! पृथ्वी पर के सात द्वीप और सात समुद्र शरीर

में हैं उनके नाम और स्थान कहता हूँ सुनो—जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, तथा शाल्मलीद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप एवं गोमयद्वीप और श्वेतद्वीप ये सात द्वीपवाली पृथिवी है और उस पर आसपास, लवण का इक्षुरस का तथा मदिरा का समुद्र है और घृत का, दही का, दूध का, और जल का समुद्र है। ये सात समुद्र पृथिवी के प्रत्येक द्वीप के पृथक् २ हैं।

अस्थिस्थाने महेशानि जम्बुद्वीपो व्यवस्थितः
मांसेषु च कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च ॥
शाकद्वीपः स्मृतो रक्ते प्राणिनां सर्वसन्धिषु ।
तदूर्ध्वं शाल्मलीद्वीपः प्लक्षश्च लोमसञ्चये ॥
नाभौ च पुष्करद्वीपः सागरस्तदनन्तरम् ।
लवणोदस्तथा मूत्रे शुक्रे क्षीरोदसागरः ॥
मज्जा दधिसमुद्रश्च तदूर्ध्वं घृतसागरः ।
वसापः सागरः प्रोक्त इक्षु स्यात्कटिशोणितम् ॥
शोणिते च सुरासिन्धुः कथिताः सप्तसागराः ।

हे देवि अस्थिस्थान में जम्बूद्वीप स्थित है और मांस में कुशद्वीप तथा शिराओं में क्रौञ्चद्वीप और प्राणियों के शरीर में सब सन्धिस्थान के रक्त में शाक द्वीप, उसके ऊपर चर्म में शाल्मली द्वीप है एवं लोम समूह में गोमय प्लक्ष द्वीप है और नाभि में श्वेत-पुष्कर द्वीप है, इसके बाद शरीर में सात सागर हैं

वह, प्रस्वेद या मूत्र में खारे जल का लवण समुद्र है, शुक्रमें दूध का क्षीर सागर है और मज्जा में दही का समुद्र है और उसके परे मेद घृत का सागर कहलाता है। और नाभि देश के रक्त में इक्षुरस का मीठा समुद्र है एवं रक्त में सुरा का समुद्र है, इस प्रकार शरीर में ये सप्त सागर हैं।

शरीर में अष्ट कुलाचल-पर्वत।

इदानीम्पर्वताष्टौ च कथ्यन्ते शृणु यत्नतः।
सुमेरुर्हिमवान् विन्ध्यो मलयो मन्दरस्तथा॥
श्रीशैलो मैनाकश्चेति कैलासोऽष्टौ च पर्वताः।
मेरुदण्डे सुमेरुस्तु पीठमध्ये हिमालयः॥
वामस्कन्धे तथा दक्षे मलयो मन्दराचलः।
विन्ध्यस्तु दक्षिणे कर्णे वामे मैनाक ईश्वरि॥
ललाटे मध्यदेशे तु श्रीशैलः परमेश्वरि।
तथा ब्रह्म कपाटस्थः कैलासः पर्वतो महान्॥

अब तीर्थरूप अष्ट कुलाचल बड़े आठ पर्वत कहता हूँ सुनो। सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्याचल, मलय तथा मन्दराचल और श्रीशैल पर्वत एवं मैनाक और अष्टम कैलास पर्वत है। वह इस शरीर के मेरुदण्ड में सुमेरु पर्वत है, पीठ में हिमालय है और वामस्कन्ध में मलयाचल एवं दक्षिणस्कन्ध में मन्दराचल है और विन्ध्याचल दायें कान में तथा बायें कान में मैनाक पर्वत एवं

ललाट के मध्य देश में श्रीशैल पर्वत है और ब्रह्मकपाट में आठवां महान् कैलास पर्वत है।

शरीर में सर्वतीर्थ और देवताओं का स्थान।

गङ्गा सरस्वती गोदा नर्मदा यमुना तथा।
कावेरी चन्द्रभागा च वितस्ता च इरावती ॥
द्विसप्ततिसहस्रेषु नदी नद परिस्रवाः।
इतस्ततो देहमध्ये ऋक्षाश्च पञ्चविंशतिः ॥
योगाश्च राशयश्चैव ग्रहाश्च तिथयस्तथा।
करणानि च वाराश्च सर्वेषां स्थापनं तथा ॥
सर्वाङ्गेषु च देवेशि समग्रमृक्षमण्डलम्।
त्रयस्त्रिंशत्कोटयस्तु निवसन्ति च देवताः ॥

इस प्रकार शरीर में गङ्गा, यमुना, सरस्वती तथा गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी एवं चन्द्रभागा, वितस्ता और इरावती इत्यादि नदियां शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां हैं वे सब नदी और नदरूप से जहाँ तहां बहती रहती हैं, और ऐसे ही शरीर में पन्द्रह तिथि सातवार और सत्ताईस नक्षत्र, बारह राशि तथा अट्ठाईस योग, सात करण, ग्रह-उपग्रह इत्यादि समग्र नक्षत्र मण्डलसह तेंतीस कोटि देवता, इस शरीर के सब अङ्गों में जहां तहां अपने अपने स्थान में निवास करते हैं।

तथा पीठानि सर्वाणि देहमध्ये स्थितानि च।

हृदये व्योममध्ये तु अनन्ताद्यास्तु वासुकिः ॥
उदये व्योम मध्ये तु परे नागा वसन्ति हि ।
गन्धर्वाः किन्नरा रक्षा विद्याधराप्सरादयः ॥
अनेकतीर्थ वर्णाश्च गुह्यकाश्च वसन्ति हि ।
प्रकृतिः पुरुषो देहे ब्रह्मा विष्णुः शिवस्तथा ॥
अनन्तसिद्धयो बुध्या प्रकाशो वर्त्तते हृदि ।
ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे ॥

शरीर में पंच प्राण मन नाद विन्दु कला ज्योति तथा षट् चक्र मेरूदण्ड और उड्डीयान जालन्धर एवं कामरूप, पूर्णगिरि और श्रीहट्टक महापीठ आदि सब कुछ देह के मध्य में स्थित हैं। और शरीरस्थ हृदयाकाश में अनन्त, गन्धर्व, किन्नर, रक्ष, विद्याधर, अप्सरा, गुह्यक आदि नाना प्रकार की जाति के देवता लोग निवास करते हैं और अनेक प्रकार के तीर्थ इसी में ही हैं क्योंकि प्रकृति पुरुषरुप इस मनुष्य देह के परमाकाश में परम देवता ब्रह्मा विष्णु तथा शिव स्वयं विराजमान हैं अतएव उनके अनन्तसामर्थ्य सिद्धि के ज्ञान को देनेवाला प्रकाश सर्वदा हृदय में हो रहा है इसलिये बाहर ब्रह्माण्ड में जो सब गुण हैं वे सब शरीर में ही रहते हैं।

ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे स्थानानि स्युर्बहूनि च ।
मयोक्तानि प्रधानानि ज्ञातव्यानीह शास्त्रके ॥

नाना प्रकार नामानि कथितुं नैव शक्यते।
ब्रह्माण्डे यानि वै सन्ति तानि सन्ति कलेवरे ॥
ते सर्वे प्राण संलग्नाः प्राणातीतो निरञ्जनः।

अतएव इस देहरूप ब्रह्माण्ड में कहने सुनने देखने और जानने के बहुत से स्थान हैं उनमें से मैंने प्रधान प्रधान स्थानों को इस योग शास्त्र में संक्षेप से कहा है क्योंकि शरीर के भीतर में जिस जिस नाम से नाना प्रकार के जो जो स्थान और जो विषय हैं उन सबका यथातथ्य कथन किया नहीं जा सकता इसलिये ईश्वर से मिलने की इच्छा वाले साधकों को निश्चय पूर्वक जान लेनाचाहिये कि जो कुछ दृश्यादृश्य बाहर ब्रह्माण्ड में है वह सब तुम्हारे शरीररूपी पिण्ड में ही है और वे सब प्राण में ही संलग्न हैं इसलिये प्राण के सहारे से-प्राण को सहायता से तुम उसको देख सकते हो, जान सकते हो, वे सब प्राण के ही अन्तर्गत हैं परन्तु निरञ्जन परमात्मा प्राण से भी परे है।

इदं तीर्थमिदं तर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः ॥
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्ता वरानने ॥

अतएव श्री महेश्वर कहते हैं कि अपने अन्तर् में ही सब कुछ होने पर भी स्वतंत्र मनवाले स्वेच्छाचारी तामसिक लोग वास्तविक प्रायश्चित्त के और मुक्तिपाने के स्थान अन्तर के तीर्थ को छोड़कर बाहर के प्रयागादि तीर्थों में और इधर उधर भटकते हैं, उनको मुक्ति कैसे हो सकती है क्योंकि अपने में स्थित प्रयागादि तीर्थ में नहीं

जाने से कोई मुक्त नहीं हो सकता है इसलिये विधाता ने सृष्टि के साथ ही वेद में उपदेश दे रखा है कि यदि तुम्हें दिव्यलोक प्राप्ति की इच्छा है या मोक्ष पाना है तो ये दोनों तुम अपने में ही पा सकते हो क्योंकि जगत् में तुम जीव और मैं शिव दो ही हैं। तुम जीव बाहर में हो, मैं शिव अन्तर में हूँ यदि तुम मुझसे मिलना चाहो तो अन्दर में आना होगा इसलिये मैंने सब कुछ अन्दर ही रखा है ताकि तुम्हें और कहीं जाना न पड़े। यदि तुम मुझको बाहर खोजने जावोगे तो मैं तुम से नहीं मिलूंगा और तुम मुझसे नहीं मिल सकोगे अतएव यदि तुमको मेरे दिव्य लोक प्राप्ति की कामना है तो अन्तर् के प्रयाग तीर्थ में नहाना और परमशान्तिमय सदा आनन्दधाम मुक्ति पाने की इच्छा हो तो वहीं मर जाना।

॥ शरीरस्थ प्रयाग तीर्थ का वर्णन ॥

सिताऽसिते सरिते यत्र संगते तत्राऽप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वम्भजन्ते ॥
यत्र गङ्गा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्र माममृतं कृधि ॥

परम कल्याणकर ईश्वर का एवं वेद का महावाक्य है कि जो लोग अपने अन्तर् में स्थित गंगा यमुना नदी के संगम त्रिवेणीस्थान प्रयाग में स्नान करते हैं वे दिव्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और यदि वहां पर प्राणत्याग करते हैं तो वे ज्ञानी लोग

मोक्ष पाते हैं अतएव गंगा और यमुना के संगम में नहावोगे तो दिव्य लोक चले जावोगे और यदि वहां पर मर जावोगे तो अवश्य जीवन्मुक्त हो जावोगे क्योंकि जहां गंगा और यमुना तथा पूर्ववाहिनी सरस्वती मिलती है और जहां सोमेश्वरदेव है वहीं मुक्ति होती है ।

इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
इडापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ॥
त्रिवेणी सङ्गमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते ।
तत्र स्नानम्प्रकुर्वती सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
सर्गता ध्वजमूलं च विमुक्ता भ्रूवियोगतः ।
त्रिवेणीयोगः सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम् ॥

इडानाड़ी का नाम भागीरथी गगा है, पिंगला नाड़ी का नाम यमुना नदी है और इडा पिंगला के मध्य में सुषुम्णा सरस्वती कहलाती है। जहां इन तीनों नाड़ियों का संगम होता है वह स्थान तीर्थराज प्रयाग कहलाता है। जो कोई वहां पर स्नान करते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। तुम्हारे शरीर में इन तीनों नाड़ियों का उत्पत्तिस्थान मूलाधार कमल है। मूलाधार से निकल कर भ्रूमध्यस्थित आज्ञाचक्र में! इडा, पिंगला, सुषुम्णा- गंगा, यमुना, सरस्वती, इन तीनों का संगम होता है और वहीं पर सोमेश्वर देव है, यहां से इडा पिंगला-गंगा यमुना श्वास प्रश्वास से बाहर वहती और अन्दर सुषुम्णा-सरस्वती गुप्त ही

सहस्रार में समा जाती है अतएव इन तीनों नाड़ियों का संगम त्रिवेणी योग कहलाता है, यहां पर स्नान करने का बड़ा भारी फल है। यहां पर मन और प्राण को पहुँचाने वाले दिव्य लोक के अधिकारी होते हैं और यदि यहां प्राण त्याग किया जाय तो तत्काल ही मोक्ष पा जाते हैं अतएव बाहर के तीर्थ की कल्पना करके तुम ईश्वर की आज्ञा उल्लंघन करते और मुझसे पृथक् होते हो परन्तु यदि सर्वकर्मबन्धन से छूट कर मुक्ति पानी है तो अच्छी तरह तुम्हें समझ लेना चाहिये कि अपने में जो प्रयाग तीर्थ है उससे पा सकते हो।

॥ प्रयाग तीर्थ का माहात्म्य ॥

गंगायमुनयोर्मध्ये वहत्येषा सरस्वती।
तासां तु सङ्गमे स्नात्वा धन्यो याति परां गतिम् ॥
सिताऽसिते सङ्गमे यो मनसा स्नानमाचरेत्।
सर्व पापविनिर्मुक्तो याति ब्रह्म सनातनम् ॥
त्रिवेण्यां सङ्गमे यो वै पितृकर्म समाचरेत्।
तारयित्वा पितृन्सर्वान्स याति परमां गतिम् ॥
इडा गङ्गा पुरा प्रोक्ता पिङ्गला चार्कपुत्रिका।
मध्ये सरस्वती प्रोक्ता तासां सङ्गोऽतिदुर्लभः ॥

गङ्गा और यमुना के मध्य में सुषुम्णा सरस्वती बहती है उनके सङ्गम में जो लोग स्नान करते हैं वे धन्य हैं और वे ही स्नान

करके कृतार्थ होकर परागति–ज्ञान लाभ करते हैं। इस लिये जो कोई भी मनुष्य गंगा और यमुना के सङ्गमरूप प्रयाग में मन से स्नान करते हैं वे लोग सब पापों से मुक्त होकर मुक्त सनातन ब्रह्म को पाते हैं और यहां पर त्रिवेणी के संगम में जो लोग अपने पितरों का तर्पण श्राद्धादि मानसिक कर्म करते हैं वे भी अपने सब पितरों का उद्धार करके मोक्षधाम को जाते हैं अतएव जैसा पहले कहा इडा नाड़ी का नाम गंगा और पिंगला नाड़ी का नाम सूर्य पुत्री यमुना है एवं दोनों के मध्य में सुषुम्णा नाड़ी का नाम सरस्वती कहलाता है। इन तीनों के संगमरूप इस प्रयाग तीर्थ का मिलना अतीव दुर्लभ है।

इडासुषुम्णे शुभतीर्थकेऽस्मिन्
ज्ञानाम्बुपूर्णा वहतः शरीरे।
ब्रह्माम्बुभिः स्नातितयोः सदा
यः किन्तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा

इडा पिंगला और सुषुम्णा नदियां हैं ये मेरे शिव तीर्थ हैं। जो ज्ञानरूपी जल से पूर्ण तुम्हारे शरीर में बहती हैं उस ब्रह्मजल में जो लोक सदा स्नान करते हैं उनको बाहर की गंगादि नदियों में तथा पुष्करादि तीर्थों में जाने का क्या काम है।

शरीर में षट्चक्र ही महातीर्थ हैं।

इडा मूलस्थाननिवासिनी या।
सूर्यात्मिका यमुना प्रवाहिका॥

तथा सुषुम्णा मूलदेशगामिनी ।
सरस्वती रक्षति मज्जनात्मकम् ॥
मनोगतः स्नानपरो मनुष्यो ।
मन्त्रक्रियायोगविशिष्टतत्त्ववित् ॥
महीस्थतीर्थे विमले जले मुदा ।
मूलाम्बुजे स्नाति स मुक्तिभाग्भवेत् ॥
सर्वेषु तीर्थे (षु) सुरपावनी गंगा ।
महासत्त्वविनिर्गता सती ॥
करोति पापक्षयमेव मुक्तिं ददाति ।
साक्षादमलार्थ पुण्यदा ॥

मूलस्थान में रहने वाली चन्द्रात्मिका इडानाड़ी गंगारूप से तथा सूर्यात्मिका पिंगला नाड़ी यमुनारूप से प्रवाहित होती है और तैसे ही मूलस्थान से सुषुम्णा भी सरस्वती रूप से बहती है, वे अपने में स्नान करने वालों को रक्षा करती है। इसलिये मंत्रक्रिया योग के विशेषत्व को जानने वाले लोक पृथिवी के पवित्र तीर्थों को अपने में ही अनुभव करते हैं ऐसे मनुष्य मन-से प्राप्त मूलाधार कमल में स्नान करते हैं। वे लोक बड़ी प्रसन्नता पूर्वक आनन्द से मुक्ति के भागी होते हैं। अतएव पृथिवी पर जितने पवित्र तीर्थ हैं उसमें परम पावनी सुरनदी गंगा ही देव तीर्थ है जो महासत्त्वगुण से बहती है वह पापों का नाश करके

मुक्ति देती है ऐसी पुण्यदा गंगा में स्नान करने से साक्षात् ज्ञान का प्रकाश होता है।

स्वर्गस्थं यावता तीर्थं स्वाधिष्ठाने सुपङ्कजे।
मनो निधाय योगीन्द्रः स्नाति गङ्गाजले तथा॥
मणिपूरे देवतीर्थं पञ्चकुण्डसरोवरम्।
तत्र श्रीकामना तीर्थं स्नाति यो मुक्तिमिच्छति॥
अनाहते सर्वं तीर्थं सूर्यमण्डलमध्यगम्।
विभाव्य सर्वतीर्थाणि स्नाति यो मुक्तिमिच्छति॥

स्वर्ग में मन्दाकिनी गंगादि जितने तीर्थ हैं वे सर्व शरीरस्थ द्वितीय स्वाधिष्ठान चक्र में हैं इसलिये योगी लोग वहां मन को लगा कर देवतीर्थ मंदाकिनी-गंगाजल में स्नान करते हैं अतएव जो लोग मुक्ति की इच्छा करते हैं वे तृतीय नाभिस्थान के मणि-पूरचक्र में जो देवतीर्थ है जहां पञ्चकुण्ड सरोवर है और कामना तीर्थ है वहाँ स्नान करते हैं, ऐसे ही सूर्यमंडलमध्यवर्त्ती चतुर्थ अनाहतचक्र में सर्व तीर्थों की हृदय में भावना करके मुक्ति की इच्छा वाले लोक वहां स्नान करते हैं।

विशुद्धाख्ये महापद्मे अष्टतीर्थसमुद्भवः।
कैवल्यं मुक्तिदं ध्यात्वा स्नाति वीरो विमुक्तये॥
मानसं बिन्दुतीर्थञ्च कालीकुण्डकलाधरम्।
आज्ञाचक्रे सदा ध्यात्वा स्नाति निर्वाणसिद्धये॥

कण्ठ में पंचम विशुद्धनामक महाचक्र है जहां अष्टतीर्थ प्रकट होते हैं वेही तीर्थ कैवल्य मुक्ति के देने वाले हैं उन तीर्थों का ध्यान करके वीर योगी लोक मुक्ति के लिये वहां पर मन लगा के स्नान करते हैं। षष्ठ आज्ञा चक्र में मानसरोवर, विन्दु सरोवर, पंपासरोवर एवं नारायण सरोवर हैं और वहीं पर कालीकुण्डतीर्थ तथा कलाधर सोमेश्वर महादेव हैं उनका ध्यान करके निर्वाणसिद्धि के लिये योगीजन वहां दिव्य स्नान करते हैं वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

एतत्कुलप्रियस्नानं कुर्वन्ते योगिनो मुदा ।
अतो वीराः सत्वयुक्ता सर्वसिद्धियुताः सुराः ॥
स्नानमात्रेण निष्पापी शक्तः स्यद्वायुसङ्ग्रहे ।
तीर्थानां दर्शनादेषां मुक्तो योगी भवेद्ध्रुवम् ॥
नानापापान् सदा कृत्वा ब्रह्महत्यादिनिर्गतान् ।
कृत्वा स्नानं महातीर्थे सिद्धाः स्युरणिमादिगाः ॥

अतएव ऊपर कहे हुये मेरे शिवतीर्थ का मानसिक दिव्य स्नान योगमार्ग द्वारा कुण्डलिनीशक्ति के जागरण से होता है उसको योगी लोग बड़े हर्ष और प्रेम से करते हैं। स्नान करने वाले योगी लोग शिवतीर्थ में स्नान के प्रभाव से सत्त्वगुणयुक्त होकर सब सिद्धियों को प्राप्त होके जीवन्मुक्त हो जाते हैं। योग साधना के बल से जो योगी सुषुम्णा में प्राणवायु को रोकने में समर्थ हैं वे ही अन्तर के मेरे तीर्थ में मानसिक दिव्य स्नान

करने मात्र से निष्पाप हो जाते हैं। ऐसे निष्पापयोगी, अपने में शिवतीर्थ के दर्शनमात्र से निश्चय मुक्त हो जाते हैं। ऐसा परम पावन सब सिद्धियों को देने वाले शिवतीर्थ का माहात्म्य बड़ा भारी है। जो लोग सदा नाना प्रकार के पाप करते हैं अथवा जिन्होंने ब्रह्महत्यादि महापाप किये हैं—ऐसे पापकरने वाले महा पापी होते हुए भी यदि वे लोग अपने अन्तर के महातीर्थ में स्नान करते हैं तो सब पापों से मुक्त होकर वे अणिमादिसिद्धियों को प्राप्त करते हैं।

अतएव अब तुम अच्छी तरह समझ गये होगे कि तुम्हारे में ही सारे ब्रह्माण्ड के तीर्थ तथा देवी देवता एवं भुक्ति मुक्ति देने वाले ईश्वर हैं और तुम्हारे बिना इस जगत् में कुछ भी नहीं है, जब तुम मनुष्य ही इस जगत में नहीं रहोगे तो मैं ईश्वर भी अपनी लीला कैसे कर सकूंगा। अतएव जो तुम्हारी वास्तविक ही मुझसे मिलने की इच्छा है तो इन तीर्थों में तुम्हें अवश्य स्नान करना ही चाहिये कि जिससे तुम्हारा प्रायश्चित्त होकर तुम शुद्ध और पवित्र हो जाओ एवं तुम्हारे शरीर मन प्राण स्वस्थ और संगठित हो जायें तभी तुम मुझसे मिल सकोगे।

॥ मोक्ष मार्ग के द्वार पर कुण्डलिनी शक्ति ॥

इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा सूक्ष्म रूपिणी।
सर्वं प्रतिष्ठितं यस्मिन्सर्वगं सर्वतोमुखम् ॥

द्वासप्ततिसहस्राणि नाड़ि द्वाराणि पञ्जरे ।
सुषुम्णा शाम्भवीशक्तिः शेषस्त्विह निरर्थकाः ॥

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थान निरामयम् ।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ॥

अतएव तुम्हारे शरीर में जो बहत्तर हजार नाड़ियां हैं वे सभी तीर्थरुप कहलाती हैं परन्तु इडा, पिंगला और सुषुम्णा, गंगा, यमुना, सरस्वती ही प्रधान तीर्थ हैं और उसमें भी सरस्वती सुषुम्णा ही महातीर्थ है क्योंकि सुषुम्णा मैं ही मैं रहता हूँ–सुषुम्णा ही मेरा घर है इसलिये सुषुम्णा के विना और नाड़ियों से तुम्हारा कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा। तुम्हारे लिये सरस्वती के बिना सभी तीर्थ निरर्थक हैं। यह सुषुम्णा ही शाम्भवी शक्ति, तुमको मुझसे मिलाने वाली है परन्तु जिस सुषुम्णा मार्ग से निरामय ब्रह्मस्थान में जाया जाता है उसके द्वार पर कुंडलिनी शक्ति सोई हुई है, वह तुमको सहसा मेरे पास आने नहीं देगी। तुम्हारे पाप पुण्य के भय से वह शक्ति सदा सोती ही रहती है उसको जगाने का एक मात्र उपाय प्राणायाम ही है अथवा केवल तन्मय होकर मेरा भजन करना भी उपाय है। यदि तुम प्राणायाम करके उस शक्ति को जगा लोगे तो वह तुम्हें मेरे पास ठीक पहुँचा देगी, उसके अनुग्रह के बिना कोई भी मनुष्य प्रयाग तीर्थ में जा नहीं सकता क्योंकि प्रयाग में जाने का केवल एक ही मार्ग है। इस मार्ग को न जानकर बहुत से कुतार्किक लोग

'अहं ब्रह्मास्मि जगन्मिथ्या' मैंब्रह्म हूँ, जगत् मिथ्या है। इस तरह ब्रह्म और माया का ही विचार करते करते मर गये तथापि इस पथ में ही नहीं आये जहां कि मैं हूँ और बहुत से लोग तो अपने और दूसरों के तथा तुम्हारा और मेरे कर्त्तव्य का विचार ही करते रहते हैं तथापि इस पथ को नहीं पाते, बड़े बड़े विचार-शील मनुष्य प्रकृति पुरुष का तथा आत्मा परमात्मा का और जीवजगत् का निर्णय करने में लगे हैं परन्तु अपने गन्तव्य स्थान के वास्तविक मार्ग पर नहीं आते। मैं सुषुम्णा के बीच में हूँ और प्राणायाम द्वारा कुंडलिनी जागरण से ही मिलता हूँ इस लिये जब तुम अपने पाप पुण्य का प्रायश्चित्त करने के लिये प्रयाग तीर्थ की यात्रा करोगे तब प्राणायाम द्वारा कुंडलिनी देवी से जागने की प्रार्थना करना, यदि उस देवी ने कृपा की तो तुम मुझसे सहज ही मिल जाओगे और यदि तुम्हारी कुंडलिनी शक्ति नहीं जागी तो तुम मुझसे किसी जन्म में भी नहीं मिल सकोगे। प्राणायाम से ही कुंडलिनी शक्ति जागती है।

कुण्डलिनी के उद्बोधन से मोक्ष का द्वार खुलता है।

उद्घाटयेत्कपाटन्तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत् ॥
मध्ये सुषुम्णा तन्मध्ये वज्राख्या लिङ्ग मूलतः।

तन्मध्ये चित्रिणी सूक्ष्मा बिसतन्तु सहोदरा ॥
मूलात्सहस्रारस्तत्तदन्तर ब्रह्म नाडिका ।

इसलिये कुण्डलिनी के पास आने के मार्ग प्राणायाम को जान लोगे तो तुमको किसी की भी अपेक्षा करनी नहीं पड़ेगी, वह शक्ति स्वयं ही तुमको ठीक मेरे पास पहुँचा देगी, मेरी प्राप्ति का केवल यह एक ही उपाय है। जैसे दरवाजे का ताला, चाबी से बिना परिश्रम ही सरलता से हठात् खुल जाता है तद्रूप कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन से मोक्ष का मार्ग खुल जाता है। मेरी प्राप्ति का यही प्रशस्त पथ है किन्तु जो लोग और पथ की कल्पना करते हैं वे लोग निश्चय भटकते रहते हैं, यह मार्ग बहुत ही सीधा और सरल है।

चुम्बक को देखते ही लोहा मिलने को उद्यत हो जाता है वैसे ही इस पथ में आया हुआ कोई भी लौटना नहीं चाहता, चुम्बक के निकट से लोहा नहीं हटता परन्तु सोना चांदी तांबा आदिक उत्तम होते हुये भी चुंबक से नहीं मिल सकते इसी प्रकार योगाभ्यासी के बिना इस मार्ग में और किसी की गति नहीं है। मेरे निर्गुण स्वरूप का विचार करने वाले शुष्क वेदान्ती, विचार द्वारा अपने अन्तःकरण के आगे नहीं जाते परन्तु मैं अन्तःकरण से भी परे हूँ इसलिये योगसाधना करनेवाले संयमी पुरुष ही मुझसे मिलते हैं और मैं उनसे मिलता हूँ अतएव मुझसे मिलने आने का मार्ग मूलाधार मेरुदंड में कन्द के ऊपर कुंडलिनी शक्ति है

और वहीं से सुषुम्ना का पश्चिममार्ग प्रारंभ होता है जो सहस्रार तक सीधा गया है सुषुम्णा के बीच में वज्रा और वज्रा के बीच में चित्रा नाड़ी है । विरजा ब्रह्मरूपिणी कहलाती है। यदि प्राणायाम द्वारा तुम्हारा प्राण सहस्रार में पहुँच जाय तो समझना कि तुम और हम एक हैं।

ज्ञातव्य तत्त्व सब तुम्हारे में ही हैं।

इस ब्रह्माण्ड के साथ तुलना करने पर यह पिण्ड तो नाम मात्र भी गणना में नहीं है तथापि मैंने इस पाञ्चभौतिक मनुष्य शरीर में ही चींटी से लेकर ब्रह्मा तक के ज्ञान के तत्त्व का समावेश कर रखा है उसको यदि तुम अपने में न देखो तो तुम्हारी महा अकर्मण्यता है अतएव तुम लोग बाहर जगत् में चक्षु द्वारा मेरा कार्य अथवा ज्ञान देखते हो वह बदलने वाला मेरा स्थूल रूप है और स्वप्न की तरह मिथ्या है परन्तु तुम्हारे अन्तर का मेरा ज्ञान सूर्य के सदृश जाज्वल्यमान अध ऊर्ध्व सर्वत्र समभाव प्रकाशित और एकसा है। तुमको याद होगा कि जब तुम इस जगत् में आये, कुछ साथ नहीं लाये और न कुछ जाते समय ले जाओगे। यदि तुमने इस मनुष्य जन्म में ज्ञान का संग्रह नहीं किया तो फिर तुम कब ज्ञान ग्रहण करोगे। यह बात सोचो कि रोग शोक दुःख दैन्य के कारण तुम लोग इनके प्रतिकार में ही काल व्यतीत कर जाओगे क्योंकि न तो पुण्य से तुम्हारा निस्तार है और न पाप से। अतएव तुम अपने

पाप पुण्य का प्रायश्चित्त प्रयाग में कर लो तब तुम्हारा मन विशुद्धता को प्राप्त होगा, उस समय विश्व को क्रियाशील करने वाले मेरे प्राण का तुमको परिचय होगा।

ध्यान का अर्थ मनको निर्विषय करना

यदि तुम रोग शोक दुःख दैन्य को भगाना चाहो तो मेरे कथित महायोग का साधन करना, यह योग मैंने सिद्ध योगीराट् कपिलमुनि को कहा था कि जिस के प्रभाव से वह मेरे स्थान के अधिकारी हो गये, उनके सांख्य योग का एक ही सूत्र तुम्हारे ज्ञान के लिये यथेष्ट है। उन्होंने मेरे सारे ज्ञान को "ध्यानं निर्विषयं मनः" मन को निर्विषय करने का नाम ही ध्यान है, इस सूत्र में बांध रखा है अतएव ध्यान करने वाले लोग वृथा ही कल्पना करते हैं, कि हम सर्वशक्तिमान् का ध्यान करते हैं, हममें सब कुछ है, हम ईश्वर रूप हैं, जो चाहें सो कर सकते हैं इत्यादि। परन्तु कपिल देव के सूत्र से तुम्हें समझ लेना चाहिये कि वास्तविक तुम्हारे में सब कुछ होने पर भी तुम उसका आनन्द नहीं ले सकते क्योंकि सूत्र के कथनानुसार तुम्हारे ध्यान की चिन्ता निर्विषय मन की नहीं है। मैं तृप्त हूँ, ऐसा कहने से क्षुधा की निवृत्ति नहीं होती तैसे ही बिना योग-साधना किये मन को निर्विषय नहीं करने से तुम अपनी शक्तियों का विकास नहीं कर सकते। योगशास्त्र—कथनानुसार ध्यान तो अष्टांगयोग का सातवां अंग है यदि ध्यान ही ठीक हो जाय तो समाधि होने में कुछ कठिनाई नहीं है। ध्यान के बारहवें भाग

का समय समाधि के एक भाग का समय समझा जाता है, यदि ध्यान ऐसा ही सहज होता तो ध्यान करने वाले सभी जीवन्मुक्त हो जाते।

न ध्यानं ध्यान मित्याहुर्ध्यानं निर्विषयं मनः
तस्य ध्यानप्रसादेन सौख्यं मोक्षं न संशयः ॥
मनसा कल्पिता मूर्तिर्नृणाञ्चेन्मोक्षदायिनी।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजा नो मानवस्तथा ॥
तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्काष्ठादिनिर्मितान्।
योगिनो न प्रपूज्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात् ॥

जैसा तुम लोग ध्यान करते हो या ध्यान का अर्थ समझते हो वह ध्यान ऐसा नहीं है अपनी कल्पना से माने हुये ध्यान को यथार्थ ध्यान नहीं कहा जा सकता परन्तु निर्विषय अवलंबन शून्य-एकाग्रमन करने का नाम ध्यान है जो वास्तविक ही ध्यान कहलाता है कि जिससे निस्सन्देह परमानन्द का सुख और मोक्ष की प्राप्ति होती है। मनको निर्विषय किये बिना जब तुम ध्यान करोगे, किसका ध्यान करोगे? पर्वत, नदी, सरोवर और नाना प्रकार के तीर्थ का अथवा मिट्टी के या पत्थर के देवी देवता का हो तो करोगे परन्तु मन से कल्पना की हुई देवी देवताओं की मूर्त्तियां मनुष्यों को मोक्ष नहीं दे सकती हैं क्योंकि जैसे स्वप्न में प्राप्त हुये राज्य से कोई मानवी राजा नहीं हो सकता है तैसे ही तुम्हारे बाहर के पृथ्वी

परके तीर्थ जड़ पदार्थ जलपुर्ण हैं और तुम्हारी कल्पना के देवी देवता अचैतन्य वस्तु काष्ठप्रस्तरनिर्मितमूर्तियां तुम्हारे मनके कल्पितरूप हैं अतएव ध्यान में भी तुम इनका ही पूजन करते रहोगे किन्तु इसमें तुम्हारा मंगल नहीं है इसलिये योगी लोग उनको नहीं पूजते। वे लोग तो प्राणायाम द्वारा निर्विषय मन करके अपने चैतन्य रूप आत्मदेव स्वयं प्रकाश का प्रत्यक्ष दर्शन ध्यान और पूजन करते हैं।

जब तुम आंख मूंद कर ध्यान करने बैठते हो तो तुम्हें अन्तर में अन्धकार ही दीखता है अथवा तुम अपनी कल्पना के चित्र देखते हो, इससे ही तुम्हें समझ लेना चाहिये कि विषय अन्तर में नहीं है किन्तु बाहर के जिन विषयों को तुम्हारा मन कल्पनारूप से अन्तर में लाता है तुम उन्हीं को कल्पना करते हो परन्तु ध्यान का अर्थ मनको निर्विषय करना कहा है न कि कल्पना करते रहना अतएव कल्पना करके तुम ध्यान के मार्ग से दूर जाते हो, इसका कारण यह है कि मनके ऊपर रहने वाले प्राण को रोके बिना ध्यान में बैठते हो इसलिये तुम्हारा मन स्थिर नहीं होता है। विषय, बाहर में होने के कारण इन्द्रियों के साथ मन की वृत्तियां स्वाभाविक ही बहिर्मुख रहती हैं अतएव ध्यान में बैठते हुये भी तुम कल्पनातीत विषय ईश्वर को अपने ध्यान में नहीं ला सकते किन्तु प्राणायाम द्वारा तुम प्राण को स्थिर कर लोगे तो बलात्कार से तुम्हारा मन निर्विषय हो जायगा और उस समय तुम अतीन्द्रिय विषय को ग्रहण कर सकोगे

तब तुम्हारी सब कल्पनायें सफल होंगी, उस अवस्था में तुम्हारे मनमें जो जो सङ्कल्प होंगे वे सभी सत्य होंगे नहीं तो ऊपर के मनसे प्राणायाम किये बिना व्यर्थ का चिन्तन करते करते मर जाओगे तथापि हाथ कुछ नहीं लगेगा, इस बात को याद रखो कि तुम जो जो बातें संसार में देखते और सुनते हो उन्हीं की तो कल्पना कर सकते हो परन्तु तुम्हारी यह सांसारिक स्थूल बुद्धि उस कल्पनातीत अतीन्द्रिय विषय को ग्रहण करने का सामर्थ्य नहीं रखती। "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।" उस विषय को जानने के लिये बड़ी विलक्षण बुद्धि होनी चाहिये। मल विक्षेप और आवरण के कारण तुम्हारी बुद्धि में जो जड़ता और मलीनता है, उसको प्राणायाम करके हटादो फिर देखो कि तुम और हम कौन हैं। इसलिये तुम्हें निर्विषय मन से ध्यान द्वारा मेरा ज्ञान लाभ करना चाहिये।

नास्ति ध्यानं बिना ज्ञानं नास्ति ध्यानमयोगिनः।
ध्यानं ज्ञानञ्च यस्यास्ति तीर्णस्तेन भवार्णवः॥

ज्ञानं प्रसन्नमेकाग्रमशेषोपाधिवर्जितम्।
योगाभ्यासेन युक्तस्य योगिनस्त्वेव सिद्ध्यति॥

क्योंकि ध्यान के बिना ज्ञान नहीं होता है और वह ध्यान भी प्राणायामपरायण योगयुक्त हुये बिना नहीं हो सकता, इस ध्यान के लिये ही तुम्हे योगसाधना करना आवश्यक है इसलिये जो लोग योगसाधना से ज्ञानध्यानसम्पन्न हैं वही लोग भवसागर

मुख नोचे है ऐसा हृदयकमल ऊर्द्ध्वमुख होकर विकसित हो जाता है।

जब योग साधन द्वारा प्राणायाम के अभ्यास से अनाहत चक्र में हृदयकमल ऊर्द्ध्वमुख हो जाता है और खिल जाता है तो मन भी शान्त और शून्य एकाग्र हो जाता है तब ही ध्यान करना सहज हो जाता है उस समय सोलहदलकमल की प्रत्येक पंखड़ी में क्रमशः सूर्य चन्द्र, अग्नि और विद्युत् का ध्यान करना चाहिये और कमल के मध्य में मेरे वास्तविकरूप ज्योतिर्मय आत्मतत्त्व का ध्यान करके तन्मय हो जाना चाहिये। यदि ऐसा दृढ़ अभ्यास न हो तो चित्त को चारों ओर से खींच कर एक स्थान में लगा के मेरे सर्वव्यापक विष्णुरुप का पादस्थ, पिण्डस्थ और रूपस्थ ध्यान करते करते अभ्यास दृढ़ करके उसको भी छोड़कर और कोई चिन्ता न करके सुनसान होकर मेरे महाविष्णुरूप में मनको मिला देना चाहिये इससे निश्चय मन वश में हो जाता है।

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि।
विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम्॥
ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञान क्रिया भ्रमः॥

हे उद्धव इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा ध्यान करने से मन

वशीभूत हो जाने पर जैसे एक ज्योति में दूसरी ज्योति मिल कर एक हो जाती है तैसे ही योगसाधना करनेवाले साधक अपने में मुझको और मुझ सर्वात्मा में अपने को मिला देते हैं। वास्तविक ज्ञान और ध्यान इसी का ही नाम है बाक़ी इसके विना और सभी ध्यानमात्र कल्पना है। ऐसे तन्मयता युक्त प्रबल ध्यान योग के द्वारा चित्त को स्वाधीन कर लेने से उन ध्यान करने वाले योगियों की द्रव्य, ज्ञान एवं कर्मविषयक भ्रान्ति शीघ्र दूर हो जाती है।



तृतीय प्रकाशः

कल्याण के तीन मार्ग ।

उद्धव उवाच–

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ।
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥

परम भक्त उद्धव ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि हे भगवन् आपकी आज्ञारूप श्रुति विधि और निषेध भेदसूचक कर्मों के दोष गुण शुद्धाशुद्ध और स्वर्ग नरक का निरूपण करती है यह तो ठीक है परन्तु इस विषय में मेरा मन शंकास्पद है तथापि मैं मानता हूँ कि आप के वाक्य वेद ही अज्ञात विषय को ज्ञात कराते हैं और अदृष्ट, स्वर्ग, अपवर्ग, तथा साध्य और साधन की उपलब्धि भी वेद से ही होती है किन्तु द्विधा के कारण मेरा मन भ्रम में है इसलिये कृपया परम कल्याण का मार्ग कहिये ।

श्री भगवानुवाच–

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥
निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।

तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्ति योगोऽस्य सिद्धिदः ॥

तब भगवान श्रीकृष्ण बोले कि हे उद्धव सुनो! मनुष्यों के परम कल्याण के लिये मैंने ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग ये तीन उपाय कहे हैं इन तीनों के विना मुझसे मिलने का और कोई मार्ग मनुष्यों के कल्याण का कहीं नहीं है।

जिनको किसी भी प्रकार की कोई कामना नहीं है जो कर्मों को दुःख रूप समझ कर त्याग करते हैं और मेरे ज्ञान में संलग्न होते हैं ऐसे वैराग्यवान निष्काम पुरुषों के लिये ज्ञान योग है और जो लोग कर्मासक्ति नहीं त्याग कर सकते हैं किन्तु सांसारिक सुख भोगना चाहते हैं एवं संसार में ही रहकर पर-मार्थ लाभ करना चाहते हैं ऐसे मनुष्यों के लिये कर्म योग है, और जो मनुष्य साँसारिक कर्मों में न तो अति आसक्त हैं और न अति विरक्त हैं जिनको दैव इच्छा से मेरे ज्ञान में श्रद्धा उत्पन्न हुई है जो न तो भोगी हैं और न त्यागी हैं और जो यह समझते हैं कि सुख में फंस जाने से हम भगवान से नहीं मिल सकेंगें इस लिये न तो सांसारिक सुख ही अच्छी तरह भोगना चाहते हैं और उसको न भोगके त्यागना भी नहीं चाहते अर्थात् जो लोग संसार का आनन्द सुख ही सुख भोग कर मर मिटना भी नहीं चाहते हैं और न तो सारे सुख को विसर्जन करके भिखारी भी

नहीं होना चाहते हैं परन्तु संसार में ही रह कर मुझे पाने की इच्छा से मेरी कथा सुनना चाहते हैं उन लोगों के लिये मेरा भक्तियोग ही सिद्धि दायक है।

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥
स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीः काम उद्धव।
न यातिस्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत्॥
अस्मिंल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया॥
कर्मणां परिणामित्वादाविरञ्चादमङ्गलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत्॥

अतएव जब तक मन वासना रहित न हो और मेरे ज्ञान श्रवण में दृढ़ विश्वास न हो अथवा मेरे लिये चित्त में आत्यन्तिक व्याकुलता न हो तब तक मनुष्यों को कर्म करते रहना चाहिये अर्थात् जब तक कर्म करते करते निष्कर्मता न आजाय और संसार से तीव्र वैराग्य न हो जाय तब तक मनुष्यों को कर्म त्यागना नहीं चाहिये, हे उद्धव जो लोग अपने धर्म को पालन करते हुये कर्म फल की आशा त्याग कर विहित कर्म यज्ञ, दान, जप तपादि शुभ निष्काम कर्म योग करते हैं वे यदि कोई निषिद्ध कर्म न करें तो वे न स्वर्ग में ही जाते हैं और न नरक में जाते

हैं परन्तु वे लोग वासना त्याग से निष्पाप पवित्र हो कर इस लोक में या तो विशुद्ध तत्वज्ञान लाभ करते हैं अथवा मेरी भक्ति पाते हैं, कर्म परिणामी है और उनसे प्राप्त होने वाला ब्रह्मलोक आदि भी विकारवान् होने के कारण वह भी अमंगलरूप ही है इसलिये बुद्धिमान् लोगों को चाहिये कि इस लोक के समान ही परलोक को भी नाशवान् जानकर उसकी आशा त्याग दें।

मनुष्य जन्म महा दुर्लभ है।

स्वर्गिणोप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा।
साधकं ज्ञान भक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम्॥
न नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः।
नेमं लोकं च कांक्षेत देहाऽऽवेषात्प्रमाद्यति॥
एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः।
अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम्॥
नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं।
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्॥
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं।
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

परन्तु जो लोग पुण्य कर्म करके देवता होने की कामना करते हैं उन्हें समझ लेना चाहिये कि स्वर्ग का सुख भी चिर-स्थायी नहीं है इस लिये नरक में पहुँचे हुये लोगों की तरह

स्वर्गवासी देवता भी इस मनुष्य देह की इच्छा करते हैं क्योंकि यह मनुष्य शरीर ही ज्ञान और भक्ति दोनों का साधक है परन्तु उस देव शरीर से न तो भक्ति हो सकती है और न ज्ञान लाभ किया जा सकता है, इस लिये विवेकी पुरुषों को चाहिये कि नरक की गति के समान स्वर्ग की गति की भी कामना न करें और इस लोक में फिर मनुष्य शरीर प्राप्ति की भी इच्छा न करें क्योंकि शरीर में आस्था हो जाने से ज्ञान साधन में प्रमाद होगा, अतएव मरने से पूर्व वुद्धिमानों को सावधानता से समझ लेना चाहिये कि यह मनुष्य शरीर नाशवान् होने पर भी परम पुरुषार्थ का साधक है और इस देह से ही योग साधन करके मोक्ष की प्राप्ति होती है जहां से पुनः कभी आना नहीं होता है यह मनुष्य शरीर ही सव शुभ कर्म प्राप्ति का आदि कारण है जो पुण्य कर्म करने वालों का मिलना सुलभ है परन्तु पाप कर्म करने वालों को मिलना अति दुर्लभ है यह मानव देह भवसागर से पार होने के लिये दृढ़ नौकारूप है इसको चलाने के लिये गुरु ही कर्णधार है और मेरे अनुकूल साधन भजनरूप वायु से चलकर इस नौका को पार ले जाता है ऐसे मेरी प्राप्ति कराने वाले इस उत्तम मनुष्य देह को पाकर भी जो मनुष्य संसार सागर से पार नहीं होते वे लोग आत्मघाती हत्यारे हैं।

अष्टाङ्ग योगसाधन का उपदेश।

यमादिभिर्योग पथैरान्वीक्षिकया च विद्यया।

ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥
यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ।
अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥

इसलिये अपने कल्याणार्थ मनुष्य को चाहिये कि यम नियम आदि अष्टांग योग साधना से तथा वेदान्त कथित सद् सत् विवेकरूप आन्वीक्षिकी ब्रह्म विद्या से और ईश्वर प्रणिधान-रूप उपासना से जिनको जैसी अनुकूलता हो वे अपने अधि-कारानुसार मेरा भजन करके मुझसे मिलें ये ही मेरी प्राप्ति के मार्ग हैं इसके विना और किसी भी मार्ग में जहां तहां चित्त को भटकाना वृथा है हे उद्धव! जो मार्ग सदा से हो चले आते हैं उन मार्गों से आने वाले हो मुझे मिलते हैं और मैं उन्हें मिलता हूँ परन्तु मेरे कथित मार्गों को छोड़कर जो लोग अपने कल्पित और दूसरे मार्गों में भटकते हैं वे मुझे नहीं मिलते और मैं उन्हें नहीं मिलता उनका मंगल नहीं हो सकता अतएव मेरी प्राप्ति का साधन अष्टांग योग एवं वेदान्त कथित ज्ञान और ईश्वर प्रणि-धानरूप भक्ति ये तीन ही मेरी प्राप्ति के प्रशस्त पथ हैं। इसलिये सब कर्मों से उपराम होकर योगसाधना आरम्भ करने वाले वैराग्यवान् योगी लोग इन्द्रियों का संयम करके ईश्वर प्रणिधान-रूप भक्तिद्वारा योग साधना से मेरे में अपने चित्त को स्थिर करते हैं वे ही मुझे पाते हैं।

धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ।
अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणोजितेन्द्रियः ।
सत्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥

योग के बिना और मार्ग से मन को शीघ्र वश नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह चित्त बड़ा ही चंचल है जब विचार से मन स्थिर किया जाता है तो वह तुरन्त ही चंचल घोड़े की तरह इधर उधर भागता है इस लिये उस समय सावधानता से मन की प्रबल इच्छा के प्रतिकूल न होकर उस को प्रबोध देकर अपने आधीन करना चाहिये यदि मन की थोड़ी बहुत भी इच्छा की पूर्ति न की जाय तो वह बड़ा ही वेगवान् होता है उस समय उसको रोकना भी कठिन हो जाता है इसलिये साधकों को अपनी अनुकूलता का विचार करके मन का भोग बनना चाहिये यदि उस समय संकटापन्न अवस्था उपस्थित हो जाय तो एक मात्र मन के विचार पर निर्भर न करके दृढ़तापूर्वक उत्साह से प्राणायाम करना चाहिये क्योंकि योगसाधना द्वारा प्राणायाम से मन निश्चय वश में हो जाता है इसलिये व्याकुल होकर मन को स्वच्छन्द नहीं होने देना चाहिये परन्तु योगमार्ग से प्राणायाम करके मन, प्राण, इन्द्रियों को जीत कर सात्त्विक बुद्धि से मन को अपने आधीन कर लेना चाहिये ।

एषवै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ।
हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥
सांख्येन सर्व भावानां प्रतिलोमानुलोमतः ।

भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥
निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥

अतएव मन को अपने आधीन करने के लिये सर्वश्रेष्ठ मार्ग यम नियम आदि युक्त अष्टांग योग साधन करना ही मन का परम निग्रहरूप योग कहलाता है इसी योग साधना के ज्ञान को भली प्रकार जान कर मन को वश में करने के लिये तुम्हें बार बार योगाभ्यास करना चाहिये, और जब तक मन वश में न हो तब तक अनासक्त होकर सांख्य योग विधि से सब पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश का अनुलोमविलोम विचार करना कि जहां से यह जगत् उत्पन्न होता है और पुनः इस का जहां लय साधित होता है उसका अपने अन्तर में अन्तरात्मा से चिन्तवन करते रहना चाहिये, इस प्रकार अनासक्त होकर वैराग्य अवलम्बन करके विचारपूर्वक समझ कर आत्म तत्व का अनुशीलन करते रहने से एवं चिन्तित तत्व का बार बार चिन्तन करने से, मन अपनी दुष्टता छोड़ देता है।

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णःसर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥
प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतोमाऽसकृन्मुनेः ।

कामा हृदया नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥
नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥

अतएव इस प्रकार जो लोग मेरे कथित अष्टाङ्ग योग साधन तथा ब्रह्म विद्या के अधिकारी नहीं हैं परन्तु जिनको मेरे ज्ञानमें श्रद्धा है और अन्य कर्मों में वैराग्य है जो सम्पूर्ण कामनाओं को दुःख रूप समझते हुये भी उन्हें त्यागने में असमर्थ हैं वे उन भोगों को आसक्ति छोड़ कर भोगते रहें और श्रद्धा एवं दृढ़ निश्चय से प्रेमपूर्वक मेरा भजन करें, इस प्रकार भक्ति योग से निरन्तर मेरा भजन करते रहने से उनके हृदय में मेरे ज्ञान का प्रकाश होने पर उन लोगों की सब कामनाओं का नाश हो जाता है कामना का नाश निष्कामता-निरपेक्ष को ही परम निःश्रेयस-महाकल्याण कहा है इस लिये उपरोक्त योगज्ञान भक्तियुक्त निष्काम और निरपेक्ष पुरुषों को ही मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि मयिदृष्टेऽखिलात्मनि ॥
ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थोहेतुश्च संमताः ।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मद्दते प्रियः ॥
न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ।

साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥
एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥

अतएव ज्ञान योग कर्म योग एवं भक्ति योग से मुझ में संलग्न हो जाने से समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं तब मुझ सर्वात्म का साक्षात्कार होने से हृदय ग्रन्थी खुल जाती है और सब सन्देह दूर हो जाते हैं और सम्पूर्ण कर्मों का नाश हो जाता है, ऐसे ज्ञानी का अभीष्ट स्वार्थ और स्वार्थ का साधन तथा स्वर्ग अपवर्ग इत्यादि सब कुछ मैं ही हूँ मेरे बिना ज्ञानी को जगत् में कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं होता इन ज्ञानियों का तो केवल मैं ही सर्वस्व परम प्रिय हूँ ऐसे मेरे अनन्य भक्तों को और बुद्धि से परे परम तत्व को जानने वाले समदर्शी महात्माओं को सांसारिक गुण दोषदृष्टि से होने वाले विकार नहीं होते इस प्रकार मेरे कहे हुवे ज्ञान, कर्म और भक्तियोग के मार्ग का अवलम्बन करके जो लोग चलते हैं वे कुशलतापूर्वक मेरे पास परम धाम को पहुँचते हैं कि जो स्थान परब्रह्म कहलाता है ।

चार श्रेणी के मनुष्य

हे उद्धव ! मेरे कहने से अब तुम अच्छी तरह समझ गये होगे कि इस संसार में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अधम इस प्रकार चार श्रेणियों के मनुष्य हैं, उनमें तीन श्रेणी के लोगों के लिये अपने अपने अधिकारानुसार तथा अपनी अपनी अनुकूलता

आवश्यकता और अवस्थानुसार चलने के लिये मैंने ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग तुमसे कहे, उसमें उत्तमवर्ग के लोग संसार को अनित्य समझ कर भोगों को त्याग करके ज्ञान, वैराग्य, त्याग, तपस्या-आश्रय कर निवृत्ति परायण होते हैं वे अष्टांग योग साधन द्वारा मेरा वास्तविक ज्ञानलाभ करते हैं, वे मेरे परम भक्त ज्ञानयोगी मुझे अतीव प्रिय हैं।

दूसरे मध्यमवर्ग के जो लोक हैं वे संसार को न मिथ्या ही समझते हैं और न सत्य ही मानते हैं परन्तु संसार के भोगों को मन लगा कर भोग भी नहीं सकते और विना भोगे छोड़ना भी नहीं चाहते, इतस्ततः करते हैं, ऐसी द्विधा में रहने वाले अपना परम कर्त्तव्य स्वयं या शास्त्रों द्वारा ठीक नहीं कर सकते हैं, उन लोगों के लिये तीर्थ, व्रत, दान पुण्य एवं जप तप और पाठ-पूजन तथा मेरी कथा श्रवण सत्संगादि भक्तियोगसाधना के साथ ईश्वरप्रणिधानरूप अष्टांगयोगसाधनद्वारा मुझसे मिलना सहज है। योगसाधना करने में उन्हें घरबार छोड़ने की भी आवश्यकता नहीं है इस लिये द्विधा में रहते हुये भी वे योग द्वारा अपना कल्याण कर लेंगे, ऐसे भक्तियोग से मुझसे मिलने की इच्छा वाले लोग अपनी भावनानुसार मुझ से फल पाते हैं।

तीसरे कनिष्ठवर्ग के मनुष्य हैं जो संसार को कुछ सत्य समझते हैं एवं परोपकार करने के लिये बारंबार संसार में आने की इच्छा करते हैं, वे लोग सांसारिक भोग भी भोगना चाहते हैं और मुझसे मिलना भी चाहते हैं; वे कर्मयोगद्वारा परोपकार

करते हैं, यज्ञ करते हैं, दान देते हैं पाठशाला धर्मशाला और गोशाला बनाते हैं विद्यालय और अन्नक्षेत्र खोलते हैं, इस प्रकार वे लोग अन्नदान, वस्त्रदान, धनदान और जप तप तीर्थव्रत इष्ट और पूर्त यज्ञ करके मेरा भजन करते हैं वे भी निष्काम कर्म योग करते हुये संसार में ही रह कर अष्टांग योग साधना करके मुझसे आनन्दपूर्वक मिल सकते हैं। हे परम प्रिय उद्धव इस प्रकार ज्ञान कर्म और भक्ति से योगसाधन करके सभी श्रेणी के लोग मुझसे मिल जाते हैं और परमानन्दलाभ करते हैं मैं सभी के लिये समान एकसा हूँ इसलिये ज्ञानमार्ग कर्म-मार्ग तथा भक्तिमार्ग यह तोनों अष्टांगयोग के ही आश्रित हैं इन से विपरीत और कोई साधनद्वारा मुझसे मिलना शक्य नहीं है।

इस संसार में चौथी श्रेणी के जो अधम मनुष्य हैं वे संसार को ही सर्वस्व समझते हैं, वे लोग अपने स्वार्थ के सामने न्याय अन्याय पाप और पुण्य कुछ भी नही मानते और धर्म कर्म से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते, वे किसी भी प्रकार से सुखी रहने में ही अपना सौभाग्य समझते हैं, इन्द्रियसुख के लिये किसी भी उपाय से धनोपार्जन करने में निमग्न रहते हैं, वे निषिद्ध निन्दित पापकर्म करने में भी नहीं डरते और संसार में ही रचे पचे रह कर मर मिटते हैं, वे मुझसे मिलने की इच्छा नहीं करते। उन मनुष्यों को मेरी कथा श्रवण और सन्त समागम करना आवश्यक है अतएव जो मनुष्य

अपनी अवस्था और मेरी व्यवस्था को नहीं जानते उनका पार कैसे लग सकता है? इस लिये मनुष्यों को अपनी सांसारिक करुणाजनक अवस्था और मेरी परम उदार पारमार्थिक व्यवस्था जानकर योगसाधनाद्वारा मुझसे मिलना चाहिये।

गुणदोषकथन

श्री भगवानुवाच—

य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञान-क्रियात्मकान्।
क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥
स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्त्तितः।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे उद्धव भक्तिज्ञान और कर्म, मेरी प्राप्ति के इन तीनों मार्गों को छोड़के जो लोग अपनी क्षुद्र कामनाओं के पीछे दौड़ते हैं वे बारंबार आवागमन के चक्कर में पड़ते हैं अतएव अपने अपने अधिकारों में निष्ठापूर्वक स्थित रहना ही गुण कहलाता है और इसके विपरीत अनधिकार वर्त्तना ही दोष है, यही गुण और दोष का निश्चय है ॥ १-२ ॥

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ।
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥

हे उद्धव जगत् में भौतिक पदार्थ–सब वस्तुओं के समान होने पर भी प्रयोग की विभिन्नता के कारण शुद्धाशुद्ध माने जाते हैं इसलिये मैंने धर्माधर्म की दृष्टि से शुद्धाशुद्धि एवं व्यवहार की दृष्टि से गुण दोष और जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये शुभाशुभ का विधान किया है, सर्वोत्तम ज्ञान और भक्ति के अनधिकारी तथा धर्म कर्म करने वाले लोगों के लिये मैंने ही मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, आदि रूप से यह आचार की मर्यादा बांधी है ॥ ३-४ ॥

द्रव्यकथन

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्चधातवः ।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥
वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ।
धातुषूद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥
देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥

ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी शरीरों में एक ही आत्मा स्थित है और पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पंचभूत ही वृक्ष से लेकर ब्रह्मा तक उन सब शरीरों के उपादान कारण हैं अतः उनमें कोई वास्तविक भेद नहीं हो सकता । इसी तरह समान धातुओं से संगठित, विभिन्न शरीरों के स्वार्थ धर्माधर्म रूप कर्म, स्वार्थ की सिद्धि के लिये वेद ने विभिन्न नाम और

रूपों की कल्पना की है कि जिससे जीव अपने स्वार्थ को भोग सके, कर्मफल भोग में विपर्यय न हो। कर्मों को नियमित करने के लिये ही मैंने देश काल आदि वस्तुओं में गुणदोष का विधान किया है।

देशकाल का कथन

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरः कीकटासंस्कृतेरिणम् ।
कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ।
यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥

उत्तम देश में अच्छे समय में और उत्तम पात्र से किये हुये कर्मों का फल सत्वर मिलता है इसका विचार न करके कर्म करने से इच्छानुसार फल नहीं मिलता अथवा विपरीत फल मिलता है इसलिये शास्त्रों में देशकाल और पात्र का विधान है अतएव जिस देश में कृष्णसार मृग न हो और जहां वैदिक कर्म कराने वाले वेदपाठी ब्राह्मण न हों ऐसे ब्राह्मण पुरुष और कृष्ण-मृग रहित देश अपवित्र होते हैं काले मृगयुक्त होने पर भी जिन देशों में सत्पात्र के अभाव से पुराकाल में इन्द्र ब्रह्मादि देवताओं ने यज्ञ नहीं किये ऐसे अंग बंग कलिंगादि देश भी अपवित्र समझे जाते हैं, ऐसे ही जिस भूमि में कभी कोई पुण्यकर्म हुआ न हो जो कभी शुभकर्म से संस्कृत हुई न हो अथवा ऊसर हो या मरुभूमि हो वह भी अपवित्र मानी गई है। तैसे ही समय के

गुण दोष तथा शुद्धाशुद्धि न जानकर कर्म करने से व्यवहार और परमार्थ दोनों को हानि होती है, समय चूक जाने से कार्यसिद्धि रह जाती है। शुद्ध समय पर किये हुये कर्मों का फल इच्छानुसार मिलता है परन्तु वही कर्म असमय में करने से व्यर्थ जाते हैं अथवा और ही रूप में परिणत हो जाते हैं इस लिये जिस काल में द्रव्य के संयोग से अथवा स्वतः ही कर्म हो सकते हों ऐसा संक्रान्ति आदि पर्वकाल–पुण्यकाल शुद्ध है और जात मृत एवं ग्रहणादि का अपवित्र काल अशुद्ध है अतएव जिसकाल में शुभकर्म न हो सकते हों वह काल कर्म के अयोग्य होने से अशुद्ध समझा जाता है।

शुद्धा-शुद्धि विवेक

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥

भौतिक सभी पदार्थों की शुद्धाशुद्धि द्रव्य, वचन, काल एवं संस्कार तथा अल्पत्व अथवा महत्व से होती है। शुद्धाशुद्ध द्रव्यः- नदी सरोवर झरने कुआं आदि का जल शुद्ध होता है परन्तु छोटे गढ़ों का जल अशुद्ध समझा जाता है. देश काल और पात्र के भेद से एक ही वस्तु शुद्ध और अशुद्ध कहलाती है, तांबा पीतल के पात्र शुद्ध होने पर भी मूत्रादि के संस्पर्श से अशुद्ध होते हैं और फिर जल से ही शुद्ध किये जाते हैं। वचन की शुद्धिः- शुद्धाशुद्ध में शंका होने पर ब्राह्मण तथा सत्पुरुषों के वचन से

शुद्धिनिर्णय किया जाता है। काल की शुद्धाशुद्धि–ऋतु के समय में रजस्वला स्त्री अशुद्ध होती है और ऋतुकाल के पश्चात् शुद्ध होती है अथवा किसी निमित्त से स्त्री को अन्य जाति के पुरुष का संग हो जाय तो वह अशुद्ध समझी जाय परन्तु पुनः ऋतु होने से ही उसके पूर्व कर्म की शुद्धि होकर वह शुद्ध हो जाती है। तत्काल का बनाया हुआ भोजन शुद्ध और बासी अन्न अशुद्ध होता है। संस्कार की शुद्धाशुद्धि :–पुष्प चन्दन, तुलसी, आदि सूंघने से अशुद्ध हो जाते हैं और थोड़ा बहुत अभिमंत्रित जल छिड़क देने से शुद्ध समझे जाते हैं, इस प्रकार क्रम से द्रव्य, वचन, संस्कार आदि से शुद्धाशुद्धि मानी जाती और की जाती है।

धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् ।
कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानांयुतायुतैः ॥
अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति ।
भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥

धान्य, काष्ठ, अस्थि, सूत और तैल, घी, दूध, दही, चीनी, गुड़, मधु आदि रस द्रव्य तथा सोना, रूपा पारद आदि तैजस वस्तु और चर्म आदि पार्थिव पदार्थों की शुद्धि काल, वायु, अग्नि और जल से होती है। देश काल अवस्था के अनुसार कहीं इनसे मिला कर और कहीं इन हरेक से पृथक् पृथक् दोनों प्रकार से की जाती है, यदि किसी पात्र अथवा वस्त्रादि में कोई अशुद्ध पदार्थ लगा हो तो उसको छील देने से अथवा राख मृत्तिका से

मलके साफ़ कर लेने से जब उस पदार्थ की गन्ध न रहे और वह वस्तु अपने पूर्वरूप में आजाय तो उसको शुद्ध समझना चाहिये।

शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने।
अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः॥

जिस प्रकार ये द्रव्य परस्पर देशकाल और पात्र की स्थिति में शुद्धाशुद्ध होते हैं, ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी शक्ति अशक्ति बुद्धि और वैभव से देशकाल पात्रानुसार विभिन्न अवस्था में कर्म करने से और नहीं करने से पुण्यपाप के भागी होकर शुद्ध और अशुद्ध होते रहते हैं अतएव जैसे पदार्थों की शुद्धि की जाती है उसी प्रकार मनुष्यों को भी कर्म के द्वारा ही अपनी शुद्धि कर लेनी चाहिये।

स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः।
मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः॥
मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्।
धर्मः सम्पद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः॥
क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः।
गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते॥

ऐसे ही मनुष्यों का भी मन स्नान, दान, तप तथा अवस्था सामर्थ्य एवं संस्कार कर्म और मेरे स्मरण से चित्त शुद्ध होता है

इसलिये इस प्रकार शुद्ध होकर द्विजमात्र को विहित कर्मों को करते रहना चाहिये। मंत्र के विषय को अच्छी तरह गुरुमुख से जान लेने से मंत्र की शुद्धि होती है। और सब विहित कर्मों का मेरे अर्पण कर देने से कर्मों की शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार देश काल पदार्थ तथा कर्त्ता मंत्र और कर्म इन छः के शुद्ध होने से मनुष्यों को धर्म-पुण्य होता है और अशुद्ध होने से अधर्म पाप होता है।

देशकाल पात्रानुसार शास्त्र विधि से कहीं कहीं गुण दोष हो जाते हैं और दोष भी गुण हो जाते हैं। जैसे ब्राह्मणों के लिये स्वाभवतः जन्म से ही ब्रह्मचर्य तप तथा वेदाध्ययन और यज्ञ करना कराना गुण हैं परन्तु यही कर्म शूद्रों के लिये करना दोष है। वैसे ही शूद्रों का कर्त्तव्य चर्मादि का व्यवसाय करना गुण है परन्तु ये कर्म ब्राह्मणों के लिये त्याज्य होने के कारण दोष हैं। अतएव इससे किसी एक ही पदार्थ को गुण दोष युक्त मानने का नियम कट जाता है और यही निश्चित होता है कि गुण दोष का भेद कल्पित है वास्तविक नहीं है।

गुणदोष का भेद कल्पित है

समान कर्माचरणं पतितानां न पातकम्।
औत्पत्तिको गुणः सङ्गो न शयानः पतत्यधः॥
यतो यतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः॥

एक कर्म का आचरण करते हुये वह पतितों के लिये पाप नहीं होता क्योंकि जो पतित हैं वह पतित ही हैं, जैसे पृथिवी

पर सोया हुआ मनुष्य और नीचे नहीं गिर सकता तैसे ही पतितों का और पतन क्या हो सकता है किन्तु द्विजाति लोग पतितों से बहुत ऊंचे हैं, वे गिर सकते हैं इस लिये जो गुण है वह भी अवस्था-स्थान विशेष में दोषरूप हो जाता है, जैसे सङ्ग (आसक्ति ?) गृहस्थियों को स्वाभाविक होने के कारण गुण है परन्तु विरक्तों के लिये सङ्ग करना दोष है अतएव गुणदोष शुद्धाशुद्धि अवस्थाविशेष में बदलते रहते हैं।

इसलिये इसकी वास्तविकता में कुछ भी सत्य नहीं है, यह तो केवल देश काल और स्थान का कुछ समय के लिये चित्तशुद्धि का अवलंबनमात्र है तथापि बहुत से मनुष्य तो यावज्जीवन शुद्धाशुद्धि और उसके गुणदोष को ही पकड़े बैठे रहते हैं' ऐसे मनुष्यों का पार नहीं लग सकता। वास्तव में तो कर्म की सफलता उसकी निवृत्ति में ही है इसलिये जिस जिस प्रवृत्ति से मनुष्यों का मन उपराम होता जाता है उसी उसी ओर से वे बन्धन-मुक्त होते जाते हैं अतएव मनुष्यों के रोग शोक मोह और भय को हरने वाला यह निवृत्ति मार्गरूप धर्म ही कल्याणकारक है।

विषयासक्ति का परिणाम

विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः सङ्गस्ततो भवेत्।
सङ्गात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम्।
कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम्॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥
विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ।
वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥

हे उद्धव मेरे कथित निवृत्तिधर्म को न मानकर जब मनुष्य विषयों में गुण समझकर सुख की आशा से उनमें आसक्त होते हैं तो विषयों से उनका संग हो जाता है, संग से उनकी सूखभोग की कामनायें बढ़ जाती हैं और बढ़ी हुई कामनाओं के वशवर्त्ती होकर परस्पर महा कलह करते हैं और कलह से दुस्सह क्रोध होता है और महा क्रोध से सम्मोह होता है यह सम्मोह मनुष्यों की बुद्धिवृत्ति को आवरण कर चेतनाशक्ति का हरण कर लेता है, जब लोग काम और क्रोध के ही अधीन होकर वशीभूत हो जाते हैं तब हिताहित ज्ञानशून्य चेतनाशक्तिरहित मनुष्य मूर्च्छित और मृतक के समान किसी काम के नहीं रहते जिनकी कामनाओं से बुद्धि मारी गई है ऐसे विषयी लोग अपने स्वार्थ अथवा परमार्थ का कोई साधन नहीं कर सकते । अतएव विषय-लंपटता के कारण जिनका ज्ञान हरण हो गया है वे अपना तथा पराया या आत्मा और परमात्मा किसी को नहीं जानते । वे धौंकनी की तरह श्वास ही लेते हैं और वृक्ष की नाईं बड़ी आयु का जीवन वृथा ही व्यतीत करते हैं ।

मनुष्य जन्म की सफलता

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु ।

प्राणैरर्थैर्धिया वाचा तदेव मतिमान्भजेत्॥
यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥

हे उद्धव! जो देहधारी होकर दूसरे देहधारी जीवों का उपकार करते हैं उनका जन्म सफल है इसलिये बुद्धिमानों को चाहिये कि तन-मन-धन से एवं बुद्धि तथा वाक्य से और प्राण देकर भी जीवों के उपकार द्वारा मेरा भजन करते रहें। मेरा भजन करने वालों को चाहिये कि अष्टांग-योगसाधन के अङ्ग यम तथा नियम, यम के अङ्ग--अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्य आदि तथा नियम के अङ्ग तप शौच स्वाध्याय आदि नियमों का पालन करें और मेरे स्वरूप को जानने वाले शान्तचित्त ईश्वररूप अपने गुरु की श्रद्धा भक्तिसह उपासना सेवा करें।

यम नियम षट् संपत्ति, आदि के लक्षण

उद्धव उवाचः—

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्षन ।
कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृति प्रभो ॥
किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ।
कस्त्यागः किं धनंचेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥

उद्धव जी बोले कि हे विभो! आप की प्राप्ति के साधन कर्म भक्ति ज्ञान योग का श्रवण करके मेरा मन अतीव प्रसन्न हुआ।

अतएव कृपया पुनः कहिये कि ज्ञान योग में अष्टांग योग के साधन यम तथा नियम कितने प्रकार के और कौन से हैं ? हे प्रभो ! शम क्या है ? दम क्या है तितिक्षा क्या है ? और धैर्य्य किसे कहते हैं ? हे कृष्ण प्रभो ! दान, तप, और शौर्य क्या हैं ? सत्य एवं ऋत किसे कहते हैं ? त्याग क्या है ? धन और इष्ट क्या है ? तथा दक्षिणा किस को कहते हैं ?

पुंसः किंस्विदबलं श्रीमन्भगो लाभश्च केशव ।
का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥
कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः ।
कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बन्धुरुत किं गृहम् ॥
क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ।
एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥

हे श्रीमान् केशव ! पुरुष का बल क्या है ? और भग किसे कहते हैं ? परम लाभ क्या है ? पराविद्या तथा लज्जा और श्री क्या हैं ? और सुख तथा दुःख क्या है ? पण्डित कौन है ? मूर्ख किस को कहते हैं ? और सुमार्ग तथा कुमार्ग क्या है ? स्वर्ग क्या है ? नरक क्या है ? और बन्धु तथा घर क्या है ? धनवान् कौन है ? निर्धन कौन है ? तथा कृपण किसको कहते हैं ? और समर्थ एवं स्वाधीन ईश्वर कौन है ? हे सत्पुरुषों के स्वामिन् ! कृपा कर के मेरे इन प्रश्नों का वर्णन कीजिये और इन के विपरीत अशम आदि भी कहिये ।

श्रीभगवानुवाच:—

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥
एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि हे उद्धव सुनो! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंगता, लज्जा, असञ्चय, आस्तिकता और ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा, और अभय तथा शौच और जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथि का सत्कार, मेरा पूजन, तीर्थ भ्रमण, परोपकार, सन्तोष और गुरु सेवा ये यम और नियम बारह बारह कहे गये हैं। इनका पालन करने से मनुष्यों की इच्छानुसार सब कामनाओं की सिद्धि होती है।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थ जयो धृतिः ॥
दण्डन्यास परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥
ऋतं च सुनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः सन्यास उच्यते ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः।
दक्षिणा ज्ञान सन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥

निष्ठापूर्वक बुद्धि का मुझमें लगाना ही शम है, इन्द्रिय संयम को दम कहते हैं। दुःख सहन करने का नाम तितिक्षा है, और जिह्वा तथा उपस्थेन्द्रिय को जय करना ही धैर्य्य है, क्षमा कर देना ही परमदान है, कामनाओं का त्याग ही परम तप कहलाता है, स्वभावतः अस्थिर मन को जीत लेना ही शूरवीरता है और, सर्वत्र समदर्शन करना ही परम सत्य है। सुमधुरवाणी को ही विद्वज्जन ऋत कहते हैं, कर्म में आसक्ति न रखना ही शौच है और कर्मों का त्याग ही संन्यास है। धर्म ही मनुष्यों का इष्ट धन है, सर्वऐश्वर्यसम्पन्न यज्ञ पुरुष मैं ही हूँ, ज्ञान उपदेश ही दक्षिणा है और प्राणायाम ही मनुष्यों का परम बल है।

भगो मे ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः।
विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥
श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः।
दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥
मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥
नरकस्तम उन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे।
गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥

मेरा षड् विध ऐश्वर्य ही भग है, मेरी उत्तम भक्ति का प्राप्त होना ही लाभ है, आत्मा और परमात्मा में भेद बुद्धि का न रहना ही विद्या है, और निन्दित एवं निषिद्ध दुष्कर्मों से दूर रहना ही लज्जा है, निरपेक्षता आदि गुण ही श्री हैं, सुख तथा दुःख से परे हो जाने का ही नाम परम सुख है, विषय सुख की अपेक्षा करना ही दुःख है और जो बन्ध तथा मोक्ष को जानता है वही पण्डित है, देह आदि में अहं बुद्धि रखने वाला ही मूर्ख है, शास्त्र ही मेरी प्राप्ति का मार्ग है, चित्त विक्षेप ही कुमार्ग है और सत्त्व गुण का उदय होना ही स्वर्ग है तमोगुण का बढ़ना ही नरक है तथा गुरु रूप बन्धु मैं ही हूँ, मनुष्य शरीर ही घर है और गुणवान् ही सच्चा धनवान् कहलाता है।

दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः।
गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः॥
धर्मोमद्भक्ति कृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्य दर्शनम्।
गुणेष्वसङ्गो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः॥
एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः।
किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः॥

जो महा असन्तुष्ट है वही दरिद्री निर्धन है, जो अजितेन्द्रिय है वही दीन कृपण है, और जो विषयों में आसक्त है वही समर्थ स्वाधीन ईश्वर है और जो विषयी है असमर्थ है वही पराधीन

है, अतएव जिससे मेरी भक्ति होती हो वही धर्म ही तथा सर्वत्र एक आत्मा का दर्शन ही ज्ञान है, गुणरूप विषयों में अनासक्त रहना ही वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियां ही ऐश्वर्य हैं. हे प्रिय उद्धव तुम्हारे सब प्रश्नों को मैंने अच्छी तरह वर्णन कर दिया है, गुण दोषों के विषय में इस से और अधिक लक्षण क्या वर्णन किया जाय, इतने में ही समझलो कि गुणदोष देखना ही दोष है और इन दोनों का न देखना ही गुण है।



चतुर्थ प्रकाश

तत्त्वविचार

उद्धव उवाच—

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ।
नवैकादश पञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥
केचित् षड् विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥
केचित्सप्तदशप्राहुः षोडशैके त्रयोदश ।
एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥
गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ।

उद्धव जी बोले कि हे विश्वेश्वर प्रभो! ऋषियों ने कितने तत्त्व माने हैं? आपने तो मुझे नौ, ग्यारह, पांच और तीन मिला कर अट्ठाईस सुनाये हैं परन्तु कोई छब्बीस और कोई पच्चीस कहते हैं, कोई सात कोई छः और कोई तो चार ही कहते हैं कोई ग्यारह कोई सत्रह कोई सोलह और कोई तेरह भी तत्त्व बतलाते हैं हे प्रभो! किस अभिप्राय से ऋषियों ने तत्त्वों की संख्या का भिन्न भिन्न वर्णन किया है सो कृपा करके कहिये ।

श्रीभगवानुवाच—

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥
नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ।
एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥
यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ।
प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥

श्री भगवान् बोले कि हे उद्धव! विभिन्न तत्त्वों की संख्या के विषय में ब्राह्मण लोग जो कुछ कहते हैं वह सभी ठीक है मेरी माया शक्ति का आश्रय करके कहने वालों के लिये कहना कोई कठिन नहीं है, क्योंकि 'माया शक्ति से मोहित होकर लोग वादविवाद करते हैं वे कहते हैं कि तुम जैसा कहते हो वह ठीक नहीं है परन्तु मैं जो कहता हूं वह ठीक है इस प्रकार परस्पर वादविवाद करने वालों के विवाद का कारण मेरी अद्भुत माया शक्ति है जो अति दुस्तर है, और उस माया शक्ति से ही यह विकल्प रूप प्रपञ्च बना है इस लिये जब तक यह जगत् रहेगा तब तक वादविवाद होते ही रहेंगे जगत् में वादविवाद करने वालों का मूल कारण तो मनुष्यों का मन ही है परन्तु जब शम दम आदि साधनों से समाधि द्वारा मन अपने स्वरूप में स्थित हो जाता हो तो फिर वादविवाद के विकल्परूप जगत् के सब तत्त्व शान्त हो जाते हैं।

परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवित्तितम् ॥
एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ।
पूर्वस्मिन् वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥
पौर्वापर्यं मतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ।
यथाविवक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्ति सम्भवात् ॥

हे उद्धव! ये भौतिक तत्त्व सब परस्पर मिले हुवे हैं अतएव कहने वालों के कथनानुसार उनकी आगे पीछे की संख्यायें सभी ठीक हैं ये तत्त्व समूह एक दूसरे के अन्तर्गत एक में और तत्त्व कार्य्यरूप से तो दूसरों में कारण से सम्मिलित दिखलाई देते हैं इसलिये जिनको तत्त्व की संख्या पूर्वापर अल्पाधिक कार्य कारण भेद से मान्य है उन लोगों का कहना युक्तियुक्त होने के कारण ग्रहण करने योग्य है परन्तु इन तत्त्वों की न्यूनाधिक संख्या मान लेने अथवा जान लेने से ही वास्तविक ज्ञान नहीं होता।

पुरुष

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ।
स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥
पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ।
तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥

क्योंकि अनादि काल से अविद्यायुक्त पुरुष को विना योग साधन किये स्वयं अपने आप ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये उसको ज्ञान का उपदेश देने के लिये किसी और तत्त्वज्ञानी पुरुष की आवश्यकता है यह तो ठीक है, परन्तु आत्मा और परमात्मा में अणुमात्र भी भेद नहीं है ऐसी अवस्था में अन्य पुरुष की कल्पना कर लेना भी सर्वथा अनुचित है और ज्ञान तो प्रकृति के सत्त्वांश का ही गुण है अतएव ज्ञान के विषय में बहुत कुछ कहने सुनने की बातें हैं इन तत्त्वों की संख्या जान लेने से जगत् के कार्य्यकारण के भेदाभेद का ज्ञान होता है परन्तु आत्मा और परमात्मा का ज्ञान तो योगसाधना से ही स्वयं होता है।

प्रकृति

प्रकृतिगुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः
सत्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥
सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥
सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ।
सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥
व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ।
लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥

तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है एवं सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण प्रकृति के ही हैं जो जगत् सृष्टि, स्थिति और नाश के हेतु हैं ये गुण आत्मा के नहीं हैं सत्त्वगुण ज्ञान है रजगुण कर्म है और तमोगुण ही अज्ञान कहलाता है इन तीनों गुणों की विषम अवस्था ही काल है और स्वभाव ही महत्तत्त्व है सृष्टि के आरम्भ में कार्य कारणरूपिणी प्रकृति ही अपने सत्त्वादि गुणों के द्वारा इन तत्त्वों की अवस्था को धारण करती है, ईक्षण करने वाला अव्यक्त पुरुष तो उनका केवल साक्षीमात्र है पुरुष के ईक्षण से बल प्राप्त करके महत्तत्त्व आदि कारणतत्त्व प्रकृति के आश्रय से हो मिलकर इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं।

तत्त्वों की संख्या

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः।
ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव॥
श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञान सक्तयः।
वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिकर्माण्यङ्गोभयं मनः॥
शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः।
गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः॥

मैंने पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये नौ तत्त्व कहे हैं, कर्ण, चर्म, नेत्र,, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और वाणी, हस्त, पाद, पायु

और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं ये दोनों मन के ही अंग हैं और मन के ही आधीन हैं श्रवण करना कान का विषय है स्पर्श ग्रहण त्वचा का विषय है रूप देखना चक्षु का विषय है रसस्वाद रसना का विषय है और गन्ध ग्रहण नासिका का विषय है इस तरह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं ग्रहण करना न करना इनका स्वभाव है बोलना वाणी का विषय है लेना देना हाथ का कार्य है चलना फिरना पग का काम है मल त्याग गुदा का विषय है और रति कर्म उपस्थ का विषय है इस प्रकार कथन, आदानप्रदान, गमनागमन, मल त्याग तथा मैथुन ये पांच कर्मेन्द्रियों के विषय हैं ये व्यापार करना न करना इन का स्वभाव है।

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः।
ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः॥
षडित्यत्रापि भूतानि पञ्चषष्ठ परः पुमान्।
तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत्॥
चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः।
जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु॥

सात ही तत्त्व मानने वालों के विचार से आकाश आदि पञ्च महाभूत और इनका साक्षी एक आत्मा और इन दोनों का आधार परमात्मा मिलकर सात तत्त्व होते हैं देह इन्द्रिय आदि तो पञ्चभूतों के अन्तरगत आजाते हैं, और छः ही तत्त्व

बतलाने वालों के मत में पांच भूत और छठा परमात्मा है वह परमात्मा ही अपने से उत्पन्न हुवे इन भूतों की रचना करके उनमें जीवरूप से प्रवेश करके स्थित है जो लोग मात्र चार ही कारण तत्त्व मानते हैं उनके मतानुसार तेज, जल, अन्न और आत्मा ये चार ही तत्त्व हैं वे समझते हैं कि निश्चय इन्हीं से और सभी तत्त्व उत्पन्न होते हैं।

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च।
पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥
तद्वत्षोऽशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते।
भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥
एकादशत्वं आत्माऽसौ महाभूतेन्द्रियाणि च।
अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथा ॥
इति नानाप्रसंख्यामं तत्त्वानामृषिभिः कृतम्।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥

और सत्रह तत्त्व मानने वालों के कथन से पञ्चभूत पञ्चतन्मात्रा तथा पञ्च ज्ञानेन्द्रियां एवं आत्मा और मन ये सब सत्रह कहलाते हैं इसी तरह सोलह तत्त्व मानने वालों ने आत्मा को ही मन मान लिया है और तेरह तत्त्व को गणना में पञ्चभूत पञ्चज्ञानेन्द्रिय तथा मन जीवात्मा और परमात्मा ये तेरह मानते हैं ग्यारह तत्त्व की संख्या को मानने वाले आत्मा पञ्चभूत और

पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को ही मानते हैं और नौ तत्त्व की संख्या में प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार एवं पांच ज्ञानेन्द्रियां और पुरुष ये नौ माने जाते हैं इस प्रकार अपनी अपनी समझ और ज्ञान के अनुसार ऋषियों ने नाना प्रकार से तत्त्वों की व्याख्या और संख्या की गणना की है वह सब न्याय से युक्ति संगत होने के कारण वे सभी ग्राह्य हैं क्योंकि विद्वान् पुरुषों की किसमें शोभा नहीं है अर्थात् उन्हें सभी कुछ शोभा देता है।

श्रीभगवान् का अभिमत

नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै ।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥
एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ।
स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥
आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् ।
पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥

हे उद्धव! मेरा निजी अभिप्राय सुनो! जिस के द्वारा प्राणियों में पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा ये नौ एवं मन सहित ग्यारह इन्द्रियां तथा पञ्चभूत और तीन गुण ये अट्ठाईस तत्त्व जाने जांय और इन सब में एक ही व्यापक आत्मा

दिखलाई दे वही मेरा निश्चित ज्ञान है और जब सत्त्व, रज, तम ये त्रिगुणात्मक भावों की उत्पत्ति स्थिति एवं लय आदि दिखाई न दें और केवल एक आत्मा तत्त्व का ही सर्वदा काल प्रत्यक्ष अनुभव होता रहे वही विज्ञान कहलाता है जिनकी सत्ता से बने हुये भौतिक पदार्थों की आदि अन्त और मध्य में स्थिति होती है तथा प्रलय काल में उन सब का लय होजाने पर भी जो शेष रहता है वही सत् ब्रह्म है अतएव हे उद्धव! इन भौतिक तत्त्वों के विषय में शब्द, वेद, प्रत्यक्ष, अनुमान और ऐतिह्य परम्परागत इन चारों प्रमाणों से विज्ञानी पुरुषों को इस प्रपञ्च की कोई सत्ता सिद्ध नहीं होती इस लिये ज्ञानी लोग इस विकल्प-रूप संसार से विरक्त हो जाते हैं।

प्रकृति पुरुष का भेद

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ अद्यप्यात्मविलक्षणौ ।
अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥
प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ।
एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ।
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥
त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ।
त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥

उद्धव जी बोले हे कृष्ण प्रभो! यद्यपि स्वरूप से प्रकृति और

पुरुष दोनों परस्पर भिन्न हैं तथापि एक दूसरे के आश्रित होने से उनका भेद नहीं दीखता प्रकृति में पुरुष और पुरुष में प्रकृति एक से प्रतीत होते हैं अतएव हे सर्वज्ञ! मेरे हृदय यह बड़ा भारी संदेह है इसको कृपा करके अपने अमृतमय वचनों से दूर कीजिए, हे देव! जीवों को आप की कृपा से ज्ञान होता है सब जीव आपकी माया शक्ति से मोह में पड़ते हैं अपनी मायाशक्ति की विचित्रगति को आप ही जानते हैं आपके विना उसे कोई नहीं जान सकता।

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ।
एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥

ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा
विकल्पबुद्धिश्च गुणैर्विधत्ते ।
वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेक
मथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धव! प्रकृति और पुरुष का भेद तो स्पष्ट ही है किन्तु यह विकारवान् प्रपञ्च जो तुम देखते हो वह तो केवल प्रकृति के गुणों के क्षोभ का ही परिणाम मेरी त्रिगुणात्मका माया अपने गुणों से अनेक प्रकार के विकल्प-रूप भेद उत्पन्न करती है वह विकारवान् भेद अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूप से तीन प्रकार का है।

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे
परस्परं सिध्यति यः स्वतःखे ।
आत्मा यदेषामपरो य आद्यः
स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः ।
एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षु-
र्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ।।

जैसे चक्षु इन्द्रिय अध्यात्म रुप अधिभूत और सूर्य अधिदैव है ये तीनों परस्पर एक दूसरे के आश्रय से सिद्ध होते हैं तथापि आकाश स्थित सूर्य इस रूप और चक्षु से पृथक स्वतः सिद्ध होते हैं उसके हो प्रकाश से चक्षु और रूप प्रकाशित होते हैं पृथक रहा हुवा सूर्य हो रूप और चक्षु के प्रकाश का कारण है इस प्रकार यह भौतिक जगत का आदिकारण आत्मा है जो इन से पृथक है और अपने प्रकाश से स्वयं सिद्ध है एवं इन सब के प्रकाश का भी प्रकाशक है और पृथक है इस तरह श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना घ्राण और चित्तादि के भी अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव तीन भेद हैं श्रोत्र इन्द्रियं अध्यात्म, उसका विषय शब्द अधिभूत, और इसके देवता दिशा अधिदैव कहलाते हैं, त्वचा इन्द्रिय अध्यात्म, उसका विषय स्पर्श अधिभूत, उसके देवता वायु अधिदैव हैं, चक्षु अध्यात्म उसका विपय रूप अधिभूत, और उसके देवता सूर्य अधिदैव हैं, रसना अध्यात्म, रस अधिभूत, और वरुण देवता अधिदैव हैं, नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत,

और देवता अश्विनीकुमार अधिदैव हैं, ऐसे ही अन्तःकरण में मन अध्यात्म, संकल्प उसका विषय मन्तव्य अधिभूत, और उसके देवता चन्द्रमा अधिदैव हैं, बुद्धि अध्यात्म है बोधव्य अधिभूत है और देवता ब्रह्मा अधिदैव हैं, चित्त अध्यात्म चिन्तनीय विषय अधिभूत और देवता वासुदेव अधिदैव हैं अहंकार अध्यात्म विषय अहं अधिभूत और देवता रुद्र अधिदैव हैं।

भेदाभेद का मूलकारण

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः
प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ।
अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतु-
र्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥
आत्मा परिज्ञानमयो विवादो
ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठः ।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां
मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥

जिस गुण क्षोभ के कारण प्रकृति के मूल से महत्तत्त्वादि उत्पन्न होते हैं उनमें यह अहंकार ही मोह और विकल्प रूप भेद भाव का मुख्य हेतु है यह अहंकार सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का है इस कारण लोग ईश्वर है

कि नहीं है ऐसी द्विधा में रहते हैं और सत्य मिथ्या आदि विवादरूप विकल्प से भेद बुद्धि का भेद उत्पन्न करने वाले लोग अहंकार के ही कारण आत्म तत्त्व को नहीं जान सकते, उन लोगों को अपनी आत्मा के अज्ञान के कारण ही भेद प्रतीत होता है जो व्यर्थ ही है जब तक मनुष्य मुझसे विमुख रहते हैं तब तक इस अहंकाररूप भेद की निवृति नहीं होती।

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ।
जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्तेकर्मफलान्यसौ ॥
यावत्स्यादगुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ।
नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥
यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ।
य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥

गुणों से कर्म की उत्पत्ति होती है और गुणों की साम्यावस्था में वैषम्य हो कर तीनों गुणों की उत्पत्ति होती है और जीवात्मा सत्त्वादिगुणों से संयुक्त होकर कर्म के फलों को भोगता है, जब तक गुणों की विषमता रहती है तब तक नानात्व भी रहता है और जब तक भेदभाव रहता है तब तक जीवात्मा परतन्त्र है और जब तक जीवात्मा परतन्त्र है तभी उसको ईश्वर का भय है। इस लिये जो लोक स्वर्गादि की कामना से वैदिक कर्म–उपासना करते हैं वे शोकातुर होकर मोहग्रस्त रहते हैं और जन्म मरण के चक्र में पड़े रहते हैं।

सांख्य योग—सृष्टि क्रम

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् ।
यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥
आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ।
यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगे युगे ॥
तन्माया फल रूपेण केवलं निर्वि कल्पितम् ।
वाङ्‌ मनोऽगोचरं सत्यं द्विधासमभवद्‌वृहत् ॥
तयोरेकतरोह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ।
ज्ञानं त्वन्यतमोभावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥

श्री भगवान् बोले कि–हे उद्धव ! अब मैं तुम से पूर्व ऋषियों द्वारा निर्णीत सांख्य योग का पूर्णरूप से वर्णन करता हूं, कि जिसके ज्ञान से मनुष्य विकल्प भ्रम को शीघ्र त्याग देता है, सतयुग के प्रारंभ में प्रायः सभी मनुष्य विवेक ज्ञान निपुण थे, उस समय वे लोग द्रष्टा और दृश्य के भेद से रहित निर्विकल्प सत्य स्वरूप ब्रह्म को जानते थे, वह ब्रह्म वाणी और मन से परे विकल्प रहित केवल सत्यस्वरूप है, वह माया तथा ज्ञानरूप से दो प्रकार का हो गया, उनमें पहिला तत्त्व प्रकृति है, वह दो प्रकार की है और दूसरा भावज्ञान है, जिसको पुरुष कहते हैं।

तमो रजः सात्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ।
मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ।।
ततो विकुर्वतो जातोऽहङ्कारो यो विमोहनः ।।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ।
तन्मात्रेन्द्रिय मनसां कारणं चिदचिन्मयः ।।
अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादीन्द्रियाणि च ।
तैजसाद्दैवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ।।

पश्चात् पुरुष के निमित्त मेरे द्वारा प्रक्षुभित प्रकृति से सत्त्व, रज, और तम ये तीन गुण प्रकट हुए, और इन तीन गुणों से महान् सूत्र अर्थात् महत्तत्त्व का उद्भव हुआ और उस महत्तत्त्व के विकार से जीवों को मोहित करने वाला अहंकार उत्पन्न हुआ उस अहंकार के वैकारिक तैजस और तामस ऐसे तीन भेद हैं अर्थात् वह अहंकार पंच तन्मात्रा इन्द्रिय और मन का कारण तथा जड़ चेतनमय है, तामस अहंकार रूप तन्मात्राओं से आकाशादि पञ्चमहाभूत और राजसिक अहंकार से दश इन्द्रियां और सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियों के अधिष्ठातृरूप एकादश देवता उत्पन्न होते हैं।

मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ।
अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ।।
तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ।
मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ।।

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ।
लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधाः ।।

हे उद्धव! मेरी प्रेरणा से यह सब कारण परस्पर एक दूसरे से मिल गये, और उनके मिलने से मेरा सुन्दर गृह रूप यह ब्रह्माण्ड बन गया, और अनन्त जल राशी के ऊपर संस्थित उस ब्रह्माण्ड में मैं स्वयं विराजमान हुआ, मेरी नाभी में से विश्व-नामक कमल प्रकट हुआ, उस कमल में से आत्मभू ब्रह्मा उत्पन्न हुए, एवं मेरे अनुग्रह से उन्होंने सब लोकों की रचना की, जिसका विवरण प्रथम प्रकाश में आगया है, छोटा, बड़ा, पतला, मोटा, किसी भी प्रकार का कोई भी पदार्थ जो उत्पन्न होता है वह प्रकृति पुरुष के संयोग से ही बनता है ।

यस्तु यस्यादिरन्तश्च सवै मध्यं च तस्य सन् ।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजस पार्थिवाः ।
यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरूतेऽपरम्
आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ।।
प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ।।

जिस वस्तु के आदि और अन्त में जो पदार्थ विद्यमान रहता है, मध्य में भी उसी की सत्ता रहती है, अतएव वही सत्य है, उसके विकार तो केवल व्यवहार के लिये ही होते हैं, जैसे पार्थिव-घटादि में पृथ्वी सत्य है । जब किसी पूर्व उपादान कारण

से दूसरा विकार भाव उत्पन्न होता है, तो उनमें पिछला विकार आदि अंत वाला होने के कारण पूर्व उपादान ही सत्य माना जाता है। इस जगत का उपादान कारण प्रकृति और सबका आधार परम पुरुष परमात्मा है, एवं इस दृश्य प्रपंच का अभि-व्यक्त करने वाला काल है, ये तीनों शुद्ध ब्रह्म रूप मैं ही हूं, इस लिये सर्व जगत् का मूल कारण मैं ही हूं।

सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः।
महान्गुण विसर्गाऽर्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥
विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोक कल्पविकल्पकः
पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥

जब तक ईश्वर की दृष्टि रहती है, तब तक जीवों के भोगार्थ पूर्वापर क्रम से स्थिति के अंत तक यह जगत प्रवाह रूप से चलता रहता है। समयानुसार उत्पन्न और नष्ट होने वाला यह विराट् रूप संसार प्रलय आने पर चौदह भुवनों सहित अपने कारण पांचों तत्त्वों में लीन हो जाता है।

लय क्रम

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते।
धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥
अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे।
लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ।
अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥

शरीर अन्न में लय हो जाता है, अन्नं बीज में, बीज पृथिवी में, और पृथिवी गंधमें लय होती है। गन्ध जलमें लय हो जाता है और जल अपने गुण रस में, रस अग्नि में, और अग्नि रूप में लय होती है। रूप वायु में, और वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में और आकाश शब्द तन्मात्रा में लय हो जाता है, और इन्द्रियां अपने कारण राजस अहंकार में लीन होती हैं।

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ।
शब्दो भूतादि मप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥
स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥
कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मप्यजे ।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पा पाय लक्षणैः ॥

और राजस अहंकार अपने ईश्वर मनरूपी सात्त्विक अहंकार में लय होता है, और शब्दादि तन्मात्रायें पञ्चभूतों के कारण तामस अहंकार में लीन होती हैं, और इन सबका प्रभु अहंकार महत्तत्त्व में लय होता है। और वह महत्तत्त्व अपने सत्त्वादि गुणों में लय होता है, और वे तीनों गुण अव्यक्त प्रकृति में लीन होते हैं, और प्रकृति अविनाशी काल में

लीन होती है। और वह काल माया मय जीव में लय होता है, और जीव मुक्त अजन्मा आत्मा में लय होता है, और वह आत्मा केवल अपने विकल्प रहित लक्षण वाले आत्म स्वरूप में ही स्थित रहता है, वह किसी में भी लीन नहीं होता।

एकमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः।
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः॥
एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशय ग्रंथिभेदनः।
प्रतिलोमानु—लोमाभ्यां परावरदृशा मया॥

हे उद्धव! आरम्भ से लेकर अंत तक सब जगत में एक तत्त्व ही व्यापक है, इस प्रकार देखने वाले पुरुष के हृदय में वैकल्पिक भ्रम कैसे रह सकता है? अर्थात् नहीं रहता, जैसे सूर्योदय होने पर आकाश में अंधकार नहीं रह सकता। हे परम प्रिय उद्धव? सबका स्वामी सर्वज्ञ–परावरदर्शी मैंने यह सांख्य योग के ज्ञान को विधी जो कारण से कार्य प्रसव-क्रम और कार्य से कारण में लय होने के क्रम सहित तुमको कही है, वह सब संशयों को ग्रन्थि का भेदन करने वाली है।

मन की गति विधि गुणों के आधीन है

तुम्हारा मन जब जब जिस गुण के आधीन होता है, तब तुम में सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक भाव प्रबलता को प्राप्त होते हैं, और उन गुणों के आधीन होकर तुम जो जो कर्म करते हो उनका फल भी मन की गुण युक्त भावना के अनुसार होता है,

पंच भूत को धारण करने वाला मन अध्यात्म है, सङ्कल्प अधिभूत कहलाता है और चन्द्रमा अधिदैव है। तैसे ही समग्र ब्रह्माण्ड के मूल कारण तीन गुण अध्यात्म हैं, उनका विषय प्रकृति अधिभूत है और परमात्मा अधिदैव है। ये तीनों परस्पर एक दूसरे के आश्रय से सिद्ध होते हुए भी परमात्मा प्रकृति से पृथक् हैं। परमात्मा के आधीन प्रकृति, प्रकृति के आधीन गुण है, और गुणों के आधीन मन है, और मन के आधीन चराचर जगत के विषय हैं। तथापि मन अपने प्रभुत्व को जानता नहीं है, इसलिये गुणों का आश्रय करके उनके आधीन होकर सुख दुःख का भोक्ता होता है, वास्तव में मन ही गुण और विषयों का स्वामी है, गुण और विषय मन के स्वामी नहीं हैं।

गुणों की वृत्तियां

शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादि स्वनिर्वृतिः॥
काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम्।
मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः॥
क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः क्लमः कलिः।
शोक मोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशाभीरनुद्यमः॥

जब तुम्हारा मन सत्त्व गुण के आश्रित होता है, तब तुम में शम, दम, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य, तप, सत्य, दया, स्मृति,

संतोष, मेधा, बुद्धि, धृति, क्षमा, श्रद्धा, लज्जा, ज्ञान, आस्तिकता, निस्पृहा, विनय, और दंभ रहित धर्म भाव उत्पन्न होते हैं, तो तुम्हें परम आनन्द की प्राप्ति होती है, जब तुम्हारा मन रजोगुण युक्त होता है, तब तुम्हारे में कामना, कर्म, अभिमान, तृष्णा, सुख की इच्छा, दंभ, कामुकता, असत्य भाषण, अधीरता, अधिक आनंद, भ्रमण, भेद बुद्धि, विषय तृष्णा, मदजनित उत्साह, आत्मश्लाघा में प्रेम, हास्य, पुरुषार्थ, बल और उद्यम की प्रवृत्ति होती है, जब तुम्हारा मन तमो गुण युक्त होता है, तब तुम्हारे में नास्तिकता, विवाद, दुष्टमति, भय, निन्दित कर्म में प्रवृत्ति, अज्ञान, अति क्रोध, और मूर्खतादि दोष प्रकट होते हैं साथ २ लोभ, मिथ्या व्यवहार, हिंसा, याचना, पाखंड, कलह, शोक, मोह, क्लेश, दीनता, दरिद्रता, आशा, एवं प्रमाद से अनुद्यमी होकर तुम अकर्मण्य और आलसी होते हो, इसलिये इन तीनों गुणों की वृत्तियों से होने वाले कर्मों के तीन प्रकार के फल और परस्पर मिले हुए गुणों का परिचय करने से तुमको मेरी प्राप्ति के साधन में बड़ी सहायता मिलेगी, साथ ही साथ तुम अपने मन प्राण की गति विधि सहज ही बदल सकोगे क्योंकि इस ज्ञान के बिना तुम अपने मन पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते, इसलिये उनका जानना अतीव आवश्यक है।

सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ।
व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥
धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः ।

गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥
प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे ।
स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समिति र्हिसा ॥

मैं हूं, मेरा है, इस प्रकार की बुद्धि में तीनों गुणों का समावेश रहता है, ऐसे ही शब्दादि विषय, इन्द्रिय, प्राण सबके मेल से जो व्यवहार होता है वह भी तीनों गुणों के मेल से होता है, जब तुम धर्म, अर्थ काम में श्रद्धा से प्रवृत्त होते हो, तब इन तीनों गुणों का समावेश समझो, उससे तुम्हें श्रद्धा, रति और धनादि की प्राप्ति होती है, जब तुम स्वधर्म में रह कर नित्य, नैमित्तिक कर्म से लगे रहो, सकाम कर्म में और गृहस्थ में तुम्हें आसक्ति आवे तो भी समझना कि तीनों गुणों के मेल से तुम्हारी प्रवृत्ति हो रही है।

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छ मादिभिः ।
कामादिभी रजो युक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥
यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ।
तं सत्त्व प्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥
यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ।
तं रजः प्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम्

जब तुम देखो कि गुणों की प्रधानता से तुम में प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रकाश पाती है, तो गुणों के उक्त कथित लक्षणों से तुम्हें

समझना चाहिये कि शम दमादि से सत्त्व गुण वाले सात्त्विक पुरुष का, कामादि से रजोगुणी का, और क्रोधादि से तमोगुणी का, परिचय होता है।

चाहे स्त्री हो या पुरुष जब वे अनपेक्ष निष्कामता से बिना हेतु मेरा भजन करते हैं, तो उनको सत्त्व गुणी समझना और जब वे किसी कामना से भजते हैं, तो रजोगुणी जानना, एवं जो लोग बलि आदि जीव हिंसा कर्म से मेरा भजन करते हैं, उनको तमो गुणी समझना चाहिये।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे।
चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥

सत्त्व, रज और तम ये गुण जीव के हैं मेरे नहीं, ये तुम्हारे चित्त में ही उत्पन्न होते हैं, इनमें आसक्त होने से तुम बन्धन में पड़ जाते हो।

काल—समय

यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम्।
तदा सुखेन युज्येत धर्म ज्ञानादिभिः पुमान् ॥
यदा जयेत्तमः सत्वं रजः सङ्गं भिदा बलम्।
तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसाश्रिया ॥
यदा जयेद्रजः सत्वं तमो मूढं लयं जडम्।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥

जिस समय प्रकाशमान स्वच्छ शान्त एवं कल्याण कर सत्त्व गुण, रज और तम को दवा कर बढ़ता है, उस समय तुम सुख धर्म और ज्ञानादि से सम्पन्न हो जाते हो। जब आसक्ति, भेद बुद्धि और प्रवृत्ति का बढ़ाने वाला रजो गुण, तम और सत्त्व को पराभव करके बढ़ता है तव तुम दुःख, कर्म, यश और सम्पत्ति से युक्त होते हो। जब अज्ञान आवरण वाला जड़रूप तमोगुण, सत्त्व और रज को जीत कर बढ़ता है, उस समय तुम शोक, मोह, निद्रा, हिंसा, और आशा से युक्त हो जाते हो।

यदाचित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृत्तिः।
देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥
विकुर्वन्क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम्।
गात्रास्वास्थ्यं मनोभ्रांतंरजएतैर्निशामय ॥
सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम्।
मनो नष्टं तमोग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥

जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रिय शान्त हों, और प्रकाश युक्त हों देह निर्भय हो, एवं मन अनासक्त हो तब समझना कि मेरी प्राप्ति का स्थान सत्त्व गुण का आविर्भाव हुआ है। जब तुम क्रिया कर्म में तत्पर हो जाते हो, बुद्धि तुम्हारी डिगमिगाने लगे, चित्त चंचल अशान्त हो जाय, शरीर अस्वस्थ हो जाय और मन भ्रम में पड़ जाय तो समझ लेना कि रजोगुण बढ़ गया है। जब तुम धारणा ध्यान करने में असमर्थ हो जाओ, अन्तर आत्मा में तुम्हारा

मन लगना ही न चाहे, आलस्य और तन्द्रा से तुम्हारा मन मूढ़ता को प्राप्त होकर शून्यवत् अकर्मण्य हो जाय, अज्ञान तुम्हें आ घेरे, ग्लानि बढ़ने लगे, तुम अपने को भूल जावो, तब समझना तुम्हारा सर्वनाश करने वाला तमोगुण बढ़ रहा है।

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥

सत्त्व गुण के बढ़ने से देवता-दिव्य शक्तियों का बल बढ़ता है, रजो गुण के बढ़ने से आसुरी वृत्तियों का बल बढ़ता है और तमोगुण के बढ़ने से राक्षसी वृत्तियों का बल बढ़ता है। सत्त्व के आश्रय से तुम दिव्य कर्म-धारणा, ध्यान, समाधि का परम सुख पाओगे। और रजोगुण के आश्रय से अकर्म, ईर्षा, द्वेष, मान, बड़ाई, दंभ, अहंकार करके मरोगे, मारोगे और तमोगुण के आश्रय से अनाचार, अत्याचार व्यभिचारादि विकर्म करके नरक को जाओगे।

क्रिया कर्म

उपर्युपरि गच्छन्ति सत्वेन ब्राह्मणा जनाः।
तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसाऽन्तर चारिणः ॥

सत्व गुण के आश्रय से धारणा, ध्यान, योग, जप, तप, यज्ञ, दान, भक्ति, श्रद्धादि सात्त्विक कर्म करने वाले ब्राह्मण लोग सत्त्व गुण के द्वारा उत्तरोत्तर ऊपर ही ऊपर स्वर्लोक, मह-

लोक, जनलोक, तपलोक, और ब्रह्मलोक को जाते हैं, तथा रजोगुण के आश्रय से राजसिक कर्म करके रजोगुण द्वारा यहां बीच में ही रह जाते हैं, और तमोगुण के आश्रय से निषिद्ध एवं निन्दित तामसिक कर्म करने वाले जघन्य तमोगुण द्वारा नीचे ही नीचे नरक, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, आदि, योनियों में जाते हैं।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥

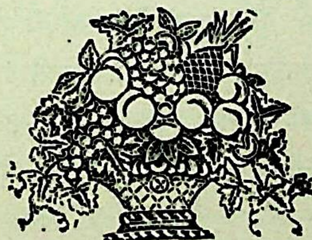
सत्त्व से जाग्रत अवस्था, रजोगुण से स्वप्न तथा तमोगुण से सुषुप्ति अवस्था होती हैं' तुरीय अथवा समाधि अवस्था तीनों में व्याप्त रहती है। सत्त्व गुण की वृद्धि के समय मरने वाले ऊपर स्वर्ग को जाते हैं, रजोगुण की वृद्धि में मरे हुए मध्य में अर्थात् इस लोक में आते हैं—मनुष्य होते हैं, और तमोगुण की वृद्धि में मरे हुए नर्क या पशु योनि में जाते हैं, और गुणातीत होकर गमन करने वाले मुक्त निर्गुण ब्रह्म को पा जाते हैं।

फल

निष्काम या ईश्वरार्पण बुद्धि से किया हुआ कर्म सात्त्विक होता है, फल प्राप्ति की इच्छा से किया हुआ कर्म राजसिक, और जीव हिंसादि युक्त कर्म तामसिक होते हैं, इसी तरह सात्विक कर्म का फल निर्मल सुख राजसिक, कर्म का फल दुःख और तामसिक कर्म का फल अज्ञान है।

सस्माद् ेहमिमं लब्ध्वा ज्ञान विज्ञान संभवम् ।
गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥

क्योंकि ज्ञान विज्ञान प्राप्ति के लिये हीं तुमने यह शरीर पाया है, अतएव तुम्हें गुण सङ्ग को त्याग कर और आसक्ति, प्रमाद को छोड़ कर सत्त्व गुण के द्वारा रज और तम पराभव करके इन्द्रिय संयम पूर्वक मेरा भजन करना चाहिये ।



पञ्चम प्रकाश

भारत में ज्ञान मार्ग के सम्प्रदाय

पुराकाल से ही भारतवर्ष में वेदान्त, योग, मन्त्र, तन्त्र, और भक्ति आदि ज्ञान मार्ग के सम्प्रदाय चले आते हैं, और इन सम्प्रदायों से ही लोग अपने धर्म कर्म की शिक्षा दीक्षा लेके ज्ञान लाभ करते हैं, परन्तु वर्तमान में इन सम्प्रदायों की अवस्था और व्यवस्था और ही रूप में परिणत होगई है, वर्तमान में उपदेष्टाओं की स्वेच्छाचारिता और अयोग्यता के कारण उनसे उपदेश लेकर लोगों को ज्ञान साधना का वांच्छित फल नहीं मिलने से लोग भी पूर्व आचार्यों के कथित शास्त्र के मार्ग को छोड़कर अपनी अनुकूलतानुसार स्वेच्छा से वर्त्तते हैं, इसलिये वास्तविक तत्त्व को भी नहीं जानते और अपने नये २ सम्प्रदाय बनाते हैं, फलस्वरूप वर्तमान भारत में जितने धर्म के सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उतने पृथ्वी पर किसी भी देश में नहीं हैं, तथापि धर्म के विषय में भारतवासी भी सावधान नहीं हैं।

वेदान्त मार्ग

सबसे प्रथम और प्राचीन वैदिक व वेदान्त मार्ग है, जिसके ज्ञान प्राप्ति के साधन, विवेक, वैराग्य, शमादि षट् सम्पत्ति

और मुमुक्षुता है, इनका साधन करने से मनुष्य तत्त्वज्ञान के अधिकारी होते हैं, इस वेदान्त कथित साधन चतुष्टय का संचय नहीं करके ब्रह्मतत्त्व जानने का कोई अधिकारी नहीं होसकता, जैसे कोई व्यक्ति दूर देश जाता है, तो वह अपनी आवश्यकीय संपत्ति,—अर्थ, साथ ले जाता है ताकि मार्ग में कष्ट न हो, और निर्विघ्नता से गंतव्य स्थान पर पहुंचा जाय, तैसे ही अध्यात्म पथ में यह साधन संपत्ति अवश्य होनी चाहिये, नहीं तो वहां पहुँचा नहीं जाता। विवेक, वैराग्य, शमादि षट् संपत्ति के साथ वेदान्त कहता है कि श्रवण, मनन, तथा निदिध्यासन से चित्त की शुद्धि होकर ज्ञान होगा, और ज्ञान से ही मोक्ष होती है, विना ज्ञान से शतकोटि जन्म में भी मनुष्य ईश्वर से नहीं मिल सकते, उनकी मुक्ति नहीं होती। यह वेदान्त का तत्त्व सार सिद्धान्त है।

वेदान्त मार्ग के वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, और श्री शंकराचार्य के रचित ग्रन्थ समूह तथा योग वशिष्ठादि बड़े २ ग्रन्थ हैं, वे सभी ग्रन्थ माया और माया के कार्य का युक्ति, तर्क, वितर्क, एवं श्रुति द्वारा मिथ्या प्रतिपादन करके केवल निरतिशय निर्विशेष, निराकार शुष्क परम्ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, और कर्म का त्याग करके उपासना द्वारा त्याग तपस्या की शिक्षा देते हैं, एवं "तत्वमसि" प्रभृति महावाक्यों द्वारा जीवात्मा परमात्मा का एकत्त्व बोध कराते हैं। वेदान्त कथित ज्ञान के जितने भी साधन हैं, उनमें विचार ही मुख्य है, सर्वदा यह विचारते

रहना है कि—"अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ, सर्वत्र ब्रह्म परिपूर्ण है, प्रकृति परिवर्तन शील है यह माया जनित जगत् मिथ्या है इसका कोई अस्तित्व नहीं है, रज्जु में सर्प, स्थाणु में पुरुष और सुक्ति में रजतवत् भ्रान्ति से अज्ञान के कारण यह संसार भास रहा है, वास्तविक में जगत् नहीं है, यह माया न सत् है न असत् है, किन्तु मिथ्या है, अनिर्वचनीय है. जगत् में और दूसरा कोई नहीं है, "एकमेवाद्वितीयम्" मात्र एक अद्वितीय ब्रह्म ही है।

ज्ञानादेवहि मोक्षं च वदंति ज्ञानिनः सदा।
न कथं सिद्ध योगेन योगः किं मोक्षदो भवेत्॥
ज्ञाने नैवहि मोक्षोहि तेषां वाक्यं तु नान्यथा।
सर्वे वदंति खड्गेन जयो भवति तर्हि किम्॥
विना युध्येन वीर्येण कथं जय मवाप्नुयात्।
तथा योगेन रहितं ज्ञानं मोक्षाय नो भवेत्॥

वेदान्त वादी ज्ञानी लोग यही कहते हैं कि ज्ञान से ही मोक्ष होती है, अतएव सिद्धयोग से योग कैसे मोक्ष दायक होगा अर्थात् योग करने की क्या आवश्यकता है, उसके उत्तर में श्री महेश्वर कहते हैं, कि ज्ञान से ही मोक्ष होती है, यह उनका कथन सत्य है, किन्तु यह सब कोई कहते हैं, कि खड्ग से जय होती है, परन्तु विना युद्ध के और बल के कैसे जय हो सकती है, तैसे ही योग से रहित ज्ञान भी मोक्ष दायक नहीं होता,

क्योंकि विना योग के ज्ञान नहीं होता और बिना ज्ञान के योग भी नहीं होता, इसलिये दोनों का अभ्यास करना चाहिये।

योग मार्ग

विष्णुर्नामा महायोगी महाभूतो महातपा।
विष्णुरूपेण महायोगी पालयेदखिलं जगत् ॥
रूद्ररूपो महायोगी संहरत्येव तेजसा।

दूसरा योग मार्ग हैं, उसका साधन अष्टांग योग है, और योग से समाधि के वाद संयम इसकी शेष सीमा है, जिसके वल से ब्रह्मांड के सभीतत्व यथा तथ्यनिश्चित रूप से जाने जाते हैं, परम योग तत्त्ववेत्ता योगीश्वर, सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, योग करके ही ईश्वर कहलाते हैं, और योग के वल से सृष्टि का नियंत्रण करके कार्य सम्पादन करते हैं, उनका कहा हुआ योग साधन ही मेरा सत्य एवं सनातन ज्ञान है, उस ज्ञान के आश्रय से तुम लोग मुझ परब्रह्म को अभ्रान्त रूप से जान सकोगे, अतएव योग साधना के लिये योग शास्त्र है।

योगशास्त्र महाविज्ञान है, उसके कर्ता परम कृपालु मंगलमय महेश्वर हैं, उन्होंने योगशास्त्र में तुम्हारे लिये योग सम्बन्धि ज्ञातव्य तत्व सभी कह दिये हैं, योगशास्त्र के हजारों ग्रन्थ थे, परन्तु लोगों के दुर्भाग्य से और प्रमाद वश अनुशीलन के अभाव से वहुत से ग्रन्थ नष्ट हो गये तथापि अभी भी श्री महेश्वर, विरञ्चि, तथा विष्णु भगवान के कहे हुए योग ग्रन्थ, उपनिषद्

एवं योगतत्ववेत्ता ऋषि, मुनि, योगियों, के बहुत से ग्रन्थ वर्तमान हैं, योग विद्या के प्रवर्तक सिद्धों में कपिल मुनि प्रसिद्ध हैं, उनका कहा हुआ सांख्य दर्शन और पतञ्जलि मुनि का योग दर्शन सब शास्त्रों में सर्वोपरि समझा जाता है, ऐसा कोई शास्त्र ग्रन्थ नहीं होगा कि जिसमें योग की बात न आई हो, योग साधन सबके लिये कर्तव्य और माननीय है, पुरा काल में योग साधना के बल से लोग अपना उत्कर्ष साधन कर गये थे, जिस के फलस्वरूप भारतवासियों का अध्यात्म ज्ञान अभी भी सारे भूमण्डल में सर्वोपरि समझा जाता है, परन्तु वर्तमान में लोगों की दशा इस विषय में विपरीत है।

पुरुषार्थवादी योगी लोग कहते हैं कि योग साधना न करके ऊपर के मन से वेदान्त का विचार करते २ शिर चक्कर खा जायगा, तथापि मन इच्छानुसार रोका नहीं जायगा, केवल मन से ब्रह्म बनने से सदा आत्म-तृप्ति नहीं हो सकती क्योंकि कहीं भी देखने सुनने में नहीं आया कि मानसिक भोजन से कोई व्यक्ति दीर्घायु हुआ हो, अतएव बिना योग साधना किये ज्ञान लाभ करना सहज नहीं और काल के आधीन होना अनिवार्य है।

मंत्र मार्ग

तीसरा मंत्र मार्ग है वर्तमान में इसका भारत में कोई स्वतंत्र सम्प्रदाय देखने में नहीं आता किन्तु मंत्र सब सम्प्रदायों में अपना थोड़ा बहुत अधिकार कर गये हैं। और सब ही सम्प्रदाय वाले मंत्रों को मानते हैं। लोग जितना मंत्र विद्या का

आदर करते हैं उतना योग और वेदान्त का आदर नहीं करते क्योंकि योग और वेदान्त कल्याणकारी हैं उनमें भोग त्याग करना कहा है परन्तु बहुत से लोग भोग त्यागना नहीं चाहते। वे तो संसार का सुख ही चाहते हैं, इसलिये धारणा, ध्यानादि योग साधन न करके पाठ, पूजन, जप, तप, द्वारा अपने उपास्य देवी देवताओं को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं और जो कुछ करते हैं वह भी कामना करके ही करते हैं। कामनायुक्त होकर मंत्र का अनुष्ठान करने से सात्विक भावना वालों को धर्म की, राजसिक वालों को अर्थ को और तामसिक भाव वालों को काम की सिद्धि होती हैं किन्तु उनको मुक्ति नहीं होती। मुक्ति तो सब कामनाओं को त्याग करने से ही होती है।

तंत्र मार्ग

चौथा तंत्र का मार्ग है, किसी समय भारतवर्ष में यह तंत्र सम्प्रदाय बड़ा प्रबल था परन्तु वर्तमान काल में प्रायः लुप्त सा होग या है तथापि बंगाल, विहार, उड़ीसा, काश्मीर, नैपाल आदि देशों में इसके अनुयायी मिलते हैं। वे लोग शिव शक्तिरूप से ईश्वर की उपासना करते हैं। उनके साधन के ग्रन्थ तंत्र शास्त्र हैं जिनके हज़ारों ग्रन्थ थे। उनमें अधिकारी विशेष के लिये तात्कालिक भोग और मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है। और योग सम्बन्धी ज्ञान विशेष करके तंत्रग्रन्थों में ही मिलता है जितने मंत्र हैं वे भी तंत्र ग्रन्थों में मिलते हैं। मंत्रों के देवताओं को सिद्धि तथा उनकी पूजा पद्धति और ध्यान, ज्ञान सब ही कुछ तंत्र ग्रन्थों

में भरपूर है। वेद में जो ज्ञान बीजरूप से है, उसको तंत्र शास्त्रों में विस्तार से कहा है परन्तु बहुत से लोग तंत्र शास्त्र के प्रति कटूक्ति करते हैं किन्तु विचारपूर्वक तंत्र ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होगा कि जैसा वे समझते हैं वैसा नहीं है।

कितनेक तंत्र ग्रन्थों में पशवाचार, वीराचार और दिव्याचार नाम से तीन प्रकार के मार्ग कहे हैं, उसमें पशवाचार मार्ग से जीव हिंसा आदि तामसिक कर्म द्वारा उपासना करने वाले वाम मार्गी कहलाते हैं, वे ही निन्दा के पात्र हैं। परन्तु वीराचार और दिव्याचार मार्ग से राजसिक तथा सात्त्विक उपासना करने वाले शुद्ध उपासकों की मंत्र शक्ति और योग का ज्ञान प्रत्यक्ष फलप्रद प्रभावशाली अतीव आश्चर्य जनक और प्रशंसा के योग्य है, वे लोग भी पशवाचार के विरुद्ध हैं। वर्तमान में वैदिक क्रियाकर्म से क्वचित् किसी को फल प्रत्यक्ष होता होगा परन्तु तंत्र कथित मार्ग से सभी क्रिया कर्म का फल तात्कालिक होता है अतएव तंत्र शास्त्र महागूढ़ रहस्यमय है।

भक्ति मार्ग

पांचवां भक्ति मार्ग है जिसका वर्णन तृतीय प्रकाश में हो चुका है परन्तु वर्तमान में भक्ति सम्प्रदाय वाले जैसा वर्तते हैं उसका साधन मूर्ति पूजन तथा भगवान की सेवा पूजा है वे लोग द्विधा भाव से भक्ति करते हैं। अपने को दास और भगवान को प्रभु समझ कर भजते हैं। उनके भक्ति साधन के ग्रन्थ प्रधानतः पुराण और अपने अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों

के रचे हुवे ग्रन्थ हैं और उनके भाष्यों को ही वे लोग सर्वोपरि मानते हैं। इसलिये वेदान्त कथित ज्ञान तथा योग शास्त्र कथित विज्ञान को वे लोग अपने अनुकूल नहीं समझते क्योंकि योग और वेदान्त द्वैतभाव का निषेध करते हैं और वे लोग द्वैतवादी हैं इसलिये वेदान्त और योग के ज्ञान को नहीं चाहते। साधारणतः जितने भी कल्याण के मार्ग हैं वे सभी वेद, उपनिषद और दर्शनादि शास्त्रों के अनुसार ही चलने वालों को ज्ञान लाभ कराते हैं और उन मार्गों को मानने वाले लोग वैदिक धर्मानुसार ईश्वर प्राप्ति के किसी भी मार्ग को पृथक् नहीं समझते परन्तु वर्तमान में भक्ति सम्प्रदाय के बहुत से लोग योग और ज्ञान का नाम सुनते ही घबड़ा के भयभीत होकर उसको अपने प्रतिकूल समझ कर तिरस्कार करते हैं उन्हें भय का कोई कारण नहीं है। क्योंकि ज्ञान, योग और भक्ति भगवान से मिलने के लिये ये तीन ही मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहे हैं, इस लिये घबड़ा कर ज्ञान और योग का तिरस्कार करने की कोई बात नहीं है।

ज्ञान, योग और भक्ति की एकता

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥

भगवान् कहते हैं कि मेरी प्राप्ति के लिये ज्ञान, योग और भक्ति ये तीन ही मार्ग हैं चौथा और कोई मार्ग नहीं है। ज्ञान, योग और भक्ति ये तीनों एक साथ ही रहते हैं। जहां ज्ञान

होगा वहीं योग होगा और जहां ज्ञान एवं योग है वहीं भक्ति है। ज्ञान का अर्थ है जानना और योग का अर्थ है चित्त वृत्तियों का निरोध करके मुझ से मिलना। इसलिये ज्ञान से मुझे जानकर योग से मिलकर तुम्हारी मुझ में परानुरक्ति होकर जो अवस्था होगी वही मेरी पराभक्ति है किन्तु जिसको तुम ज्ञान द्वारा जानोगे नहीं और योग साधना करके मिलोगे नहीं वहां भक्ति कैसे हो सकती है। जब तुम ज्ञान से जान लोगे और योग से मिल लोगे तभी तो भक्ति होगी। जिसको तुम ज्ञान से जानते नहीं हो, योग से मिलते नहीं हो वहां विना जाने भक्ति हो ही नहीं सकती इसलिये मुझे जानने के लिये तुम्हें ज्ञान चाहिये और मिलने के लिये योग साधन करना चाहिये। जब तुम ज्ञान से मुझे जान लोगे योग से मिल लोगे तब तुम्हारे में जो भक्ति होगी उसीका नाम ही वास्तविक भक्ति है। उस भक्ति के द्वारा ज्ञान से ही मुझे भली प्रकार जानकर योग से मुझ में प्रवेश करोगे तब तुम्हें समाधि होगी। उस समाधि में ही तुम मुझे तत्त्वतः जैसा कि मैं हूँ ठीक जान सकोगे।

अतएव योग ज्ञान और भक्ति ये तीनों एक से एक बढ़कर हैं और एक दूसरे से मिले हुए हैं। एवं एक दूसरे के आश्रित होने के कारण एक के बिना दूसरे की प्राप्ति नहीं होती और न स्थिति हो सकती है। इसको पृथक समझना ही महाभ्रम है और मेरे कथन का अनादर करना है। मेरी बात को न मानकर जब तुम अपने सम्प्रदाय के शास्त्रानुसार पक्षपात से ज्ञान, योग और

भक्ति के पहिले अथवा पीछे होने का विचार करते रहोगे तो तुम्हारा मंगल नहीं होगा, क्योंकि ज्ञान, योग और भक्ति किसी सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं, जो कि उनके अनुयायी नहीं होने से दूसरों को मिले ही नहीं, ये तो केवल त्याग और और तपस्या एवं ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होने वाली वस्तु हैं, इनको तुम सब ही पा सकते हो इसलिये तुम लोग सब सम्प्रदायों का झगड़ा छोड़ कर उदारता से अपने को किसी भी सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी मत समझो, इसी में ही तुम्हारा मंगल है। बहुत से लोग शास्त्र पढ़कर अथवा संन्यास लेके थोड़ा बहुत कोई साधन करके झट उपदेष्टा बन कर लोक समाज में ज्ञान का प्रचार करने में प्रवृत्त हो जाते हैं, और समय पाकर अपना समाज अथवा सम्प्रदाय बना लेते हैं इस प्रकार धर्म के बहाने से आजकल भारतवर्ष में समाज और सम्प्रदायों की भरमार है तथापि भारतदेश का भला नहीं होता।

जगत की पूर्ति नहीं होती

इसलिये जैसा पहिले कहा गया है कि मन की गति विधि में गुणों के संयोग से होने वाले परिवर्तन से इष्ट अनिष्ट का विचार करके अभी संसार में ही रह कर तुम्हें मेरी प्राप्ति के लिये योग साधन करना चाहिये क्योंकि घर बार छोड़ के साधना न करके धर्म प्रचार या परोपकार के बहाने से लोक समाज में उपदेष्टा बन जाने से अथवा सम्प्रदाय बना लेने से ही तुम्हारा मंगल नहीं हो सकता, अतएव पहिले योगसाधन से शरीर, मन,

प्राण को वश करके आत्म तत्त्व का अनुभव कर लो पश्चात् यदि ईश्वर इच्छा से तुम्हारे द्वारा लोगों का भला होना है तो अन्तर आत्मा से प्रेरणा होगी तभी उपदेश देने में प्रवृत्त होना क्योंकि जगत में कितने ही महान् आत्मा आये परन्तु यहां कुछ नहीं वढ़ा और बड़े २ महा पुरुष आकर चले गये तथापि कोई कमी नहीं हुई जैसे समुद्र में सारी नदियां चली जाती हैं तो भी समुद्र का जल नहीं वढ़ता और सूर्य के आकर्षण से कितना ही जल आकाश में उड़ जाता है परन्तु समुद्र में जल की कमी नहीं पड़ती इसी तरह संसार की पूर्ति नहीं होती अतएव तुम्हारे रहने या न रहने से जगत में कुछ भी बढ़ेगा घटेगा नहीं।

सिद्धिप्रद मार्ग

सर्वे जीवा सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः।
तेषां मुक्तिःकथं देव कृपया वद शंकर ॥
सर्व सिद्धिकरं मार्ग मायाजालनिकृन्तनम्।
जन्ममृत्युजराव्याधि नाशनं सुखदं वद ॥
नाना मार्गस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धि मार्गेण लभते नान्यथा पद्मसंभव ॥

श्री महेश्वर के प्रति ब्रह्मा जी बोले कि हे शंकर! सब जीव सुख दुःख और माया जाल में घिरे हुये हैं उनकी मुक्ति कैसे होगी? कृपया कहिये हे देव! मनुष्यों को सर्व सिद्धिप्रद तथा

माया जाल का काटने वाला और जन्म मृत्यु जरा एवं व्याधि-नाशक और महासुख देने वाला कोई मार्ग कृपा करके कहिये। तब श्री महेश्वर बोले कि हे पद्मज ब्रह्मा! कैवल्यरूप परम पद है वह योग के विना नाना प्रकार के मार्गों से प्राप्त होना कठिन है वह तो केवल सिद्ध मार्ग—महायोग से ही प्राप्त होता है। सिद्धि देने वाले प्राणायाम-योगमार्ग के विना और मार्गों से मन को वश करना सहज नहीं है।

चित्तं प्राणेनसंबद्धं सर्व जीवेषु संस्थितम्।
रज्जवा यद्वत्सुसंबद्धः पक्षी तद्वदिदं मनः॥
नानाविधैर्विचारैस्तु न बाध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एवहि नान्यथा॥
तर्कैर्जल्पैः शास्त्रजालैर्युक्तिभिर्मन्त्रभेषजैः।
न वशो जायते प्राणः सिद्धोपायं विना विधे॥
उपायं तमविज्ञाय योग मार्गे प्रवर्तते।
खण्डज्ञानेन सहसा जायते क्लेशवत्तरः॥

क्योंकि मन प्राण के आधीन है जैसे रज्जु से पक्षी बंधा रहता है उसी तरह सब जीवों का चित्त भी प्राण के साथ बंधा हुआ है यदि कोई चाहे कि मैं विचार द्वारा उस मन को वश करलूं तो ऐसे नाना प्रकार के विचार करने से मन बाध्य नहीं होता है इसलिये उसको जीतने का एक मात्र उपाय प्राण ही है। प्राणा-

याम नहीं करके प्राण के जीते विना मन को जीतने का अन्य कोई उपाय नहीं है और हे विधे! यह प्राण भी सिद्ध उपाय महायोग के विना तर्क वितर्क वाद विवाद करने वाले शास्त्रों की युक्तियों से अथवा मंत्र और औषध से वश में नहीं होता, प्राण को वश में करने के लिये महायोग ही एक मात्र सिद्ध उपाय है। जो लोग इस सिद्ध उपाय को न जानकर योगमार्ग में प्रवृत्त होते हैं उन्हें खण्ड ज्ञान हेतु योग साधन में क्लेश ही होता है फल कुछ नहीं होता।

वर्तमान में मनुष्यों को इस शरीर से वायुयान द्वारा आकाश में उड़ना भी सहज हो गया है और जलयान से समुद्र गर्भ-पाताल में प्रवेश करना भी कठिन नहीं है परन्तु इस दुर्जय मन को क्षण मात्र भी रोक लेना सहज साध्य नहीं है, इस महावली मन ने वड़े २ विचारवानों को भी चक्कर में डाल रखा है। इतने सारे शास्त्र ग्रन्थ भी इसी के बन्धन और मुक्ति का ही विचार करते हैं। इसका विश्वास करके मनुष्य कदापि अपने अभीष्ट की सिद्धि नहीं कर सकते। इस के निग्रह का उपाय योग साधन है।

ज्ञान के लिये शरीर पक्का होना चाहिये

अपक्वाः परिपक्वाश्च देहिनो द्विविधाः स्मृताः।
अपक्वा योग हीनास्तु पक्वा योगेन देहिनः॥
सर्वो योगाग्निना देहो ह्यजडः शोकवर्जितः।

जड़स्तु पार्थिवो ज्ञेयो ह्यपक्वो दुःखदो भवेत् ॥
ध्यानस्थोऽसौ तथाप्येवमिन्द्रियैर्विवशो भवेत् ।
तानि गाढं नियम्यापि तथाप्यन्यैः प्रबाध्यते ॥

मनको जीतने से पहिले शरीर को वश में करना आवश्यक है क्योंकि शरीर दो प्रकार के हैं- अपक्व और परिपक्व, योग-साधन से रहित शरीर कच्चा कहलाता है और योगसाधन करने से शरीर परिपक्व होता है, परिपक्व शरीर से ही तुम मुझसे मिल सकोगे क्योंकि योग रूप अग्नि से पका हुआ शरीर जड़ता रहित शोक वर्जित हो जाता है, परन्तु योगसाधन नहीं करने से यह पार्थिव देह जड़ कहलाता है, इसलिये कच्चा शरीर दुःख-दाई और भार रूप होजाता है ऐसे शरीर से धारणा ध्यान करोगे तो इन्द्रियों के विवश होने के कारण स्थिर होकर बैठ नही सकोगे, हाथ पैर दुखने लग जायँगे, चित्त में विक्षेप होगा इसलिये ब्रह्म के ध्यान को वहीं विसर्जन करना पड़ेगा, यदि ज्ञान से विचार द्वारा दुःख के अनुभव से इन्द्रिय और मन को रोक भी लोगे तो भी बहुत सी बाधायें आवेंगी।

शीतोष्ण सुखदुःखाद्यैर्व्याधिभिर्मानसैस्तथा ।
अन्यैर्नानाविधैर्जीवैः शस्त्राग्नि जलमारुतैः ॥
शरीरं पीड्यते तैस्तैश्चित्तं संक्षुभ्यते ततः ।
तथा प्राणविपत्तौ तु क्षोभमायाति मारुतः ॥
ततो दुःखशतैर्व्याप्तं चित्तं क्षुब्धं भवेन्नृणाम् ।

शीत उष्ण सुख दुःख आदि मानसिक व्याधि से अस्थिर हो जाओगे, क्योंकि कच्चा शरीर ही दुखदाई है, अतएव शस्त्र, अग्नि, जल, वायु और नाना प्रकार के जीवों शरीर पीड़ित होकर चित्त व्याकुल हो जाता है इसलिये सहज ही प्राण-विपत्ति आ जाती है तो प्राण वायु भी क्षोभित होता है, ऐसा होने से चित्त शत २ दुःखों से व्यथित होता है, सो योग साधन से रहित कच्चे शरीर वाले मनुष्यों के प्राण संकट आने पर होश हवास उड़ जाते हैं।

देहावसान समये चित्तं यद्यद्विभावयेत् ।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम् ॥
देहान्ते किं भवेज्जन्म तन्न जानन्ति मानवाः ।
तस्माज्ज्ञानं च वैराग्यं जीवस्य केवलं श्रमः ॥
पिपीलिका यथा लग्ना देहे ध्यानद्विमुच्यते ।
असौ किं वृश्चिकैर्दष्टो देहान्ते वा कथं सुखी ॥

अतएव देह त्यागने के समय मनमें जो २ भावनायें होती हैं उनके ही अनुसार जन्म होता है, यही जन्म का कारण है; मरने के बाद किस योनि में जन्म होगा- यह मनुष्य नहीं जानते, इसलिये योग रहित ज्ञान, वैराग्य केवल श्रममात्र ही है क्योंकि कच्चे शरीर से ज्ञान ध्यान का कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, शरीर में चींटी के काटते ही झट ध्यान छूट जाता है, बिच्छू की वेदना को कौन नहीं जानता, एक चिन्टी के लगते ही

जब ध्यान छूट जाता है तो विच्छू के काटने का कितना दुःख अनुभव होगा, इसी तरह दुखित होकर मरने वाले कैसे सुखी हो सकते हैं।

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
विना देहेन योगेन न मोक्षं लभते विधे॥
शरीरेण जिताः सर्वे शरीरं योगिभिर्जितम्।
तत्कथं कुरुते तेषां सुखदुःखादिकं फलम्॥

ज्ञाननिष्ठ, विषयों से विरक्त, जितेन्द्रिय और धर्म को जानने वाला होते हुए भी इस शरीर से योग किये विना मोक्ष लाभ नहीं कर सकता। शरीर ने ही सब को जीत रखा है परन्तु योगियों ने शरीर को भी जीता है, इसलिये शरीर के सुख दुःख आदि फल उनका कुछ नहीं कर सकते, अतएव हमसे मिलने के लिये शरीर को परिपक्व बनाना विशेष आवश्यक है, जब तक तुम्हारा शरीर ही तुम्हारे वश में नहीं है, तब तक तुम क्या कर सकते हो, शरीर से हारे हुए तुम हमें स्वप्न में भी नहीं देख सकोगे, कच्चे शरीर से किसी ने हमारा ज्ञान नहीं पाया और न कच्चे शरीर से ज्ञान का साधन ही हो सकता है क्योंकि कच्चा शरीर आत्मज्ञान होने से पहिले ही व्याधि आदि के कारण नष्ट हो जायगा, अतएव जब तक तुम लोग योग साधन नहीं करते तब तक तुम्हारे लिये सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है, परन्तु जब तुम मेरे कथित योग का साधन

कर प्रयाग के लिये प्रस्थान करोगे तो तुम्हें प्रकाश ही प्रकाश दिखेगा।

न वेषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः॥

जिस योग की महिमा कह रहा हूं उसके कहने मात्र से कोई लाभ नहीं, इस योग के लिये वेश धारण करना अर्थात् सन्यास लेना या उसकी कथा कहना सिद्धि का कारण नहीं है, तुम लोग सत्य जानियो कि योग करना ही सिद्धि का कारण है।

महायोग

मन्त्रो लयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात्।
एक एव चतुर्धायं महायोगोऽभिधीयते॥

यह योग मैंने महेश्वर रूप से महायोग के नाम से कहा है, साधारणतः तुम लोग हठ योग, मन्त्रयोग, लययोग, और राजयोग को भिन्न २ समझते हो परन्तु ऐसा नहीं है; ये चारों योग कुंडलिनी शक्ति के जागने के कारण स्वतः होते हैं इसलिये इसकी 'महायोग' अथवा 'सिद्धउपाय' संज्ञा है। जब किसी शक्तिमान् गुरू के अनुग्रह से अथवा तुम्हारे संचित पापों के नाश से तुम्हारे में सदिच्छा जाग उठेगी तब इस अलौकिक और कल्पनातीत विषय का अनुभव कर सकोगे; मन्द बुद्धि वाले तुम जब तक प्रयाग में नहीं पहुँचते, तब तक स्वयं ब्रह्मा भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते, अतएव जब तुम्हारी सदिच्छा

प्रबलता को प्राप्त होगी तब तुम्हारी छिपी हुई शक्तियों का विकास होगा और महायोग का मन्त्र तुम्हें शारीरिक मानसिक प्रसन्नता प्रदान करेगा।

अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

तुम लोग सत्य जानियो कि मैं इतना निर्दय नहीं हूं कि मुझे कोई जान ही न सके, जैसे माया ने तुम्हें मोह रूपी जाल में फँसा रखा है वैसे ही मैंने छूटने का रास्ता भी इतना सहज रखा है कि यदि तुम जान लोगे तो घर बार न छोड़ के सन्यास लिये विना ही आनन्द से मुझे मिल सकोगे; यह रास्ता इतना सहज होने पर भी जब तक तुम मेरे लिये व्याकुल नहीं होते तब तक तुम्हें यह पथ नहीं मिल सकता क्योंकि मार्ग सुगम होने से ही चला नहीं जाता, इस पथ में ले जाने वाला गुरु चाहिये और वही तुम्हारे दुर्भाग्य से दुर्लभ है, तथापि कोई चिन्ता नहीं, यदि तुम अनन्यचित्त होकर मेरी उपासना करोगे तो योग भी मैं ही दूंगा और रक्षा भी मैं ही करूंगा।

तप ही मेरी प्राप्ति का मुख्य साधन है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापन गतीरुध्वा प्राणायाम परायणाः॥
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

अतएव गीता में मैंने जैसे यज्ञ कहे हैं उनके अनुसार प्राण को अपान में होमना एवं प्राण अपान की गति रोक कर प्राणायाम परायण होजाना चाहिये फिर देखो मुझसे मिलने में क्या विलम्ब है। द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ और ज्ञान आदि यज्ञों का वर्णन मैंने वेद आदि शास्त्रों में किया है, परन्तु ये सब यज्ञ सब अधिकारी नहीं कर सकते क्योंकि द्रव्य सबके पास नहीं होता, इसलिये ग़रीब कैसे कर सकता है, तप और योग मनुष्य मात्र के लिये सहज है, सब कोई लिख पढ़ नहीं सकते इसलिये पूरा स्वाध्याय यज्ञ कैसे बने, पंडित बहुत नहीं होते इसलिये सब कोई सन्यास लेकर ज्ञानरूपी यज्ञ करने में समर्थ नहीं होते अतएव अब रहे तप और योग साधन सो दोनों में ही सब यज्ञों का फल आजाता है, बिना तप और योग यज्ञ किये कोई यज्ञ किसी को नहीं फलता, मूल में जल देने से वृक्ष अवश्य फलेगा ही, तप ही मेरी प्राप्ति का मुख्य साधन है।

"तपो न परं प्राणायामात्ततो
विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य"

प्राणायाम से बढ़ कर और तप ही नहीं है, प्राणायाम से राग द्वेष की निवृत्ति होकर ज्ञान का प्रकाश होता है, तुम्हारा कच्चा शरीर प्राण अपान का होम-प्राणायाम करते २ प्राण अपान की एकता रूप योग से पक्का बन जायगा तब तुम्हें शीत, ऊष्ण, सुखदुःख, मरना जीना कोई विचलित नहीं कर सकेगा।

प्राण यज्ञ

मैंने यज्ञ सब ही रचे, परन्तु प्राणयज्ञ सबसे बड़ा है, जब कोई प्राण होमने को तैयार होता है तो 'मरता क्या नहीं करता' इस उक्ति के अनुसार जब तुम अपने प्रिय प्राण को ही ब्रह्माग्नि में होमना आरम्भ कर दोगे, तब तुम्हारे सब कार्य सफल हो जायेंगे, प्राण यज्ञ की सामग्री में न तो अर्थ व्यय करने की आवश्यकता है और न समय की चिन्ता है, प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में आरम्भ करना अच्छा है क्योंकि उस समय तुम्हें और कोई कार्य नहीं होता। रात्रि मैंने प्राणियों के विश्राम के लिये बनाई है, इसलिये रात्रि के तीन प्रहर में से यदि एक प्रहर भी तुम प्रत्यहः यह यज्ञ किया करोगे तो तुम्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये कोई चिन्ता न रहेगी। जो मनुष्य वीरता से कर्तव्यपरायण होकर प्राण यज्ञ करते हैं उनके लिये स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं, उनके मन की महत्ता सब देवताओं को प्रसन्न कर लेती है, उनके सत्य सङ्कल्प की आहुति से पितृ प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते हैं, मैं स्वयं भी उनका योगक्षेम वहन करता हूं, मेरे लिये प्राण देने वाला पुरुष मुझे अतीव प्रिय है. जब तक मुझे कोई प्राण अर्पण नहीं करता तब तक मैं प्रसन्न नहीं होता हूं, अतएव तुम लोग मेरे अर्थ प्राण यज्ञ आरंभ करो क्योंकि प्राण ही मेरी छाया है, मन तो मुझ से बहुत दूर रहता है परन्तु प्राण मेरे साथ संलग्न है, जब तुम्हारे प्राण में आघात पहुँचेगा तो मैं निश्चय विचलित हो जाऊंगा।

यह प्राण विश्व के प्राणियों का जीवन है, इसकी वृद्धि से तुम लोग आयु, बल, तेज पाते हो और इसके ह्रास से तुम रोगी दरिद्री होते हो, इसके होम से तुम शतायु होओगे एवं नीरोग, निर्भय तथा निश्चिन्त हो जाओगे, तुम्हारे सब संकट दूर होंगे; तुम प्राणायाम परायण हो जाओ-योग साधन करो, तुम्हारे सारे काम सहज हो जायेंगे, थोड़े ही समय में तुम्हें संसार उलटा चलता दीखेगा, तुम्हारे अन्तर में दिव्य ज्योति जाग उठेगी, अंधकार को उड़ा देगी, प्रकाश से परे का अनुभव होगा।

जब तुम प्राण की प्रथम आहुति पूरक करो तब मूलाधार में मन को लगाना, दूसरी आहुति कुम्भक करके वहां ठहरना, तब नाभि में विष्णु ग्रंथी में विष्णु के दर्शन करने के लिये योग माया-कुंडलिनी देवी का साक्षात्कार करना, वही शक्ति तुम्हें बड़ी सहायता देगी, उसकी ही कृपा से तुम मुझे निर्गुण रूप से देखोगे कि मैं ही सर्व व्यापक हुआ विष्णु कैसे तुम्हारे शरीर रूपी ब्रह्माण्ड का कार्य चलाता हूं।

तुम्हारी प्रथम आहुति से तुम्हारे ब्रह्मांड-सहस्रार का रास्ता साफ होना आरंभ होगा और दूसरी आहुति से तुम्हारी ब्रह्माग्नि प्रज्वलित हो जायगी जिससे अन्तर की ज्योति जाग उठेगी, प्रयाग तीर्थ में प्रवेश होगा, फिर तीसरी आहुति रेचक धीरे २ छोड़ना सब पाप दग्ध हो जायेंगे, पितृ प्रसन्न होंगे, ओम्कार रूप महा मन्त्र का जप करते रहना और पुनः पहली दूसरी और तीसरी आहुति देकर प्रयाग के अधिष्ठातृदेव-वेणी

माधव अर्थात् आत्मा को वन्दन करना, वस अब तुम्हारा प्रायश्चित हो गया, तुम्हारे अन्तर्चक्षु-दिव्य नेत्र खुल जायेंगे सरस्वती तुम्हारे कण्ठ में वास करेगी, तुम परम शान्ति लाभ करोगे।

अब तुम्हें कुंडलिनी देवी सब बतायेगी अतएव आज से तुम्हें अपनी ओर से आहुतियां देने की आवश्यक्ता नहीं रहेगी, प्रतिदिन प्रातः सायं आंख मूंद कर बैठना ही तुम्हारे लिये यथेष्ट होगा, स्वल्प समय में देखोगे कि तुम्हारा ज्ञान ध्यान दूसरा ही हो गया है, मानो तुमने अपना नया देश ही बना लिया है, यहां के मनुष्य तुम्हें अच्छे नहीं लगेंगे, वहां की बातें तुम यहां वालों को सुनाओगे तो ये लोग तुम्हें पागल कहेंगे और तुम उन्हें पागल समझोगे, ऐसे ही तुम्हारा रोज़ २ का ज्ञान ध्यान बदलता जावेगा, तुम विवेक और वैराग्य के साथी बन जाओगे तुम्हें यहां पर कुछ अच्छा नहीं लगेगा, योग माया का चक्र तुम्हें सर्वदा घुमायेगा, स्थिर होकर बैठ नहीं सकोगे सारा ब्रह्मांड तुम्हें हिलता चलता नज़र आवेगा, स्थिरता संसार में तुम्हें कहीं नहीं दीखेगी, जगत् में कोई पदार्थ स्थिर नहीं है यह बात इस यज्ञ के प्रताप से तुम आंखों से देखोगे।

शास्त्र में जगत् को चंचल, अस्थिर और स्थायी कहा है परन्तु लोग मानते कब हैं तथापि तुम चाक्षुष देखोगे; तुम स्वप्न देखोगे वह भी अन्तर्जगत् के ही होंगे, वहां तुम जो २ बात देखोगे वह तुमने कभी भी न देखी होगी और न सुनी होगी, वही घटना

स्वप्न तो क्या परन्तु बैठकर नेत्र बन्द करते ही देखने लग जाओगे तब तुम्हें यह भी मालूम नहीं पड़ेगा कि जाग्रत में हो या स्वप्न में; संसारी लोग सर्वस्व देकर भी जो नहीं पा सकते वह तुम सहज ही पा लोगे, इसी प्रकार तुम्हारे अनुभव होते रहेंगे और जब तुम्हारे सारे पाप पुण्य का नाश हो जायगा या कहो तुम्हारा सर्वस्व नष्ट हो जायगा तब तुम मुझसे मिलोगे।

प्रयाग में प्रायश्चित करने के पश्चात् तुम्हारे में सत्त्व गुण स्थायी हो जायगा, 'सत्त्वात् संजायते ज्ञानं' इस वाक्य का अर्थ स्पष्ट होता रहेगा और उत्तरोत्तर आनन्द ही आनन्द बढ़ता जायगा; यह प्राण यज्ञ अर्थात् प्राणायाम का परिणाम कहा, परन्तु ये बातें आरम्भ में उनको ही होंगी जिन्होंने गुरु के सामने यज्ञ आरम्भ किया हो अथवा जिन पर गुरु कृपा करे उनको तो प्रथम आहुति से ही ये सब अनुभव होंगे ही, इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं है।

गुरु की आवश्यकता

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम्।
स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत्॥

जहां तक हो शास्त्र की मर्यादा की रक्षा करना ही कर्त्तव्य है क्योंकि शास्त्र ही मेरी प्राप्ति का पथ प्रदर्शक है अतएव उसकी विधि अनुसार गुरु करना ही आवश्यक है, क्योंकि तुम अनादि काल से अविद्या युक्त हो इसलिये तुम्हें स्वयं आत्मज्ञान

नहीं हो सकता, तुम्हें ज्ञान देने के लिये किसी अन्य तत्त्वज्ञानी गुरु की आवश्यकता है।

"तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकी
पुत्रायोक्त्वोवाच, अपिपास एव स बभूव"

रामावतार में मैंने गुरु वशिष्ठ मुनि से उपदेश लिया, उनके शक्तिपात से ही मैंने समाधि में ज्ञान प्राप्त किया तथा मैंने ही देवकीनन्दन श्रीकृष्ण होकर आङ्गिरस ऋषि से उपदेश लेकर शान्ति पाई, तुम्हारे लिये तो भला कहना ही क्या? जो विद्या गुरु मुख से ग्रहण की जाती है वही फलीभूत होती है और शास्त्रों की एवं अपनी परम्परा की रक्षा होती है, भला मुझे कोई ज्ञान दे सकता है तथापि तुम्हारे लौकिक व्यवहार बनाये रखने के लिये मैंने भी तुम लोगों की तरह सब काम किये थे, अतएव वेदों में जितने यज्ञ कहे हैं वे बिना गुरु से करने में वर्षों लग जायँगे परन्तु उपयुक्त गुरु द्वारा उनका फल अल्प समय में मिलता है।

जिन्हें ऐसे गुरु प्राप्त न हों वे भी कोई चिन्ता न करें और मेरे कथित उक्त यज्ञ का आरम्भ करदें, उन्हें पहिले २ अवश्य क्लेश उठाना पड़ेगा अर्थात् आहुति देने मात्र से अनुभव नहीं होगा तथापि वे धैर्य धरकर नित्य आहुति देते रहें ताकि वही समय आ जाय और यदि यज्ञ करने वाला उत्साही तीव्र संवेग से व्याकुल हृदय होकर हवन अर्थात् पूरक, कुम्भक, रेचक

करता रहेगा तो वह भी उसी तरह शीघ्र प्रयाग में पहुँच जायगा।

प्राणायाम की विधि

जिस यज्ञ को कह रहा हूं वह समझने में तो सामान्य है परन्तु करने में कठिन और महान् फल-आत्मज्ञान का देने वाला है, यदि इस प्राण यज्ञ को सोच समझ के ठीक २ किया जाय तो मुझसे मिलने में विलम्ब नहीं होता, यह यज्ञ करने का स्थान सर्वत्र एकसा है क्योंकि मैं सर्वत्र हूं इसलिये अपनी २ अनुकूलतानुसार स्थान और समय का निर्देश कर लेना चाहिये, यह यज्ञ साधारणतः शुद्धाशुद्धि की अपेक्षा नहीं करता तथापि तुम्हें चाहिये कि पवित्र प्रसन्न, रागद्वेष से रहित रहना और प्रातः एवं सायंकाल इसका अनुष्ठान करना, यदि घर में करो तो कोई एकान्त घर ठीक कर लेना, उसमें पूर्वाभिमुख आसन स्थापित करना, सिद्धासन या पद्मासन से बैठकर स्वस्थ चित्त होकर गुरु, ईश्वर एवं सिद्धों को प्रणाम कर श्वास प्रश्वास को देखना, यदि उस समय सुषुम्ना चले तो मन एकाग्र करने में कोई कठिनाई नहीं होती इसलिये सुषुम्ना को चला लेना चाहिये; आसन जमाने के पश्चात् प्राणायाम करना है।

"तस्मिन् सतिश्वास प्रश्वासयोर्गति
विच्छेदः प्राणायामः"

"बाह्योभ्यन्तरस्तम्भ वृत्तिर्देश

कालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः" ।

महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार श्वास प्रश्वास गति विच्छेद का नाम प्राणायाम है, यह प्राणायाम वाह्य, अभ्यान्तर और स्तम्भवृत्ति है वह भी देश काल संख्या के द्वारा परिदृष्ट होकर दीर्घ और सूक्ष्म होता है, अतएव रेचक, वाह्यप्राणायाम, पूरक अभ्यान्तरिक और कुम्भकस्तम्भवृत्ति प्राणायाम कहलाता है अर्थात् यथाशक्य श्वास वाहर रोकना और यथासाध्य ऊपर खींचना और स्वशक्ति अनुसार कुम्भक करके रोक लेना प्राणायाम कहलाता है, इसमें पूरक करने से प्राण का हवन और रेचक करने से अपान का हवन होता है एवं कुम्भक द्वारा प्राण अपान को मिलाने से प्राणायाम परायण होना कहलाता है, यही यज्ञ मैंने गीता में कहा है।

प्राणायाम का फल

जब तुम्हारे प्राण अपान मिल जांय अर्थात कुंभक हो जाय तब मूलाधार में मन को लगाना, वहां पर आधार शक्ति कुंडलिनी सोई हुई है—इस प्रकार प्राण अपान के योग से वह आत्मशक्तिसहसा जाग उठेगी, उसका जागना ही तुम्हारे साधन का फल समझा जायगा, जब तक वह नहीं जागे तब तक तुम उसी तरह नियमित रूप से यज्ञ किया करो जब वह जाग जाय तब तुम को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, कुंडलिनी के जागने से चुपचाप आसन पर बैठने से ही वह शक्ति सब कुछ स्वयं करावेगी।

यज्ञ करते समय यदि तुम्हारा मन इधर उधर भागे तो शरीर में स्थित नाड़ियों में प्राण का संचरण देखना, इड़ा, पिंगला, सुपुम्ना–ये तीन नाड़ियां मुख्य कहलाती हैं, जिन में प्राण की गति देखी जा सकती है, और २ नाड़ियों में प्राण सूक्ष्म रूप से जाता अवश्य है परन्तु मन की स्थूलता के कारण अनुभव नहीं होता; वैसे तो शरीर में साढ़े तीन लक्ष नाड़ियां हैं जैसे पत्तों में सूक्ष्म अति सूक्ष्म शिरायें होती हैं इसी तरह तुम्हारे शरीर में ये सब नाड़ियां हैं साढ़े तीन लक्ष नाड़ियों में भी बहत्तर हजार में प्राण का संचरण होता है और २ नाड़ियों में शरीर का व्यापार नियमित न होने से प्राण जा नहीं सकता इसलिये शरीर एकसा नहीं रहता; योग शास्त्र कथित नाड़ी शुद्धि अर्थात् शरीर शुद्धि की क्रियायें की जांय तो समग्र नाड़ियों में प्राण संचरण हो सकता है, तब योगाभ्यासी का शरीर उसके वश में हो जाता है और साधक की इच्छा बिना उसका प्राण उसके शरीर को नहीं त्यागता–उसकी इच्छा मृत्यु होती है इस लिये तुम्हें उचित है कि यही लाभ करो ताकि मुझ से मिलने में बाधा न हो, यह शरीर विज्ञान का विषय मैंने तुम लोगों के कल्याणार्थ योग शास्त्र में कहा है।

देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बुनदप्रभम् ।
त्रिकोणं मनुष्याणां चतुरस्रं चतुष्पदाम् ॥
मण्डलंतुपतङ्गानां सत्यमेद्ब्रवीमिते ।
तन्मध्येतु शिखातन्वी सदातिष्ठतिपावके ॥

शरीर के मध्य में नाभिस्थान है और वहीं पर मैं वैश्वानर रूप से रहता हूँ, कुंभक प्राणायाम में तुम मुझे वहां जलता हुआ देखोगे, प्राणी मात्र में मैं हो अग्नि रूप से नाभिस्थान रह कर प्राण और अपान के संयोग से चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ देह के मध्य में तप्तकांचन के सदृश त्रिकोण अग्नि का स्थान है, वह मनुष्यों में त्रिकोण, पशुओं में चतुष्कोण और पक्षियों में वृत्ताकार होता है अतएव तुम मुझे कुंभक करके वहां तप्त सुवर्ण की नांई प्रकाशमान देखना।

मूलाधार से ही सब नाड़ियों की उत्पत्ति होती है-इसलिये इसको 'मूल-आधार' कहते हैं, यहां से कुछ नाड़ियां ऊपर और कुछ नीचे को विस्तृत होती हैं, मुझ से मिलने वाले को इस मूलाधार के पास आना पड़ता है, इसका रास्ता बन्द है-अन्तर में जाने का द्वार यही है-प्राण की सहायता से इसमें प्रवेश किया जाता है अतएव कुंभक करके तुम प्राण शक्ति को बढ़ा लोगे तो प्रबल प्राण प्रवाह से वह द्वार खुल जायगा, उसमें प्राण के साथ मन भी चला जायगा,-सो मेरुदण्ड-सुषुम्ना-में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र में होते हुए सहस्रार में आ पहुँचेगा, यह सहस्रदल-कमल वाला सहस्रार ही मेरा परम धाम है, यहां आया हुआ मनुष्य पुनः संसार में लौट नहीं सकता, यहां आते २ मार्ग में तुम्हें ऐसे २ अनुभव होंगे कि तुम आश्चर्य अति आश्चर्य स्तम्भित हो जाओगे और यहां का अनुभव जीवन भर लिखते रहने पर भी पूरा लिख नहीं सकोगे।

जहां स्वयं ईश्वर विराजते हैं वहां सदा सर्वदा आनन्द ही आनन्द वर्त्तता रहता है, उनके पथ में भी आनन्द की बहार रहती है; जब तुम्हारा मन प्रकृति की सीमा से कुछ आगे चलेगा तब तुम्हें हमारे प्रथम आनन्द का शब्द सुनाई देगा, यह अनाहत शब्द ध्वनि तुम्हारे कर्ण में होने लगे तो समझना कि तुम ठीक पथ पर चले आ रहे हो इन ध्वनियों की मधुरता में तुम्हारा मन निमग्न हो जायगा, तुम्हें अपना ज्ञान नहीं रहेगा, यह दिव्य ध्वनि सुनते ही तुम्हारे कर्णकपट खुल जांयगे, सब दिशायें तुम्हारा सत्कार करेंगी–दिव्य गंध का सौरभ तुमसे सहा नहीं जायगा, दिव्य ज्योति का प्रकाश तुम्हारी सुध बुध को हर लेगा, तुम जगत् में विद्युत् चंद्रार्क–प्रज्वलित अग्नि इत्यादि देखते हो वे इस महान् ज्योति का एक स्फुलिंग हैं. तुम्हें आश्चर्य होगा कि यह सब मुझसे बहुत दूर हैं तथापि तुम्हारे लिये तो यह दिव्य वस्तु महान् हैं, इसकी प्रभा से तुम अपने अस्तित्व को खो दोगे और यदि मुझ से मिल गये तो कहना ही क्या है।

जिससे सब प्रभा पाते हैं वही मैं हूं, मेरे सदृश ब्रह्माण्ड में और कौन है ? मैं ही स्वयं हूं ! तुम्हारा अभ्यास जैसे २ बढ़ता जायगा वैसे अनुभव भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक होते जायेंगे, तुम देखोगे कि कोटि २ ब्रह्माण्ड मैंने किस प्रकार धारण किये हुए हैं और उन्हें मैं कैसे चलाता हूं, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अन्तर में क्षण २ में देखोगे, इन सारे चमत्कारों से निवृत्त हो कर तुम जब प्रतिभा को प्राप्त होओगे तब मेरा सब कुछ जान

लोगे, मेरी महिमा का ऋषिभिर्बहुधागीतंछन्दोभिर्विविधैः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदैश्चैवहेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ऋषियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है, ब्रह्म सूत्र मेरा ही निर्देश करता है अतएव सर्व का प्रिय मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता हूं, तुम लोग मुझ से ही मिलो।

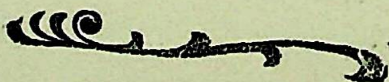
योग यज्ञ का बड़ा साधन 'प्राणायाम' है और हवन की सामग्री वासनाओं की तिलाञ्जली देना है अतएव इस यज्ञ का सहायक अनुष्ठान जब तुम नियमित रूप से करोगे तब आहार का संयम कर नित्य ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर श्रोत्र, चक्षु, रसनादि इन्द्रियों के विषयों को ब्रह्माग्नि में होमना आरंभ करोगे तो मैं तुम्हें मिले विना कैसे रह सकता हूँ, तुम्हारा नियमित हवन ही तुम्हारे ऊपर परमानन्द की वृष्टि करेगा, वैराग्य वृद्धि पावेगा, समाधि-उन्मनो लता का अंकुर उठेगा कल्प वृक्ष और कामधेनु सङ्कल्प मात्र से ही फल देंगे; इसी तरह इस यज्ञ के प्रभाव से सब कुछ सिद्ध कर सकोगे, जब तुम मरने को ही तय्यार हो जाओगे तो तुम्हारे लिये देवता भी दासत्व करने आवेंगे।

मनुष्य जन्म की महिमा

मनुष्य योनि की महिमा देवता भी गाते हैं, वे भी मनुष्य होना चाहते हैं-विना मनुष्य शरीर धारण किये मोक्ष नहीं होती इसलिये तुम्हारे शरीरों का देवता भी मान करते हैं; देखो मनुष्यो-जगत् में तुम्हारा भय सभी करते हैं, तुम से देवता भी

डरते हैं क्योंकि तपस्या के बल से तुम उनके पद को छीन सकते हो; तुम अपने बुद्धिवल से महाक्रूर व्याघ्र, सिंह आदि प्राण-घातक-हिंस्र जंतुओं कों भी वश में कर लेते हो, यहां तक कि भक्ति करके मुझे भीं सहज में ही पा सकते हो, तुम्हारी बुद्धि की महानता चारों ओर फैली हुई है-अतएव योग साधन करो।

यदि तुम लोग यही सोचते हो कि हम गृहस्थी हैं-क्या कर सकेंगे-तो हम कहते हैं कि सन्यास लेकर तुम सब ही कृतार्थ नहीं हो जाओगे; देखो-जगत में जोड़ी बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, मैं भी माया द्वारा ही यावतीय ब्रह्मांड का कार्य चलाता हूँ, तुम्हारे पुरुषा अट्ठासी हजार ऋषि थे-प्रायः सभी गृहस्थी थे और संसारी थे इने गिने कपिल, दत्तात्रेय, वामदेव, शुकदेव, जड़भरत इत्यादि सन्यासी थे-जो गृहस्थी नहीं हुए थे परन्तु और सब गृहस्थी थे, जिनको तुम महा ज्ञानी मानते हो उसी ज्ञानी वशिष्ठ मुनि के सौ पुत्र थे, महायोगी याज्ञवल्क के दो स्त्रियां थीं, इससे ही तुम्हें समझ लेना चाहिये कि संसार में विडंवना है तो वह अपने मन की है अतएव मन को योग साधना से अन्तर् मुख करो इसी में ही तुम्हारा मंगल है।



षष्ठ प्रकाश

श्रीमहेश्वर कथित महायोग

अतः परं प्रवक्ष्यामियोगं परमदुर्लभम् ।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् ॥
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाण सिद्धिदम् ॥
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः ॥
एक कालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च ।
ये युञ्जन्ति महायोगं ते विज्ञेया महेश्वराः ॥

अब श्री महेश्वर परमदुर्लभ महायोग को कहते हैं कि जिस से सूर्य सदृश स्वयं प्रकाशमान अपने आत्मस्वरूप ईश्वर को योगी लोग देखते हैं ऐसा महायोग रूप अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण कर्म रूप पाप पञ्जर को जला देता है और कर्म समूह दग्ध हो जाने से साक्षात् मोक्ष सिद्धि को देने वाला निर्मल ज्ञान महा-योग की साधना से प्रकट होता है, योगसाधना से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है वह ज्ञान योग के लक्ष्य रूप मोक्ष की प्राप्ति में सहायभूत होता है। अतएव जो साधक

ज्ञान और योग से युक्त हैं जिनमें योग और ज्ञान दोनों का शुभ योग हुआ है उनके प्रति श्री महेश्वर प्रसन्न होते हैं। इसलिये जो साधक दिन में एक वार दो बार अथवा तीन वार नित्य प्रति महायोग का अभ्यास करते हैं उनको महेश्वर रूप जानना चाहिये।

योगस्तु द्विविधोज्ञेयो ह्यभावः प्रथमो मतः।
अपरस्तु महायोगः सर्व योगोत्तमोत्तमः॥
शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते।
अभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति॥
यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दंनिरञ्जनम्।
मयैक्यं स महायोगो भाषितः परमः स्वयम्॥

यह योग दो प्रकार का है—पहिला अभावयोग औ दूसरा सव योगों में उत्तम से भी उत्तम श्रेष्ठ सर्व महायोग है, जिस योग में शून्य और वेदान्त कथित सर्व प्रकार से निराभास स्वरूप का चिन्तन किया जाता है अर्थात् आत्मा को निर्गुण शून्य मान के ध्यान द्वारा जिस योग से साक्षात्कार होता है उसको अभाव योग कहते हैं और जिस योग में योगी लोग आत्मा को नित्यानन्द स्वरूप निरञ्जन ध्यान द्वारा देखते हैं एवं समाधि में मेरे साथ एकता लाभ करते हैं वह दूसरा परम श्रेष्ठ महायोग मैंने स्वयं कहा है।

ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थ विस्तरे।

सर्वे ते ब्रह्म योगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
यत्र साक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम् ।
सर्वेषामेव योगानां सयोगः परमो मतः ॥
सहस्रशोऽथ बहुशो ये चेश्वरबहिष्कृताः ।
नते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः ॥

परन्तु और जो दूसरे योग तुम्हारे लिये योगियों ने कहे हैं वे विस्तार से ग्रन्थों में सुने जाते हैं, वे योग हमारे ब्रह्म योग की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं क्योंकि वे योग तो योगियों ने कहे हैं परन्तु महायोग तो मैंने स्वयं कहा है इसलिये वे योग महायोग के तुल्य नहीं हो सकते अतएव जिस योग में जीवनमुक्त योगी जन अखिल विश्व एवं ईश्वर को साक्षात् देखते हैं ऐसे परम पावन महायोग के प्रभाव से ब्रह्माण्ड के यावतीय तत्त्व यथातथ्य जाने जाते हैं जिसमें कुछ भी अज्ञेय नहीं रहता, इसलिये तुम्हारे जितने भी योग हैं उन सब में हमारा कहा हुआ महायोग ही सर्वोत्तम है जो ईश्वर से मिलाता है, तुम्हारे हजारों और बहुत से जो योग हैं वे सब ईश्वर से बहिष्कृत हैं उनसे तुम ईश्वर में नहीं मिल सकते, इसलिये उनकी साधना करने वाले योगी मुझको नहीं देख सकते हैं अतएव केवल महायोग से ही तुम हमसे मिल सकोगे।

एषः पाशुपतोयोगः पशुपाशविमुक्तये ।
सर्व वेदान्त सारोऽयं यत्याश्रम इति श्रुतिः ॥

एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम् ।
द्विजातीनां तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम् ॥

मेरा कहा हुआ यह पाशुपत महायोग का ज्ञान जीव के बन्धनों को छुड़ाने के लिये है और यही सम्पूर्ण वेदान्त का सार तथा यतियों का आश्रय है ऐसा वेद का कथन है, इसलिये यह परम श्रेष्ठ गोपनीय मेरे योग का ज्ञान मेरी सायुज्य मुक्ति प्रदान करता है, अतएव यह महायोग मैंने द्विजातियों के लिये तथा अपने भक्त और ब्रह्मचारियों के लिये कहा है ।

महा योग की परंपरा ।

इत्येतदुक्त्वा भगवानात्मयोगमनुत्तमम् ।
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम् ॥
मयैतद्भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम् ।
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम् ॥
उक्त्वैमथ योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानजः ।
हिताय सर्वं भक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ॥
भवन्तोऽपिमज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम् ।
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम् ॥

यह परम पावन सर्वोत्तम महायोग श्री महेश्वर ने भगवान् नारायण को देकर कहा कि यह आत्म योग मैंने ब्रह्मवादियों के लिये कहा है इसलिये शान्त चित्त वाले शिष्यों को देना चाहिये;

श्री महेश्वर से महायोग प्राप्त होने पर अजन्मा भगवान् नारायण अपने पास बैठे हुए सब योगीन्द्रों को बोले कि हे द्विज श्रेष्ट महर्षि गण ! मेरे कहने से आप लोग भी सब का हित करने वाला यह महेश्वर कथित महायोग का मेरा ज्ञान द्विजाति भक्तों को तथा अपने सब शिष्यों को विधि पूर्वक उपदेश करना।

अयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशयः ।
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम् ॥
ममैषा परमामूर्तिर्नारायणसमाह्वया ।
सर्व भूतात्मभूता सा शान्ता साक्षरसंस्थिता ॥
ये ऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ।
न ते मुक्तिं प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः ॥

भगवान् महा विष्णु ने सब ऋषि मुनियों को महायोग प्रचार के लिये कह दिया तब श्री महेश्वर सब योगी ऋषि मुनियों से बोले कि जो नारायण हैं वही ईश्वर शिव हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है इसलिये जो इनमें भेद नहीं देखते उनको यह परम श्रेष्ठ महायोग देना चाहिये क्योंकि नारायण नाम वाली यह परमा-मूर्त्ति मेरी ही है जो सब प्राणियों में स्थित, सबके आत्मस्वरूप और अक्षर शान्त रूप है इसलिये जो लोग भेद बुद्धि से शिव और नारायण को पृथक् वा दो रूप देखते हैं उनकी मुक्ति नहीं हो सकती, वे लोग बार २ जन्म लेते और मरते हैं उनको योग का ज्ञान नहीं देना चाहिये।

ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं माञ्चदेवं महेश्वरम् ।
एकी भावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ॥
तस्मादनादि निधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च ॥
येऽन्यथा सम्प्रपश्यन्ति मद्भिन्नं देवतान्तरम् ।
तेयान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषुव्यवस्थितः ॥

परन्तु जो लोग अव्यक्त विष्णु और महादेव महेश्वर को एक भाव से अर्थात् एक ही रूप से देखते हैं उनको महायोग का ज्ञान देना चाहिये फिर उनका पुनर्जन्म नहीं होता उनकी मुक्ति होजाती है, इसलिये अविनाशी, अनादि, अव्यय आत्म-स्वरूप विष्णु मुझको ही समझ कर देखना और पूजना चाहिये, जो लोग इस तरह न समझ कर अन्यथा भेद बुद्धि रखकर मुझसे दूसरे भिन्न देवताओं को देखते हैं वे घोर नरक में जाते हैं चाहे वे मेरे भक्त क्यों न हों, तथापि मैं उनसे अलग हूं उनका दायित्व मैं नहीं लेता ।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ।
मोचयामिश्वपाकं वा नारायणविचिन्तकम् ॥
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः ।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै ॥

श्री महेश्वर भगवान् नारायण के प्रति प्रेम पूर्वक कहते हैं

कि आपका भक्त चाहे मूर्ख हो वा पंडित हो, ब्राह्मण हो या मेरा आश्रय वाला हो या महानीच श्वपच क्यों न हो तथापि यदि वह विशेष करके आप नारायण का चिन्तन करने वाला है तो मैं उसका उद्धार कर दूंगा, इसलिये जो कोई मेरे भक्त मुझे प्रसन्न करना चाहें तो वे मेरी प्रीति बढ़ाने के लिये आप महायोगी पुरुषोत्तम का अर्चनवन्दन करें, आपकी भक्ति करने वालों पर ही मैं प्रसन्न हूंगा आपसे विमुख पर नहीं।

एवमुक्त्वा वासुदेवमालिङ्ग्य स पिनाकधृक्।
अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्॥
नारायणोऽपि भगवांस्तापसंवेषमुत्तमम्।
जग्राहयोगिनः सर्वां स्त्यक्त्वा वैपरमं वपुः॥
ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात् परमेष्ठिनः।
साक्षादेव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम्॥
गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः।
प्रवर्त्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः॥

ऐसा कहकर पिनाकधारी शङ्कर भगवान् वासुदेव को दिव्यालिङ्गन करके सब ब्रह्मादिदेव ऋषि महर्षि तथा सनकादि योगीन्द्रों के सामने सबके देखते २ अन्तर्धान हो गये; उसके बाद भगवान् नारायण ने दिव्य शरीर को त्याग कर तपस्वी का सुन्दर और उत्तम वेष धारण किया और सब योगियों से बोले कि आप

लोगों ने परमेष्ठि की कृपा से साक्षात् देवाधिदेव महादेव का ज्ञान जो कि संसार बन्धन का नाश करने वाला है अच्छी तरह जान लिया है इसलिये हे मुनीश्वरो! अब तुम लोग निश्चिन्त हो कर जाओ और परमेष्ठि का विज्ञान धर्मात्मा शिष्यों में प्रचार करो।

इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकाय ।
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः ॥
एव मुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ।
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ॥
ऋषयस्तेऽपिदेवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
नारायणं च भूतादिं स्वानिस्थानानि भेजिरे ॥

और धर्मात्माओं में भी भक्त शान्त अग्निहोत्री तथा विशेष करके ब्राह्मणों को यह ईश्वर सम्वन्धी विज्ञान देना चाहिये, ऐसा कहकर योगियों में सर्वोत्तम योग जानने वाले भगवान् विश्वात्मा महायोगो नारायण अन्तर्धान हो गये, इसके वाद सब ऋषिजन भी देवाधिदेव महेश्वर तथा प्राणियों के आदि नारायण को नमस्कार करके अपने अपने स्थानों को चले गये।

सनत्कुमारो भगवान् संवर्त्ताय महामुनिः ।
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रमाययौ ॥
सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये ।

प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः ॥
अङ्गिरा वेदविदुषे भारद्वाजायदत्तवान् ।
जैगीषव्यायकपिलस्तथा पञ्चशिखाय च ॥

पश्चात् महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने यह महायोग का ईश्वर संबन्धि ज्ञान सम्वर्त को दिया और वह भी अनुभव को प्राप्त हुए, ऐसे ही योगीन्द्र सनन्दन ने महेश्वर के महायोग का ज्ञान महर्षि पुलह को दिया और इसी तरह प्रजापति पुलह ने भी गौतम ऋषि को दिया और अङ्गिरा ऋषि ने वेद के जानने वाले भारद्वाज ऋषि को दिया एवं यही ज्ञान योगीराट् सिद्ध कपिल मुनि ने जैगीषव्य योगी को और पञ्चशिखाचार्य को दिया।

पराशरोऽपि सनकात् पिता मे सर्वतत्त्वदृक् ।
लेभेतत्परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान् ॥
मामुवाच पुरादेवः सतीदेह भवाङ्गजः ।
वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक् ॥
नारायणोऽपि भगवान् देवकीतनयो हरिः ।
अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम् ॥

भगवान् वेदव्यास कहते हैं कि इसी तरह श्री महेश्वर कथित महायोग का ज्ञान सब ऋषि मुनियों ने आपस में कहा सुना एवं लिया दिया, सो सर्व तत्त्वों को जानने वाले मेरे पिता पराशर ऋषि को भी यह परम ज्ञान योगीन्द्र भगवान् सनक

मुनि से मिला और उनसे वाल्मीकि ऋषि ने प्राप्त किया; पहिले यह महायोग का परम ज्ञान शिवजी के तेज से एवं सती के देह से प्रकट हुए पिनाकधारी रुद्ररुप महायोगी भगवान् वामदेव ने मुझसे कहा; भगवान् नारायण देवकीपुत्र श्री कृष्ण ने भी स्वयं साक्षात् इसी महायोग का परम श्रेष्ठ ज्ञान अर्जुन को दिया, इसी तरह ब्रह्मा विष्णु महेश्वर आदि की परम्परा से यह महायोग चला आता है।

यदाहंलब्धवानुरुद्राद्वामदेवादनुत्तमम् ।
विशेषाद्गिरीशे भक्तिस्तस्मादारभ्यमेऽभवत् ॥
शरण्यं शरणंरुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः ।
भूतेशं गिरीशं स्थाणुदेवदेवं त्रिशूलिनम् ॥
भवन्तोऽपिहितं देवं शम्भुं वृषभवाहनम् ।
प्रपद्यन्तां सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम् ॥
वर्तध्वंतत्प्रसादेन कर्मयोगेन शङ्करम् ।
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम् ॥

भगवान् वेदव्यास कहते हैं कि जब से मैंने रुद्र वामदेव से इस महायोग के उत्तम ज्ञान को पाया है तभी से श्री शङ्कर में मेरी विशेष करके भक्ति हुई है, शरणागत को शरण देने वाले भूतेश गिरीश स्थाणु त्रिशूली देवाधिदेव महेश्वर की मैं विशेष करके शरण में हूँ इसलिये हे मुनीश्वरो! आप लोग भी अपने

स्त्री पुत्र कुटुम्ब सहित श्री शम्भु वृषभवाहन शिवजी की शरण जाइये और कर्म योग से महादेव पशुपति नाथ नाग भूषण का ही पूजन करिये, श्री शङ्कर के ही कृपाप्रसाद से आप लोगों का अवश्य कल्याण होगा।

एवमुक्ते पुनस्तेतु सौनकाद्या महेश्वरम् ।
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम् ॥
भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे ।
इदानीं जायते भक्तिर्यादेवैरपिदुर्लभा ॥

ऐसा कहने पर फिर वे सौनक आदि ऋषियों ने सत्यवती के पुत्र शाश्वत स्थाणु श्री व्यासजी को प्रणाम किया और प्रसन्न चित्त होकर वे प्रभु कृष्णद्वैपायन व्यास जी से, जो साक्षात् हृषीकेश भगवान् के तुल्य हैं और लोकों के महेश्वर शिवजी के सदृश हैं, कहने लगे कि हे भगवन्! आप के प्रसाद से हमको शरणागत वत्सल वृषभध्वज शिवजी में अब ऐसी अचलभक्ति हुई है कि जो देवताओं को भी दुर्लभ है। इस प्रकार ऊपर कहे हुवे महायोग की परंपरा का वर्णन तथा ब्रह्मा विष्णु महेश्वर एवं ऋषि महर्षि योगीन्द्र सिद्धों में ज्ञान प्रचार का संवाद श्री वेद व्यासजी से सुनकर सौनक आदि ऋषि सब अति प्रसन्न हुवे और अचल दृढ़ भक्ति से महायोग द्वारा शिवजी की आराधना करने लगे।

शैव पाशुपत धर्म

ज्ञानं क्रिया च चर्य्या च योगश्चेति सुरेश्वरि ।
चतुष्पादः समाख्यातो ममधर्मः सनातनः ।।
पशुपाशपतिज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते ।
षडध्वशुद्धिर्विधिना गुर्व्वाधीनक्रियोच्यते ।।
वर्णाश्रम विहितस्तु मेऽर्चनादि चर्योच्यते ।
मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यावस्थितचेतसः ।
वृत्त्यन्तरनिरोधो योग इत्यभिधीयते ।।

जिस पाशुपत महायोग का ज्ञान परमयोगेश्वर श्री महेश्वर ने योगीश्वर भगवान् श्री महाविष्णु को कहा और महायोगी श्री विष्णु भगवान् ने सनक कपिल आदि योगियों को कहा और उन्होंने दूसरे ऋषि मुनियों को उपदेश किया, उस परंपरागत पाशुपत महायोग साधन के लिये साधकों को श्री महेश्वर कथित चतुष्पाद सनातन शैव धर्म का आचरण करना चाहिये । इसके ज्ञान, चर्या, क्रिया, और योग चार पाद हैं ।

चर्या—शास्त्र विहित वर्णाश्रमों के धर्म, देव पूजन अर्चन की विधि तथा भिन्न २ आचार जिनके अनुसार जन साधारण अपनी २ दिनचर्या का आचरण करते हैं उसका नाम चर्या है । जीवन के विशेष समय में मनुष्य सदा अपने योगक्षेम के अर्थ अथवा लोक संग्रह के लिये सांसारिक प्रवृत्ति में लगे रहते हैं

और आजीवन उससे निवृत्ति परायण नहीं होने पाते। जीवन के इस समय को ही वे सब कुछ समझ बैठते हैं और इसके पार उनके लक्ष्य में उनको और कुछ नहीं दिखाई पड़ता। इसी को जीवन का ध्येय समझ कर मरण पर्य्यन्त वे भारवाही की नाईं जुते रहते हैं। ताकि मनुष्य व्यवहार कुशल होते हुवे, ईश्वर में भक्ति पूर्वक देव परायण होकर सब दैनिक व्यवहारों को वैराग्य-युक्त यथाविधि संपादन करके ज्ञान और योग की ओर प्रवृत्त हो सकें, ऋषियों ने वर्णाश्रम धर्म के नियम और भगवद्भक्ति तथा देवार्चन पूजन की विधि का विधान किया है। सनातन धर्म का यह प्रथम चर्यापाद मुख्य अंग है, इसको आचार धर्म भी कहते हैं।

क्रिया और योग—वास्तव में मनुष्य जन्म का ध्येय ज्ञान संपादन करके मोक्ष की प्राप्ति करना है। लोक संग्रह करता हुवा भी मनुष्य यदि कुछ समय प्रति दिन क्रिया और योग में लगाता रहता है तो उसको ज्ञान की प्राप्ति यथा समय स्वयं हो जाती है। 'तत्स्वयं योग संसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति' अर्थात् वह ज्ञान स्वयं योग की पूर्ण सिद्धि के द्वारा यथा समय अपने अन्तरात्मा में ही प्राप्त होता है। क्रिया और योग दोनों सहयोगी हैं, पहिले क्रिया फिर योग का साधन किया जाता है क्रिया की सहायता से योग की सिद्धि होती है। वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'

श्री महेश्वर कहते हैं मेरे कहे हुवे मार्ग से मुझ में चित्त

लगाकर अन्य वृत्तियों के सर्वथा रोकने को योग कहते हैं। योग की सिद्धि के लिये क्रिया का अभ्यास करना आवश्यक है।

षट् चक्रों की शुद्धि करने की विधि के द्वारा गुरु के आधीन रह कर उसके शासनानुकूल अभ्यास करने को क्रिया कहते हैं। क्रिया के द्वारा ही छःवों चक्रों की शुद्धि होती है और क्रिया का अभ्यास गुरू कृपा के बिना किसो अन्य उपाय से नहीं मिल सकता, इसलिये गुरु की कृपा लाभ करनी आवश्यक है। गुरु कृपा से क्रिया और क्रिया द्वारा षडध्व शुद्धि और फिर योग की प्राप्ति होती है।

ज्ञान—ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होती, इसलिये ज्ञान क्या है यह जानना चाहिये। पाशुपत महायोग के मतानुसार (१) जीव (२) उसके बंधन रूपी पाश और (३) पाशों से मुक्त होने का उपाय तीनों पशु, पाश और पति के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। घृणा, लज्जा, भय, शोक, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति ये आठ पाश हैं, इन से बंधा हुवा जीव पशु कहलाता है और इन से मुक्त हो कर स्वयं शिव हो जाता है। परंब्रह्म शिव को इसो अभिप्राय से पशुपति कहते हैं। यह जीव ब्रह्म का ज्ञान मोक्ष प्रद है और चर्या क्रिया और योग तीनों के सहयोग से ज्ञान के प्रकाश का अनुभव होता है और ज्ञानाग्नि में आठों पाश भस्म हो जाते हैं जिनकी शुद्ध भस्म से विभूषित जीव कान्तिमान् शिवस्वरूप होकर शिवानन्द का अनुभव करने लगता है।

पाशुपत महायोग द्वारा ज्ञान प्राप्ति

ज्ञान और उसके प्राप्त्यर्थ क्रिया और योग का साधन क्रम

महायोग कहलाता है। यह महायोग विना श्री महेश्वर की अनुकम्पा तथा शिवस्वरूप श्रीगुरु की महान् कृपा के उपलब्ध नहीं होता। हृदयस्थ शिवजी की प्रेरणा से जब गुरु प्रसन्न होकर शक्तिपात द्वारा शिष्य पर कृपा करते हैं तब उसमें महायोग का संचार होता है अन्यथा नहीं।

वृथा परिश्रमस्तस्य निरयवैव केवलम् ।
शक्ति पात समायोगादृते तत्त्वानि तत्त्वतः ।
तद्व्याप्तिस्तद्विशुद्धिश्च ज्ञातुमेव न शक्यते ॥

बिना शक्ति पात के शिष्य का सारा परिश्रम वृथा ही केवल नहीं के बराबर है क्योंकि तत्त्वों का तत्त्वतः ज्ञान बिना शक्ति पात के कभी नहीं हो सकता और उस परब्रह्म की सर्वव्यापकता का अनुभवगम्य ज्ञान जो पांचों तत्त्वों की शुद्धि होने से ही होना सम्भव है प्राप्त नहीं किया जा सकता। पांचों तत्त्वों की शुद्धि करने के लिये निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, और शान्त्यतीत इन पांच प्रकार की अवस्थाओं का मन में उदय होना आवश्यक है और विद्या के उदय होने पर आनन्दकन्द भगवान् के आनन्द परमानन्द, प्रबोध, चिदुदय और प्रकाश इन पांच स्वरूपों के ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ता है। मोक्ष प्राप्ति के पूर्व ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान ऊपर कहे विस्तार से साधकों को साक्षात् अनुभव में आना चाहिये। जब तक परमात्मा के उक्त गुणों को ग्रहण करने का समधर्मीपना चित्त में नहीं आता तब तक कोई साधक

सिद्धि लाभ नहीं कर सकता केवल शाब्दिक ज्ञान का कि मैं ब्रह्म हूं मुख से उच्चारणमात्र करने से मोक्ष नहीं होता। वरन् भिन्न २ भूमिकाओं में से चित्त की गति चढ़कर परब्रह्म परमेश्वर का साक्षात्कार होने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है।

तत्त्व शुद्धि

प्रापिका व्यापिका शक्तिः पंचतत्त्व विशोधनात्।
निवृत्त्या रुद्रपर्यन्ता स्थितिरण्डस्य शोध्यते ॥
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वन्तु यावदव्यक्तगोचरम्।
तदूर्ध्वं विद्यया मध्ये यावद्विद्येश्वरावधि ॥
शान्त्या तदूर्ध्वमध्वान्ते विशुद्धि शान्त्यतीतया।
यमाहुः परमं व्योम परप्रकृतियोगतः ॥

ईश्वर की सर्व व्यापिका शक्ति का अनुभव पंच तत्त्व की शुद्धि से होता है। इसलिये पहिले निवृत्ति द्वारा शरीर की रुद्र-तत्त्व पर्य्यन्त शुद्धि होती है अर्थात् सृष्टि स्थिति और संहार शक्तियों का सम्बन्ध जहां तक स्थूल शरीर से है वहां तक को शुद्धि निवृत्ति धारण करने से हो जाती है क्योंकि उसमें आत्म तत्त्व की छाया वैराग्य की प्रभा के रूप में चमकने लगतो है। तत्पश्चात् उसमें दृढ़ता होने पर ऊपर जहां तक अव्यक्त इन्द्रियों की पहुँच है वहां तक अर्थात् सूक्ष्म शरीर तक को प्रतिष्ठा से शुद्धि होती है। और उसके ऊपर जहां तक विद्या तत्त्व और

ईश्वर तत्त्व को अवधि है उन दोनों के मध्य में विद्याके उदय से शुद्धि होती है और तब क्रमशः प्रकाश चिदुदय, प्रबोध, परमानन्द और आनन्द का उत्तरोत्तर विकास होता है। इसके ऊपर षडध्व के अन्त में शुद्धि शान्ति के उदय होने पर होती है। और उसके ऊपर प्रकृति की सीमा तक जिसको परमाकाश भी कहते हैं शान्त्यतीत अवस्था के उदय होने पर होती है। इस प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार, महत्तत्त्व तथा अव्यक्त प्रकृति की ज्यों २ शुद्धि होती जाती है उतना ही पूर्ण ब्रह्म भाव विकसित होता जाता है।

धारणाज, ध्यानज और समाधिज प्रज्ञा

निवृत्ति के उदय होने पर जो प्रतिभा मन बुद्धि पर प्रकाशित होती है वह धारणाज प्रज्ञा के उदय की सूचक कही जा सकती है प्रतिष्ठा में उसकी प्रतिष्ठा और विद्योत्पत्ति में परमात्मतत्त्व के उदय के साथ ध्यानज प्रज्ञा का उदय समझना चाहिये। और शान्ति तथा आनन्द के उदय होने पर समाधिज प्रज्ञा आती है।

विद्योत्पत्ति

विद्योत्पत्ति स्तदानीन्तु कथ्यते शृणु यत्नतः।
आनन्दः परमात्मेति परमानन्द एकतः॥
प्रबोधः परमानन्द श्चित्तोत्पत्तिप्रबोधकाः।
चिदुदयः प्रकाशश्च एषां पंच तथैव च॥

अब विद्योत्पत्ति के उदय होने की पांच अवस्थाओं का वर्णन किया जाता है जिनको अच्छी तरह समझने का यत्न करना चाहिये यह विषय अति सूक्ष्म और गूढ़ है बिना अनुभव समझ में आना कठिन है। (१) आनन्दानुभव-ब्रह्म स्थिति (२) परमानन्द स्वरूप परमात्मा का अनुभव (३) परमानन्द सहित चित्तोत्पत्ति का प्रबोधक, प्रबोध (४) चिदुदय (५) और प्रकाश, ये पांचों पांच २ गुण वाले हैं।

अविनाश्यत्वयोऽभेदोह्यदाह्योऽस्वाद्य एव च।
एते पंच गुणाः प्रोक्ता आनन्दे पुरवैरिणा ॥
किरण स्फुर्ति विस्फुर्ति हर्ष सत्परमात्मनः।
विचारश्च प्रभोल्लासविभवश्च लयस्तथा ॥
प्रबोधस्य गुणाः पंच कीर्त्यन्ते तेन हेतवे।
अभ्यास कर्तृक मनाः सर्वं तत्त्वप्रभा तथा ॥
चिदुदयस्य पंचेति गुणा ज्ञेया विशेषतः।
बोधनं समयत्वञ्च विस्मृतिः सकला प्रभा ॥
प्रकाशस्य गुणाः पंच चैते ज्ञानकराः शुभाः ॥

समाधि का जब अनुभव होना आरंभ हो जाता है तब साधक को उस पद के अनुभवों में तारतम्यता रहती है और इस कारण से उसको बहुधा यह समझना अति कठिन होता है कि वास्तव में वह ज्ञानका अनुभव कर रहा है या नहीं। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि ज्ञान का अनुभव करते रहने पर भी साधक उसको

ज्ञान का रूप नहीं समझता। इसलिये उसपद के अनुभवों की तारतम्यता के अनुसार प्रकाश, चिदुदय, प्रबोध, परमात्म, आनन्द, परंपद अथवा तत्पद, परं शून्य और निरञ्जन नामों से वर्णन किया जाता है। यहां पर इन सब अवस्थाओं के पांच २ लक्षण कह कर इन की व्याख्या की गई हैं ताकि साधक अपने २ अनुभवों का उक्त लक्षणों से मिलान करके समझ सकें कि वे किस स्थिति में हैं। बोधन, समयत्व, विस्मृति, सकला, और प्रभा ये पांच लक्षणों युक्त भाव जिस अवस्था में रहता है उसको प्रकाश कहते हैं अर्थात् तब प्रभा, कला, और समय का भास रहते हुवे भी इन्द्रिय ज्ञान तथा विकल्पों की विस्मृति हो जाती है और चित्त लय सा होने लगता है। और फिर चिदुदय होता है तब अभ्यास, कर्तृत्व, मन, तत्व और प्रभा का ज्ञान हो उठता है। अर्थात् साधक के मन में यह ज्ञान होता है कि मैं अभ्यास कर रहा हूँ। वह प्रकाश में अनुभूत तत्व और प्रभा का उस समय अनुभव अपने मन द्वारा करता है। ये दोनों चित्त के लय और उदय की अवस्थायें हैं जो वारो २ से क्रम वार एक दूसरो के पीछे आती रहती हैं। इससे धारणाज प्रज्ञा उत्पन्न होती है, जिस अवस्था में प्रभा, विचार, उल्लास, लय और अविभव पांचों का कभी किसी कभी किसी का अनुभव होता है उसको प्रबोध की अवस्था कहते हैं। किरण, स्फुर्ति, विस्फुर्ति, हर्ष और केवल सत्व के भाव परमानन्द स्वरूप परमात्मतत्व के अनुभव में होते हैं। यहां पर ध्यानज प्रज्ञा होती है, तत्पश्चात् आनन्दमय

ब्रह्म की स्थिति में विनाश, क्षय, भेदबुद्धि, दाह अर्थात् चित्त के संताप तथा स्वादादि इन्द्रिय ज्ञान का अभाव हो जाता है। इससे समाधिज प्रज्ञा अथवा ऋतंभरा प्रज्ञा उत्पन्न होती है। उपरोक्त अन्तिम अनुभव में अव्यक्त केवल आनन्द रूप पद की स्थिति समझनी चाहिये, क्योंकि इस स्थिति में सुखदुःखादि इन्द्रिय द्वंद्व और मानसिक त्रिताप नहीं रहते। यह ही आनन्द का लक्षण है।

अव्यक्तन्तु परं तत्त्वं तन्नित्यंवर्तते सदा ।
एको नाम पुमानस्ति तस्मात्परञ्च तत्पदम् ।।
तस्मात्तु परमं शून्यं तस्मात्तत्तु निरञ्जनम् ।
निर्गुणत्वं निर्मलत्वं परिपूर्णत्वमेव च ।।
व्यापकत्वं कैवलत्वमानन्दस्य गुणा इमे ।
निराकरंच नित्यत्वं निजतत्वं निरञ्जनम् ।।
निर्निकेतनता चेति तत्पदस्येति लक्षणाः ।
लीनता शीर्णता मूर्च्छा मोहो मण्डलता चेति ।।
गुणः पुंसः समाख्याताः शून्यस्य परमस्य वै ।
स्वभावं सत्वजं सत्यं शान्तिः शान्तिस्वरूपतः ।
निरञ्जनस्यगुणाः पञ्चैतज्ज्ञानी महेश्वरः ।।

अव्यक्त परंतत्त्व है यह प्रकृति का अव्यक्त स्वरूप है। वह सदा नित्य एक समान सत् रूप रहता है। उसके परे एक परं

पुरुष ही है जिसकी तत्पद, परं शून्य और निरञ्जन नामों से व्याख्या की गई है।

आनन्द का भाव अव्यक्त तक अनुभवगम्य है, वह निर्गुण, निर्मल, परिपूर्ण, व्यापक और केवल आनन्दमय इन पांच लक्षणों से युक्त समझना चाहिये। निराकार, नित्य, निजस्वरूप, निरञ्जन और निकेतन रहित अर्थात् स्थान (space) रहित होना तत्पद का अनुभव है। इस समाधि की अवस्था में समय, स्थान, आकार और परिणाम शीलता का अनुभव नहीं रहता। परम शून्य अवस्था में लीनता, शीर्णता, मूर्च्छा, मोह और मंडलता का भाव रहता है। और अपने भाव में स्थिति, सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाली गुणातीतता, सत्त्व, शान्ति और मूर्तिमान् शान्ति स्वरूप अर्थात निरतिशय शान्तिघन स्वरूपता निरञ्जन भाव के द्योतक लक्षण हैं इन अवस्थाओं का जिस साधक को अनुभव हुआ है वह ज्ञानी साक्षात् महेश्वर ही है।



सप्तम प्रकाश

योग साधन से प्राप्त आत्म ज्ञान दो प्रकार का है, योग और ज्ञान का अर्थ विज्ञान है।

ज्ञान विज्ञान संसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानी प्रियतमोऽतोमेज्ञानेनासौबिभर्तिमाम् ।।
तस्माज्ज्ञानेन सहितंज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञान विज्ञान संपन्नो भजमां भक्ति भावतः ।।
ज्ञान विज्ञान यज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ।
सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ।।

ज्ञान और विज्ञान से कृतार्थ हुए सिद्ध पुरुष मेरे श्रेष्ठ परम पद को जानते हैं इस लिये ज्ञानी महात्मा मुझे अतीव प्रिय हैं क्योंकि वे निरन्तर ज्ञान द्वारा मेरे में ही लगे रहते हैं, अतएव ज्ञान सहित अपने आत्म स्वरूप को जानकर तुम भी ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न होकर भक्ति पूर्वक मेरा भजन करो क्योंकि ज्ञान विज्ञान रूप यज्ञ के द्वारा ही मुझ यज्ञपति को मुनियों ने अपने में आत्म रूप से प्राप्त किया है।

ज्ञान विज्ञान संयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ।
आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ।।

तपस्तीर्थजपोदानं पवित्राणीतराणि च।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञान कलयाकृता ॥

इस प्रकार ज्ञान और विज्ञान से युक्त होने पर तुम समस्त देह धारियों के आत्म रूप हो जाओगे तथा आत्मानुभव से ही सन्तुष्ट होने के कारण किसी विघ्न से बाधित नहीं होओगे क्योंकि तत्त्व ज्ञान के एक अंश मात्र से जो सिद्धि होती है वह जप, तप, तीर्थ, व्रत, दान, इत्यादि और किसी भी पवित्र कार्य करने से नहीं होती अतएव इस ज्ञान प्राप्ति के लिये ही तुम्हें योग साधन करना है।

योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे।
ज्ञानेनैव विना योगो न सिध्यति कदाचन ॥
तस्माज्ज्ञानञ्च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।
जन्मान्तरैश्च बहुभिर्योगो ज्ञानेन लभ्यते ॥
ज्ञानंतु जन्मनैकेन योगादेव प्रजायते।
तस्माद्योगात्परतरो नास्ति मार्गस्तु मोक्षदः ॥

योग साधन से प्राप्त आत्म ज्ञान कहा जाता है जिसके प्रभाव से तुम आनन्द रुप हो जाओगे, जन्म और मृत्यु से छुड़ाने वाला ज्ञान सामान्य और विशेष दो प्रकार का है साधारणतः शास्त्र द्वारा तुम मेरे ज्ञान का जो निश्चय करते हो वह शास्त्र सिद्ध परोक्ष ज्ञान कहलाता है, और तपस्या योग

साधन करके तुम जो अनुभव करोगे वह साधन सिद्ध अपरोक्ष विज्ञान कहलाता है। इस विशेष ज्ञान के लिये ही तुम्हें योग साधन करना होगा, क्योंकि योग से रहित ज्ञान मोक्षदायक नहीं होता और बिना ज्ञान के योग की सिद्धि नहीं होती, ज्ञान का अर्थ है जानना और योग का अर्थ है मिलना अतएव जब तक ज्ञान से जानोगे नहीं तब तक योग से नहीं मिल सकोगे और जब तक योग से मिलोगे नहीं तब तक ज्ञान से जान भी नहीं सकोगे, इसलिये योग साधन और ज्ञान साधन दोनों को तुम पृथक नहीं कर सकते। योग हीन ज्ञान जैसे मोक्ष नहीं दे सकता है तैसे ही योग भी बिना ज्ञान के मोक्ष देने में समर्थ नहीं है, इसलिये यदि तुम योग और ज्ञान दोनों में से किसी एक का भी आश्रय छोड़ दोगे तो हमसे नहीं मिल सकोगे, हमसे मिलने की इच्छा वाले तुम्हें यथा विधि ज्ञान और योग साधन दोनों का अनुष्ठान करना चाहिये।

प्रविचार्य चिरं ज्ञानं मुक्तोऽहमिति मन्यते।
किमसौ मननादेव मुक्तो भवति तत्क्षणात्॥
पश्चाज्जन्मान्तरशतैर्योगादेव विमुच्यते।
न तथा भवतो योगाज्जन्म मृत्युः पुनः पुनः॥
प्राणापान समायोगाच्चन्द्रसूर्यैकता भवेत्।
सप्त धातुमयं देहमग्निना रञ्जयेद्ध्रुवम्॥

केवल ज्ञान मात्र का अभ्यास करने से अनेक जन्म के पश्चात् योग की प्राप्ति होती है परन्तु योग से तो एक ही जन्म में

ज्ञान हो जाता है इसलिये मोक्ष देने वाले योग को छोड़कर और कोई मार्ग नहीं है। यदि चिरकाल तक ज्ञान का विचार करके कोई ऐसा मान लेवे कि मैं मुक्त हूं, योग साधन न करके विचार मात्र से क्या उस समय वह मुक्त हो सकता है? इसलिये पहिले ही कहा गया है कि विना योग से ज्ञान कदापि नहीं होता, अतएव मन से ऐसा मानने वाला ज्ञानी कहीं सैंकड़ों जन्म में योग से ही मुक्त होगा; योगसाधन न करके शास्त्र पढ़ कर अथवा अपनी कल्पना से ज्ञान मान लेने से जन्म और मरण होते रहेंगे, परन्तु योग साधन से तो इसी जन्म में ही ज्ञान हो जायगा क्योंकि योग से वार २ जन्म मरण नहीं होता है। प्राणापान की एकता—प्राणायाम द्वारा सूर्य-चन्द्र का एक करना ही योग कहलाता है, इसलिये प्राणायाम करके कुण्डलिनी शक्ति को जगा कर उसकी सहायता से ब्रह्माग्नि प्रज्ज्वलित करके मन, प्राण और शरीर को सङ्गठित कर प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापन करके, निर्विकल्प समाधि द्वारा जीव ब्रह्म की एकता रूप योग साधन करना है।

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते।
योगज्ञानपरो नित्यं स योगी न प्रणश्यति॥
योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगे न सयोगी रमते चिरम्॥

योग से ही ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से ही योग प्रवृत्त होता है, इसलिये तुम नित्य योग ज्ञान का अभ्यास किया

करोगे तो कभी नष्ट नहीं होगे अतएव तुम्हें योग साधना से ही योग जानना चाहिये, योगाभ्यास से ही योग होता है, इसलिये उत्साह से लगे रहोगे तो योग में ही चिरकाल रमण करोगे ।

प्राणायाम से असाध्य कुछ नहीं है, कुण्डलिनी शक्ति जाग उठेगी

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये जब तुम भाग्य का भरोसा छोड कर अपना प्रयत्न और ईश्वर कृपा का आश्रय कर प्राण अपान का हवन-प्राणायाम करते रहोगे तो जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें प्राप्त न हो सके केवल तुम्हें दृढ़ सङ्कल्पवान् होने की आवश्यकता है; जब प्राण अपान का हवन प्राणायाम करने बैठो तो पहिले पद्मासन लगाना, सद्गुरु को प्रणाम कर मङ्गलमय महेश्वर से प्रार्थना करते रहना कि यज्ञ में कोई विघ्न न आवे, यदि दुर्भाग्यवशात् विघ्न आ जावें तो प्रणव देवता का पूजन–जप करते रहना चाहिये, साथ ही साथ महा माया आद्या शक्ति–कुण्डलिनी देवी का ध्यान करना, जिसकी कृपा से योगी लोग सिद्धि को प्राप्त करते हैं । वह सोती हुई शक्ति तुम्हारे प्राण अपान रूपी हवन के प्रभाव से जाग उठेगी, और अनादि काल की निद्रा त्याग कर महेश्वर से मिलने के लिये दौड़ेगी उस समय तुम हवन करना भी भूल जाओगे और शिव शक्ति के साथ मिलने की व्यग्रता में रोने लगोगे, हंसने लगोगे, नाचने लग जाओगे तब तुम्हें यह ज्ञान नहीं रहेगा कि मैं प्राणायाम कर रहा हूं, तुम

भयभीत से मालूम होवोगे, तुम्हें हंसना कूदना और नाचना ही अच्छा लगेगा, समय २ पर संज्ञा शून्य भी हो जाओगे।

उस अवस्था में तुम्हें सारा ब्रह्माण्ड अपने अन्तर में चित्र विचित्र रूप से दिखने लगेगा, दिव्य महा दिव्य ज्योति का प्रकाश तुम्हारे अन्तराकाश में प्रतीत होगा, यह अवस्था प्राण-अपान के हवन रूपी प्राणायाम में प्रायः हुआ करेगी, जब २ तुम प्राण को अपान में और अपान को प्राण में होमते रहोगे तब २ नाना प्रकार के दृश्य तुम्हारे सामने खड़े हो जांयगे, इस तुम्हारी मानसिक सृष्टि के विचित्र विकल्प का वर्णन कोई नहीं कर सकता।

गुरु प्रदत्त शक्ति के प्रभाव से आश्चर्य जनक अनुभव होंगे

मनसा मन आलोक्य योगनिष्ठः सदाभवेत्।
मनसा मन आलोक्य दृश्यन्ते प्रत्यया दश ॥
यदा प्रत्यया दृश्यन्ते तदा योगीश्वरो भवेत्।
बिन्दु नाद कला ज्योतीरवीन्दु ध्रुव तारकम् ॥
शान्तं च तदतीतं च परंब्रह्म तदुच्यते।

कुण्डलिनी शक्ति की क्रियाओं द्वारा मन को मन से देख कर सर्वदा योग साधन करना है, योग साधन से मन को मन से देखने से साधन उन्नति के चिन्ह ब्रह्म की अभिव्यक्ति कारक दश प्रत्यय

दीखते हैं—ये अनुभव होने लगें तो समझना कि शीघ्र योग की सिद्धि होने वाली है—नाद, बिन्दु, कला, ज्योति, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, तारा आदि अन्तराकाश में दीखते हैं और शान्त हो जाते हैं तब मन शान्त भाव अवलम्बन करता है, उस समय मन में कोई क्रिया नहीं होती, फिर शान्तातीत अवस्था आती है—शान्तातीत ही पर ब्रह्म है—जो मन वाणी से परे स्वानुभवगम्य है।

हसत्युल्लसति प्रीत्या क्रीडते मोदते तदा।
तनोति जीवनं बुद्ध्या बिभेति सर्वतोभयात्॥
रोध्यते बुध्यते शोके मुह्यते न च संपदा।
कम्पते शत्रुकार्येषु कामेन रमते हसन्॥
स्मृत्वा कामरतं चित्तं विजानीयात्कलेवरे।
यत्र देशे वसेद्वायुश्चित्तं तद्वसति ध्रुवम्॥

एसे दिव्य अनुभव हो जाने से योगी आनन्द उल्लास से उत्फुल्ल होकर हंसता है, प्रसन्न होता है, प्रेम से क्रीड़ा करता है और महा सुखी होता है, ऐसा आत्म सुख अनुभव करके विषयों से विमुख हुआ योगी संसार से भय मानकर पृथक रहता है, शोक में बुद्धिमत्ता से रहता है और संपदा प्राप्ति से मोहित नहीं होता, शत्रुता के कार्य से कांपता है, काम जनित विकार से शरीर में होने वाले परिणाम को जानता है, इसलिये सब कामनाओं से मन को रोकता है। शरीर में जिस स्थान में प्राण वायु रहता है चित्त भी निश्चय वहां ही होता है।

ये घटनायें गुरु प्रदत्त शक्ति के प्रभाव से अथवा प्राणायाम द्वारा तुम्हारे पापों के नाश से होंगी, चाक्षुष-दीखने वाली मेरी सृष्टि का सूक्ष्म अंश तुम्हारे अन्तर में समाया हुआ है, उसको कुण्डलिनी शक्ति के क्रिया शील होने से तुम सर्वदा देखा करोगे, ये सब शुभ लक्षण तुम्हें सन्तोष और श्रद्धा प्रदान करने के लिये ब्रह्म की अभिव्यक्ति करते रहेंगे। जब तक शिव शक्ति का सम्मिलन नहीं होगा तब तक ये अलौकिक आश्चर्य दृश्य अन्तर में अनुभव करते रहोगे, परन्तु जब तुम्हारा हवन पूर्णाहुति को प्राप्त होगा तब तुम निर्विकल्प समाधि में पहुँचोगे और तुम्हें वास्तविक ही बाहर का जगत् स्वप्नवत् भासेगा।

हवन के प्रारम्भ से पूर्णाहुति पर्यन्त जिन २ घटनाओं का तुम अनुभव करोगे उनका यथातथ्य वर्णन करना मनुष्य बुद्धि से परे है-तथापि तुम अनुभव तो करते ही रहोगे। ये अनुभव कराने वाली अन्तर शक्ति कुण्डलिनी है, जब २ वह ऊपर की ओर चलेगी तब २ तुम्हें आश्चर्य-अति आश्चर्य अनुभव होते रहेंगे, परन्तु इन अनुभवों से ही तुम कृतार्थ नहीं हो जाओगे, अभी तुम्हें आगे चलना है जब वह शक्ति शम्भू के साथ मिलकर स्थित हो जायगी, तब ही तुम कृत कृत्य और कृतार्थ हो जाओगे।

प्राणायाम की अवधि नहीं है।

जहां तक बने प्राणायाम करते ही रहना चाहिये जब तक करते २ अपने आप न छूट जाय तब तक बन्द नहीं करना चाहिये, यह हवन कितने रोज और कब तक करना है इसकी

कोई अवधि नहीं है, इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता-करते रहना ही कर्त्तव्य है, साधारणतः तुम लोग समझते हो कि कुण्डलिनी शक्ति के जागने से ही काम बन जाता है परन्तु ऐसा नहीं है, कुण्डलिनी के जागने से ही काम नहीं चलता परन्तु जगा कर कुण्डलिनी के क्रिया शीला होने से काम होता है। जैसे सोते हुये किसी व्यक्ति को आवाज़ देकर जगा दिया जाय और वह जाग भी जाय तथापि काम न करे तो क्या लाभ, तैसे ही कुण्डलिनी शक्ति जाग जाय और कार्य न करे तो क्या फल ?

अतएव यदि मालूम पड़े कि कुण्डलिनी जाग गई है तो भी प्राणायाम करते रहना चाहिये, प्राणायाम की अग्नि से उत्तप्त होकर सर्पिणी सहस्रार में जाकर और मन प्राण को समेट कर ब्रह्म में लय करे, तब ही साधन की सफलता हुई समझनी चाहिये, जितना अधिक प्राण अपान का हवन होगा उतना ही जल्दी आत्म शक्ति का विकास होगा, अतएव यह कार्य नियमित रूप से श्रद्धा-भक्ति उत्साह और साहस से जब तक स्वतः न छूट जाय तब तक करते रहना है, हवन की आहुति कुम्भक जितनी अधिक संख्या में पहुँचे उतना ही अधिकाधिक आनन्द होगा।

"गुरु के शक्ति सञ्चार से महायोग स्वतः होगा"

जब कुण्डलिनी शक्ति जागकर क्रिया शीला होती है-तब जो २ लक्षण होते हैं वे शत शत लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव से परि-

दर्शन करके लिखे जाते हैं अतएव इस विषय में शङ्का निरर्थक है क्योंकि योग प्रत्यक्ष फल प्रद है, योग के उपयुक्त सामर्थ्यवान् गुरु के शक्तिपात से, शक्ति संचार से, शक्ति उद्बोधन वा उद्घाटन से, जब कुण्डलिनी शक्ति जाग कर क्रिया करने लगती है तब तुम में ये लक्षण प्रतीत होंगे—गुरु के शक्ति सञ्चार से महायोग स्वतः होगा।

आधारवातरोधने शरीरं कम्पते यदा।
आधारवातरोधेन योगी नृत्यति सर्वदा ॥
आधारवात रोधेन विश्वं तत्रैव दृश्यते।
सृष्टिराधारमाधारमाधारे सर्वदेवताः ॥

प्राणायाम द्वारा वा शक्तिमान् गुरु के अनुग्रह से अन्तर शक्ति जागती है तो आत्म शक्ति के उद्बोधन से प्राण क्षोभित होकर जब आधार चक्र में रुकता है तो साधक का शरीर कांपने लगता है, मूलाधार में प्राण रुकने के कारण साधक योगी आनन्दित होकर नृत्य करने लगता है, आधार चक्र में वायु का निरोध होनेसे वहीं सारा विश्व दीखने लगता है क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में ही निवास करती है उसकी स्थिति के कारण सृष्टि का आधार मूलाधार ही है। आधार में ही सब देवता निवास करते हैं।

आधारे सर्व वेदाश्च तस्मादाधारमाश्रयेत्।
आधारे पश्चिमे भागे त्रिवेणी सङ्गमोभवेत् ॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च नरः पापात्प्रमुच्यते ।
आधारे पश्चिमं लिङ्गं कवाटं तत्र विद्यते ॥
तस्योद्घाटन मात्रेण मुच्यते भव बन्धनात् ।

इसलिये आधार में ही सब वेद का ज्ञान निहित है, वाग्देवी वेदमयी ज्ञान शक्ति मूलाधार में ही है, इसलिये आधार का ही आश्रय करना चाहिये, आधार के पश्चिम भाग में ईडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, त्रिवेणी–गङ्गा, यमुना, सरस्वती का सङ्गम होता है वहां पर मन प्राण को एकत्र करके गोता लगा कर दिव्य स्नान एवं पान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, आधार के पश्चिम भाग में स्वयंभू लिङ्ग प्रतिष्ठित है, वहां पर सुषुम्ना में–प्रवेश का मार्ग– ब्रह्म द्वार है उसको खोल देने ही से मनुष्य संसार बन्धन से विमुक्त हो जाता है ।

आधार चक्रमहसा पुण्यपापे निकृन्तयेत् ।
आधार वात रोधेन लीयते गगनान्तरे ॥

मूलाधार में कम्पन होने लगे, शरीर कांपने लग जाय, कुंभक रोके भी न रुके और श्वास प्रश्वास बलात्कार बाहर हो जाय, अनिच्छा में भी श्वास प्रश्वास दीर्घ २ आने जाने लगे और शरीर संभाला न जाय, तब समझ लेना कि कुण्डलिनी शक्ति जाग गई और कार्य करने लगी, उस समय तुम्हें चाहिये कि निर्भय होकर चुपचाप बैठना और देखना कि क्या होता है। जब शरीर कांपने लगे, रोमाञ्च हो जाय, अनिच्छा में हास्य

आवे या रोने लग जाओ अथवा मुख से विकृत २ शब्द निकलें या वीर्यपात हो जाय, भय उत्पन्न हो जाय अथवा विभीषिका दीखें, अनिच्छा में मूत्र स्राव हो जाय तो समझ लेना कि कुण्डलिनी शक्ति कार्य कारिणी हो गई।

जब आसन स्थिर हो जाय, उड्डीयान, जालंधर, मूल बँध स्वतः लगते रहें जिह्वा तालू में उलट कर चली जाय और इतनी स्फुर्ति हो कि स्थिर होकर बैठा न जाय, हाथ पैर बलात्कार से खिंचे तो समझ लेना कि परमा शक्ति कुण्डलिनी देवी क्रिया शीला हो गई।

जब आसन दृढ़ता से लगा रहे दृष्टि भ्रुकुटि में रहे, आंखों के तारे घूमने लगें, स्वतः केवल कुम्भक हो जाय, बाह्य ज्ञान शून्य मन निष्क्रिय हो जाय तो समझ लेना कि महा माया आद्या-शक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई।

जब मूलाधार से प्राणकला के स्रोत सहस्रार में जाते मालूम पड़ें—अन्तर में प्रणव का जप स्वतः होने लगे और प्राण के उठते हुए स्रोतों के साथ २ मन नाना प्रकार का सुख अनुभव करे तो समझ लेना कि जगदम्बा कुण्डलिनी शक्ति क्रियाशीला हो गई।

जब नाना प्रकार के नाद होने लगें—मेरुदण्ड में कम्पन मालूम पड़े—शरीर शून्य हो जाय और यह प्रतीत होवे कि शरीर है ही नहीं, सब शून्य भासे, नेत्र खोलने पर भी न खुलें, शरीर से विद्युत स्रोत चलें या खिंचाव होने लगे तो समझ लेना कि महा माया कुण्डलिनी क्रियाशीला हो गई।

जब नेत्र मूंदते ही शरीर भूमिष्ठ हो जाय, शरीर चक्की की तरह घूमने लगे और श्वास प्रश्वास बाहर निकलें ही नहीं, शरीर मेंढक की तरह उछल २ कर जहां तहां गिरे, सारे स्थान में चक्कर लगावे, या मृतवत् भूमि से लग जाय, हाथ उठाया न उठे, पग भी न हिलें, सब नाड़ियों में खिंचाव होने लगे मानो प्राण शरीर से निकल रहा है ऐसा प्रतीत हो, शरीर मछली की तरह उछल २ कर तड़फे, तब समझना कि योग माया कुण्डलिनी शक्ति कार्यशीला हो गई।

जब मन में आवेश आ जाय, मालूम पड़े कि शरीर में कोई प्रवेश कर गया है, उस आवेश में नाना प्रकार के आसन बलात्कार से होने लगें और कष्ट कुछ भी बिल्कुल न हो, वरन् आनन्द ही आनन्द होता जाय, साथ २ विचित्र प्रकार के प्राणायाम होने लग जांय तो समझना कि ईश्वरीय शक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई।

जब आंख मूंद कर बैठते ही सङ्कल्पमात्र से शरीर में चेष्टायें होने लगें हाथ पैर फेंके जांय और विकट २ शब्द मुख से बलात्कार निकलें जिनकी भाषा विकृत हो और पशु-पक्षी या मेंढक इत्यादि के सदृश शब्द होने लगें अथवा शृगाल, श्वान, बिल्ली, व्याघ्र, सिंहादि के शब्द श्रुति-कटु भयानक एवं उच्छृङ्खल शब्द स्वतः बाहर निकलें तो समझ लेना कि रुद्राणी महाशक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई।

जब शरीर के स्थान २ में प्राण की गति मालूम होने लगे

और ज़हां २ मन लगाया जाय वहीं २ प्राण की क्रिया प्रतीत होने लगे और स्नायुमण्डल में विद्युत को तरह सुख साध्य क्रियायें अनुभव में आवें तो समझ लेना कि कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला होगई।

जब अष्ट प्रहर अन्तर में क्रिया की अनुभूति होती रहे और जहां भी मन एकाग्र हो, झट शरीर कांपने लगे या अनिच्छा में शरीर हिला करे, मलीन जघन्य स्थान–शौचालय में बैठने पर भी मन आनन्द मग्न क्रियात्मक रहे, सोते समय भी प्राणकला के स्रोत सहस्रार में भासें एवं स्वप्न में मन क्रियात्मक रहे तो समझ लेना कि आल्हादिनी कुण्डलिनी शक्ति क्रियाशीला हो गई।

जब आसन लगा कर बैठते ही शरीर ढलने लग जाय और मारे खुशी के गाना आरम्भ हो जाय जिसकी राग रागनी ऐसी विचित्र हों कि सुनने वाले मुग्ध हो जांय और पद्य की रचना स्वतः होती चली जाय, हाथ से ताल बाक़ायदा लगती रहें, नाना प्रकार के भाषा पद्य स्वयं अर्थ बोध रहित उच्चारण होते जांय जिसकी भाषा कोई समझ ही न सके और मन को आह्लादित करे तो समझ लेना कि सरस्वती रूपा कुण्डलिनी शक्ति क्रियाशीला हो गई।

जब बिना भङ्ग पिये ही भङ्ग की तरह नशा चढ़ा रहे और चलते समय हाथ पांव कांपें एवं जहां तहां पड़ें मनमें मस्ती आवे और व्यावहारिक कोई भी कार्य न हो सके, न सुनना अच्छा लगे और न कहना ही अच्छा लगे या मद्यपायी के

सदृश मस्ती बनी रहे तो समझ लेना कि आत्म-शक्ति कुण्डलिनी क्रियाशीला हो गई।

जब रास्ता चलते समय मन में आवेश आवे कि चलो उड़ें, ज़मीन पर पैर छूते ही दौड़ना शुरू हो जाय, शरीर पवन की तरह हलका उड़ता हुआ मालूम पड़े, कितना भी क्यों न चला जाय, तथापि क्लान्ति न हो, मन प्रफुल्लित और प्रसन्न रहे, स्वप्न में भी अप्रसन्नता न आवे, इष्ट और अनिष्ट से मन विचलित न हो, साधक अक्लिष्ट कर्मा हो जाय तो समझ लेना कि ब्रह्मशक्ति कुण्डलिनी क्रियाशीला हो गई।

जब आसन पर बैठकर नेत्र बन्द करते ही स्वप्न जैसी अवस्था हो जाय और देवताओं के दर्शन होने लगें, दिव्यगन्ध, रूप, रस, शब्द और दिव्य स्पर्श अनुभव में आवें, एवं देवताओं से आदेश मिलें तो समझ लेना कि दैवीशक्ति कुण्डलिनी क्रियाशीला हो गई।

जब ध्यान में बैठने से भविष्यत् में होने वाली बातों का भान हो जाय, वेद, वेदान्त का गूढ़ रहस्य समझ में आ जाय, मन के सब सन्देह मिट जांय, किसी भी शास्त्र को थोड़ा बहुत पढ़ते ही उसका मर्म-भावार्थ बुद्धि में समा जाय, व्याख्या करने की विचित्र शक्ति हो जाय, ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वयं ब्रह्मा से भी इच्छा न की जाय और आत्मनिष्ठा हो जाय तो समझ लेना कि सिद्धशक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई।

जब आसन पर बैठने से भ्रुकुटि में दृष्टि स्थिर हो जाय,

जिह्वा द्वारा खेचरी हो जाय, प्राण प्रवाह सर्वथा रुक जाय, मन आनन्द सागर में गोता लगा जाय, शाम्भवी मुद्रा सिद्ध हो जाय, सविकल्प का सुख अनुभव में आवे तो समझ लेना कि योगशक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई ।

जब क्रिया करने बैठते ही मन एकाग्र हो जाय, देवी देवताओं से वार्तालाप होनें लगे, उनसे रोगों की औषधि मिले, विघ्न-नाशार्थ दैव मन्त्र मिलें, सिद्धों से योग, ज्ञान का उपदेश मिले तो समझ लेना कि सिद्धिप्रदायिनी कुण्डलिनी शक्ति क्रिया-शीला हो गई ।

जब आसन पर बैठ के क्रिया करने का सङ्कल्प करते ही अपना सूक्ष्म शरीर सामने प्रत्यक्ष भासे, स्थूल शरीर का अस्तित्त्व लोप हो जाय. नेत्र खोलने पर भी सर्वत्र शून्य भासे, और समय की संज्ञा न रहे तो समझ लेना कि चित्तशक्ति कुण्डलिनी देवी क्रियाशीला हो गई ।

जब प्रातः और सायंकाल ठीक समय पर अनिच्छा में भी क्रिया का वेग होने लगे एवं शरीर, मन, प्राण को विवश करे तो समझ लेना कि महादेवी कुण्डलिनी शक्ति ठीक काम कर रही है ।

मनुष्य मात्र ज्ञान के अधिकारी हैं—कर्म, जाति, अवस्था का भेद-तपस्या में नहीं है ।

इसी तरह कुण्डलिनी शक्ति भिन्न २ प्रकृति वालों को भिन्न २ रूप से उनके मन, प्राण और शरीर के अनुकूल योग

शास्त्र कथित समाधि के निमित्त शिव शक्ति सम्मेलनार्थ नाना प्रकार की चेष्टा-क्रियायें कराती है, मनुष्य मात्र चाहे आस्तिक हो या नास्तिक हो, चाहे स्त्री हो, पुरुष हो, बालक हो, वृद्ध हो, रोगी हो, निरोगी हो, चाहे पापी हो, या पुण्यवान् हो अथवा महा मूर्ख हो, आत्म-शक्ति के जागने से उपरोक्त लक्षण तत्काल या क्रम से होने लगते हैं-पश्चात् अपने २ संस्कारों के अनुकूल ही सिद्धि होती है, परन्तु आत्म-शक्ति के जागरण में देश काल कृत् अन्तराय नहीं आता, क्योंकि मनुष्य मात्र ईश्वर के ज्ञान का अधिकारी है। कर्म, जाति, अवस्था और आश्रम का योग साधन तपस्या में विचार नहीं है। प्रज्वलित अग्नि में चन्दन और विष्ठा डालने से दोनों ही जल कर लाल हो जाते हैं तब चन्दन की सुगन्धि और विष्ठा की दुर्गन्धि नहीं रहती, दोनों अग्नि रूप हो जाते हैं, तैसे ही योग साधन रूप तपस्या से ब्रह्माग्नि में सब ब्रह्म रूप हो जाते हैं, अतएव योग साधन तपस्या करके तुम्हें इसका अनुभव करना चाहिये।

कुण्डलिनी गुरु के मिले बिना भी जाग सकती है, और गुरू के लिये भी तपस्या करनी पड़ती है।

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्व विचक्षणाः ।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥
आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥

उपरोक्त तो हुआ गुरु के अनुग्रह से शक्ति जागरण होने का फल, परन्तु ऐसा भी देखा गया है कि बिना गुरु के प्राणायाम करने वालों में भी कुण्डलिनी शक्ति जागने के बहुत से शुभ लक्षण प्रकाश पा जाते हैं, क्योंकि प्राणायाम से ही कुण्डलिनी शक्ति जागती है, इसलिये आत्म शक्ति जागने से सब कुछ स्वतः होगा इसमें कोई सन्देह नहीं। संसार तत्त्व की आलोचना करने वाले मनुष्य प्रायः स्वयं ही अपने चित्त की अशुभ प्रवृत्ति को रोक कर अपना उद्धार कर लेते हैं, समस्त प्राणी आप ही अपने गुरु होते हैं उनमें भी मनुष्य में तो इतनी विशेषता और भी है कि वह प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा अपने श्रेय का निर्णय कर सकता है क्योंकि मनुष्य स्वभावतः विवेकवान् है। इसलिये यदि गुरु न मिले तो भी चिन्ता नहीं—तपस्या करते रहना चाहिये उपयुक्त गुरु की प्राप्ति के लिये भी तपस्या ही करनी पड़ती है, अतएव तपस्या—साधन गुरू के सहारे से आत्मगुरु को प्राप्त करना चाहिये, इसमें यदि दैव योग से सद्गुरु मिल जाय तो अहो भाग्य है, क्योंकि तुम्हारी दुरवस्था के कारण उपयुक्त गुरु को पाना तुम्हारे लिये सहज नहीं है गुरु के मिलने के भरोसे रह कर तपस्या का समय नष्ट न करना चाहिये, पुरूषार्थ करते रहना चाहिये। कभी न कभी तो गुरु मिलेंगे ही, किया हुआ किसी का भी व्यर्थ नहीं जाता, समय पाकर सब किये का फल मिलता है। गुरु से भी उपदिष्ट होते ही तत्काल तुम मुक्त न हो जाओगे, उस पर भी तुम्हें साधन—तपस्या करनी पड़ेगी अतएव आत्मविश्वास रक्खो, सब मङ्गल होगा।

योग का फल प्रत्यक्ष है

कुण्डलिनी शक्ति जाग कर क्रिया करती है—यह तो कहा महा-योग साधन करने वाले साधकों का अनुभव। साधकों को उक्त बातों में से प्रायः सबही बातें होती हैं, जो बातें नहीं हुई वे भी होती जायेंगी, अपने २ संस्कारों के अनुकूल आवश्यकतानुसार सबकुछ होगा, इसमें किञ्चित् मात्रभी सन्देह नहीं है, महायोगका महात्म्य बड़ा भारी है। योग माया कुण्डलिनी शक्ति क्रियायें कराती है, प्रत्यक्ष में और प्रमाण की आवश्कता नहीं होती, परन्तु दुर्भाग्यवशात् कोई साधक पूर्ण यज्ञ करने में समर्थ न हो, अथवा गुरु की प्रीति अच्छी तरह सम्पादन न कर सका हो तो ऊपर कथित अनुभवों में अपूर्णता रह जाती है; तुम्हें चाहिये कि गुरु की पूर्ण कृपा के पात्र बनो; यज्ञ को विधि पूर्वक करोगे तो सारे काम ईश्वर कृपा से सिद्ध होंगे, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति मेधा सम्पादन करो, सदा सर्वदा सत्य का पालन करो, उत्साह, साहस और तत्त्वज्ञान से निश्चय करो, क्योंकि आगे तुम्हें सिद्धावस्था में पहुँचना है इसलिये सर्वदा सावधान रहो, विघ्नों का बड़ा भय है।

मन के दुष्ट संस्कार बाधा देंगे

मन के दुष्ट संस्कार बड़े प्रबल होते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष आश्चर्य-अति आश्चर्य सङ्गठन होने पर भी आत्म विश्वास न करके बहुत से साधक मन के धोके में आकर गुरु कृपा से प्राप्त साधन को पाकर भी रह गये, आगे बढ़ न सके, क्योंकि दुर्भाग्य से मन

में पहिले ही दुष्ट संस्कार थे, चित्त-शुद्धि का कोई साधन किया नहीं था, अकस्मात् आत्म शक्ति जगाई गई; सुसंस्कार तो ये ही मात्र आरम्भ हुए, दुष्ट संस्कार नष्ट नहीं हुए थे, इसलिये साधन करने में वाधा देते हैं—विकल्प उठाते हैं तुम्हें चाहिये कि प्राप्त साधन को दृढ़ता के साथ करते रहना, इससे शुभ संस्कार प्रवल होंगे और कुसंस्कारों का नाश करेंगे।

इसलिये ही शास्त्र में अधिकारी होने की आवश्यकता कही है; विना अधिकारी हुए महान् से भी महान् वस्तु को अपात्र मनुष्य रख नहीं सकते इसलिये सावधान हो कर सद्गुरु का स्मरण और ईश्वर के अनुग्रह की कामना करो। प्रयाग में तुमने प्रायश्चित कर लिया है, इसलिये कुण्डलिनी शक्ति जाग कर क्रिया शीला हो गई है अतएव तुम्हारे लिये दिव्य लोकों के द्वार खुल गये हैं; परन्तु अभी तुम वहां जा नहीं सकते, प्रयाग तीर्थ के अधिष्ठातृ देव वेणी माधव—आत्मा का दर्शन करना है।

कुण्डलिनी शक्ति मन, प्राण और शरीर को सङ्गठित करती है।

शक्ति कृत उक्त सव क्रियायें और अनुभव इसलिये होता है कि तुमने जो कुछ पढ़ा, सुना है उसको दृढ़ करने के लिये एवं तुम्हारे ज्ञान में जो अपरिपक्वता है उसको परिपक्व और परि-, पूर्ण करने के लिये कुण्डलिनी शक्ति तुमसे ये सब शारीरिक

मानसिक क्रियायें कराती है ताकि तुम्हारा शरीर, मन, प्राण स्वस्थ और सङ्गठित हो जाय क्योंकि कच्चे शरीर से और दुर्बल मन से तुम आत्म दर्शन नहीं कर सकते, इसलिये योग-माया कुण्डलिनी शक्ति आत्म ज्ञान के लिये आवश्यकीय साधन सम्पादन करा लेगी, जिससे तुम इसी जन्म में ही जीवनमुक्त हो सकोगे। जीवन-मुक्ति देने वाला महायोग है, उसकी चार अवस्थायें हैं।

महा योग की चार अवस्थायें

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपिच ।
निष्पत्तिः सर्वयोगेषुस्यादवस्थाचतुष्टयम् ॥

आरम्भ अवस्था, घटा अवस्था, परिचया अवस्था और निष्पत्ति अवस्था ये चार अवस्थायें चित्त वृत्तियों के निरोध रूप सब योग में हुआ करती हैं।

आरम्भ अवस्था

करण त्रय संभूतं बाह्यं कर्म परित्यजन् ।
आन्तरं कर्म कुरुते यत्रारम्भः स उच्यते ॥

करण त्रय से उत्पन्न हुआ बाह्य कर्म (बाह्य कर्म के कारण तीन होते हैं बोध, बोध का विषय और बोध का आधार–कर्त्ता, कर्म, करण अथवा ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान) का त्याग कर जो आन्तरिक, मानसिक कर्म कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से होने वाला

योग साधन किया जाता है उसका नाम आरम्भ अवस्था है, अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति जाग कर क्रिया करने से योग की आरम्भ अवस्था हुई, वास्तविक योग यहां से ही आरम्भ होता है।

आरम्भ अवस्था में योग माया कुण्डलिनी शक्ति प्रथम ही हठ योग आरम्भ करती है, उसमें नाना प्रकार की शारीरिक क्रियायें होती हैं, जिनके नाम आसन, बँध, मुद्रा, प्राणायाम और नाड़ीशुद्धि हैं, आसन से शरीर की स्थिरता, बँध, मुद्रा से शरीर की दृढ़ता, प्राणायाम से शरीर की लघुता और नाड़ीशुद्धि से शरीर की साम्यता होती है, हठ योग द्वारा ही शरीर परि-पक्व होता है अतएव शरीर को वश में रखने का एक मात्र उपाय हठ योग ही है, हठयोग किये विना ज्ञान लाभ करना सहज नहीं है।

घटावस्था

वायुः पश्चिमतो वेधं कुर्वन्नापूर्यसुस्थिरम्।
यत्र तिष्ठति सा प्रोक्ता घटाख्या भूमिका बुधैः॥

पश्चात् दूसरी घटावस्था है, घटावस्था में शरीर सम्पूर्णतया शुद्ध और सत्वगुण युक्त होता है, विषय वासनायें ह्रास होजाती हैं, सर्वदा ईश्वर स्मरण बना रहता है, हठयोग और लययोग सुगम हों जाते हैं, साधक पवित्र और प्रसन्न रहता है, वैराग्य दिन २ बढ़ता रहता है, ईश्वर से मिलने के लिये मन उत्साहित

और विरह में व्याकुल रहता है, आरम्भ अवस्था और घटावस्था दोनों मिली रहती हैं। आरम्भ अवस्था से शरीर एवं घटावस्था से मन सङ्गठित होता है–इन दोनों अवस्थाओं से मन और शरीर शुद्ध और स्वस्थ होते हैं इसलिये कुण्डलिनी शक्ति के ब्रह्म रन्ध्र में जाने का पथ सुगम और सरल हो जाता है, इसीसे साधक प्राणवायु को पश्चिम मार्ग सुषुम्ना में प्रवेश करके रोकने की क्षमता लाभ करता है, जिससे प्राणरोध होने लगता है तो मनमें भी स्थिरता आ जाती है। इस स्थिरता प्राप्ति की अवस्था को ज्ञानियों ने योग साधन की घटावस्था कही है इसके बाद साधक को परिचयावस्था की प्राप्ति होगी।

परिचयावस्था

न सजीवो न निर्जीवः काये तिष्ठति निश्चलम्।
यत्र वायुः स्थिरः खे स्यात्सेयं प्रत्ययभूमिका ॥

परिचयावस्था में साधक का प्राण जहां अन्तर आकाश बोध गगन में विलीन होता है, प्राणशक्ति कुण्डलिनी देवी हृदयाकाश में प्राण स्थिरत्व प्राप्त कर सहस्रार में शिव के साथ संलग्न होती है तो साधक की शारीरिक अवस्था जब तक प्राण का रोध रहता है निष्क्रिय, निर्जीव हो जाती है इसलिये उन्हें मृतवत् कहा जा सकता है क्योंकि बाह्य लक्षणों से देह निर्जीव मृतवत् प्रतीत होता है, परन्तु अन्तर में वह सजीव है।

परिचय अवस्था में प्राण के साथ आत्मशक्ति मिलती है

इसलिये महायोग में परिचय अवस्था वा सिद्धावस्था की महत्ता बहुत ही बड़ी समझी जाती है, उस अवस्था को प्राप्त हुआ साधक सिद्ध कहलाता है और अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त करता है, कुण्डलिनी देवी की कृपा और गुरुदेव के अनुग्रह से परिचय अवस्था प्राप्त होती है तो शरीर का (व्याप्त) प्राण सङ्कल्प मात्र से ही सारे शरीर से खिंचकर मूलाधार में एकत्र हो जाता है। जब प्राण का एकत्र होना आरम्भ होता है तो साधक योगी अनिर्वचनीय सुख अनुभव करने लगता है, शरीर में जिस २ स्थान से प्राण खिंचता है वहीं २ का अङ्ग मृतवत् निश्चेष्ट और निष्क्रिय हो जाता है।

व्याप्त प्राण एकत्रित अङ्गुष्ठ मात्र अति सूक्ष्म होकर सुषुम्ना विवर में प्रवेश करके मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि पूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों में होकर सहस्रार को जाता है तब साथ ही जठराग्नि और मन भी प्राण में मिल जाते हैं एवँ बिन्दु (वीर्य) स्वस्थान में भस्म होकर ओज हो जाता है उस समय सारे ब्रह्माण्ड को क्रिया शील करने वाले या सब के जीवन-रुप प्राण का परिचय लेकर साधक योगी कृतार्थ हो जाता है। उस अवस्था में उसकी बुद्धि में आत्म तेज की छाया पड़ती है "तत्र ऋतंभरा प्रज्ञा" उस ज्ञान का अवलम्बन करने वाली बुद्धि 'ऋतंभरा प्रज्ञा" कहलाती है। सत्य ज्ञान के साक्षात्कार से साधक सिद्ध हो जाता है एवं प्रकृति पर अपना प्रभुत्व स्थापन करता है, तब उनके लिये सर्वत्र शक्ति का भण्डार खुल जाता

है; कुण्डलिनी शक्ति सरलता धारण करती है और सुषुम्ना विवर में ही अपना स्थान कर लेती है, इसलिये साधक योगी को आत्म ज्ञान के सब साधन सहज और सरल हो जाते हैं।

वह चाहे तो अपना आत्म सामर्थ्य जिस किसी को भी दे सकता है और बद्ध जीवों का सामर्थ्य खींच सकता है अपने प्राण को दूसरे प्राणियों में प्रवेश कर सकता है, दूसरे के प्राण को आकर्षण कर लेता है, प्रकृति उन्हें अनुकूल हो जाती है इसलिये उनकी इच्छानुसार कुण्डलिनी शक्ति दूसरे के शरीर में जागती है एवं क्रियायें करने लग जाती है, दूसरे के प्रारब्ध भोग को अदल बदल करना उन्हें खेल सा हो जाता है, भोगरूप व्याधियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में सङ्कल्प मात्र से ही कर दे सकता है यहाँ तक की जड़ पदार्थ पाषाणादि में दूसरे के रोगों को शुद्ध सङ्कल्प से भोगा देता है।

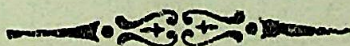
उनके मन, प्राण आत्म तत्त्व में आकर्षित होते रहते हैं, हृदय ग्रन्थि खुल जाती है, सब संशय छिन्न हो जाते हैं, कर्म-पाश कट जाते हैं; परावर की कृपा के कारण वह कृतार्थ हो जाता है—बहुतों को कृतार्थ कर देता है, व्यावहारिक दृष्टि से वह कितना भी दुराचारी क्यों न हो तथापि उसका ज्ञान आवरण से आच्छादित नहीं होता, निन्दा करने वाले उसके पाप ले जाते हैं और स्तुति करने वाले पुण्य ले जाते हैं, ब्रह्म लोक का मार्ग उसने देख ही लिया है, जब यहां से प्रस्थान करेगा तो सीधा सत्य

लोक में पहुँचेगा। परिचय अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष ही तुम लोगों को हमसे मिलायेगा क्योंकि उसने मुझसे परिचय कर लिया है, इसलिये जिसको वह जब चाहे मुझसे मिला सकता है।

निष्पत्ति अवस्था

यत्रात्मना सृष्टिलयौ जीवन्मुक्तिदशागतः ।
सहजः कुरुते योगं सेयं निष्पत्तिभूमिका ॥

जिस अवस्था में महासिद्धि आत्मज्ञान का उदय होता है उस दशा में स्वयं आत्मा द्वारा ही सृष्टि लय साधित होते हैं, उस समय सिद्ध योगी अपने जीवत्व को छोड़ के शिवत्व लाभ करता है तब कुण्डलिनी महा शक्ति अपने आधार रूप परम शिव में विलीन होती है तब योगी की जीवन्मुक्त दशा होती है, तब सृष्टि संहार के कर्त्ता परम शिव में सम्पूर्ण अभेद रूप से एकत्व प्राप्त वह जीवन मुक्त योगी अपने आत्मा में ही सृष्टि लय बोध करता है, तब योगी कुण्डलिनी शक्ति को परम शिव में विलीन करने में समर्थ हो जाता है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति का परशिव में योग वह सहज ही कर लेता है।



अष्टम प्रकाश

सम्प्रदाय में दीक्षा की विधि

शिवादिगुरुपर्यन्तं पारम्पर्यक्रमेण यः ।
अवाप्ततत्त्वसंभारः स गुरुर्नाऽपरः प्रिये ॥

ज्ञान मार्ग के वेदान्त, योग, मन्त्र, तन्त्र, भक्ति आदि जितने तुम्हारे सम्प्रदाय हैं उन सब में ही दीक्षा दी जाती है, दीक्षा में गुरु शिष्य में अपनी शक्ति सञ्चार करते हैं, ताकि शिष्य की बुद्धि अतीन्द्रिय विषय को ग्रहण कर सके, इसलिये इसको शक्तिपात कहते हैं; शक्तिपात सहित प्राप्त दीक्षा के नाना प्रकार के भेद हैं परन्तु शक्तिमान् गुरु के सामर्थ्य और शिष्य की योग्यता से इसका परिचय होता है।

यह शक्तिपात की विधि श्री महेश्वर से परम्परागत सदा से चली आती है, परन्तु वर्तमान युग में इसका प्रकाश बहुत कम दृष्टि गोचर होता है, इसलिये तुम लोग इस विषय से अज्ञात ही हो, परन्तु विद्या का बीज नष्ट नहीं होता है, अध्यात्म ज्ञान की महत्ता इस शक्ति पात रूपी श्री शम्भु के प्रसाद से तत्काल ही दर्शाई जा सकती है। जैसे स्पर्श मणि लोहे को सोना बनाती है तैसे गुरु लोग भी मलीन संस्कार वाले शिष्यों को सुवर्ण सदृश शुद्ध बना देते हैं, ताकि वे अपना कल्याण कर सकें

जिनको अपने कल्याण की दीक्षा दी जाती है उनसे दूसरों का भला नहीं हो सकता। स्पर्श मणि का तो एक मात्र यह ही गुण है कि वह लोहे को काञ्चन ही कर सकता है, परन्तु गुरुओं का यह विशेष गुण है कि वे अपने तुल्य दिव्य स्पर्श मणि बना देते हैं, जो गुरु के द्वारा स्पर्श मणि बने हैं वे ही औरों का मङ्गल कर सकते हैं क्योंकि जब तक गुरु ही शिष्य को गुरुपद में नहीं बिठाते तब तक कोई शिष्य गुरु नहीं हो सकता।

अतएव योग्य शिष्य का गुरु पने का अधिकार गुरु परम्परा से चला आता है, इसलिये गुरु को चाहिये कि उपयुक्त शिष्य को दीक्षा द्वारा शक्ति सञ्चार करके शिवतत्त्व जीवतत्त्व, प्रकृति-तत्त्व, आत्मतत्त्व एवं गुरुतत्त्व पर्यन्त अर्थात् मूलाधार शिव-तत्त्व से लेकर स्वाधिष्ठान, मणिपुर अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र और सहस्रार में गुरुतत्त्व पर्यन्त परम्परा क्रम से सब तत्त्व समूह का उस शिष्य को बोध करा कर अपने तुल्य दिव्य स्पर्श मणि बना दे, कि जिससे विद्या का बीज नष्ट न हो और विद्या की गुरु शिष्य परम्परा बनी रहे।

यह बोध क्रम श्री महेश्वर से गुरु परम्परा द्वारा सदा से चला आता है, इसलिये जिन शिष्यों को गुरुओं ने अपने तुल्य स्पर्श मणि बना दिया है वे ही शिष्य गुरू पद वाले पूजने योग्य गुरू हैं और नहीं; गुरू से अपने ही कल्याण की दीक्षा लेने वाले सुवर्ण बने हुए दूसरों के कल्याण का अधिकार नहीं रखते, परन्तु गुरु की कृपा से जो स्पर्श मणि गुरु बने हुए हैं, वे ही तुम

लोगों का त्राण करेंगे, अतएव जिस तिस के चरणों में शिर रखने से तुम्हारा मङ्गल नहीं हो सकता।

दीक्षा का अर्थ.

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
अस्यविज्ञानमात्रेण देवत्वं लभते नरः ॥

श्री महेश्वर भगवती से दीक्षा के विषय में कहते हैं कि जिसके विज्ञान–जानने मात्र से मनुष्य देवत्व लाभ करता है अर्थात् जिस दीक्षा से मनुष्य को दैव शक्ति प्राप्त हो जाती है।

दिव्य ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापक्षयं ततः ।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्व तंत्रस्य सम्मता ॥
ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् ।
अतो दीक्षेति संप्रोक्ता दीक्षातंत्रार्थवेदभिः ॥
दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाप पद्धतिः ।
तेन दीक्षोच्यते मंत्रे स्वागमार्थवलाबलात् ॥

इस 'दीक्षा' शब्द में दी+क्षा दो अक्षर हैं, जिनका अर्थ होता है कि 'जो दिव्य ज्ञान को देती है और जिससे सब पापों का क्षय होता है' इसलिये उसे दीक्षा कहते हैं। जो सर्व तंत्र सम्मत सब शास्त्रानुसार है, जो श्री शिव जी की तद्रूपता समाधि को देती है और आणव, कर्मण, मायिक तीनों मलों का नाश करती है, इसलिये दीक्षा–तंत्र के अर्थ के ज्ञाता ऋषि मुनियों ने इसको

'दीक्षा' नाम दिया है जो परम ज्ञान को देती है और पाप शृङ्खला का नाश करती है इसलिये इसको मन्त्र शास्त्र में और आगम शास्त्र में 'दीक्षा' कहा है।

दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते पाशबन्धनम् ।
अतो दीक्षेति देवेशि कथिता तत्त्वचिन्तकैः ॥
मनसा कर्मणा वाचा यत्पापं समुपार्जितम् ।
तेषां विशेषा करणी परमज्ञानदायतः ॥
तस्मात् दीक्षेति लोकेऽस्मिन् गीयते शास्त्र वेदकैः ।
विज्ञानफलदा सैव द्वितीया लयकारिणी ।
तृतीयामुक्तिदा चैव तस्मादीक्षेतिधीयते ॥

जो महान् ब्रह्म ज्ञान को देती है और पाश तथा कर्म बन्धनों का नाश करती है इसलिये तत्त्व चिन्तन करने वाले ज्ञानियों ने इसको दीक्षा कहा है। मन वाणी और कर्म से जो पाप सञ्चय किये गये हैं उनको समूल नष्ट करने वाली एवं परमज्ञानप्रदायिनी होने से इसको शास्त्र वेत्ताओं ने दीक्षा कहा है। प्रथम तो प्रत्यक्ष विज्ञान फल देने वाली, दूसरे द्वैत भाव और मन का लय करने वाली एवं तीसरे मुक्ति देने वाली होने से इसको दीक्षा कहा गया है।

दीक्षा के प्रकार

स्पर्शाख्या देवि दृक् संज्ञा मानसाख्या महेश्वरी ।
क्रियायासादिरहिता देवि दीक्षा त्रिधा स्मृता ॥

शांभवी चैव शाक्तीच मांत्री चैव शिवागमे ।
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ॥

श्री गुरू से प्राप्त मङ्गलमयी दीक्षा तीन प्रकार की है, स्पर्श दीक्षा, दृग् दीक्षा और मानस दीक्षा। सामर्थ्यवान् गुरु के अनुग्रह से शिष्य को शिव हस्त से स्पर्श करने पर स्पर्श दीक्षा, और गुरु के दिव्य दृष्टिसे देखने पर दृग् दीक्षा, एवं सिद्ध गुरू के सत्यसङ्कल्प के मनन से मानस दीक्षा होती है। दीक्षा से कुण्डलिनी शक्ति जागने के कारण उसके द्वारा ही सब साधन स्वतः होते हैं, इसलिये साधक शिष्य को अपनी ओर से कुछ भी करने की आवश्कता नहीं होती।

परमात्मा शिवजी ने शिवागम में शाम्भवी, शाक्ती और मान्त्री इन तीन दीक्षाओं का उपदेश दिया है, इन दोक्षाओं का विषय वर्तमान काल में सम्प्रदाय वालों ने अपनी अयोग्यता के कारण और ही रूप में परिणत कर दिया है, इसलिये जिनको परम्परा से ये दीक्षायें प्राप्त नहीं हैं वे न दे सकते हैं और न कह सकते हैं। ये कल्याणकारी दीक्षायें शास्त्र में नाना प्रकार को हैं।

नाम क्रिया भेद से दीक्षा के भेद

चतुर्विधातु सा दीक्षा ब्रह्मणा भाषिता पुरा ।
क्रियावती कलावती वर्ण वेधमयी पुनः ॥
ताः क्रमेण च कथ्यन्ते सर्व सम्पत्प्रदाः शुभाः ।

उसी दीक्षा को ब्रह्मा ने पहिले क्रियावती, कलावती, वर्णमयी और वेधमयी ऐसे चार प्रकार की कहा है। सब सम्पत्तियों को देने वाली शुभ रुप वे दीक्षायें अब क्रम से कही जाती हैं, जो नाना प्रकार की हैं।

स्मार्त्ती मानसिकी यौगी चाक्षुषी स्पार्शिकी तथा।
वाचिकी मांत्रिकी होत्री शास्त्री चेत्यभिषेचिका ॥
चतुर्विधा सा सन्दिष्टा क्रियावत्यादि भेदतः।
क्रियावती वर्णमयी कलात्मावेधमय्यपि ॥
आणवी बहुधा दीक्षा शांभवीच तथा पुनः।
एकैका वापि विद्वद्भिः पठयते शास्त्रकोविदैः ॥

स्मार्ती दीक्षा, मानसिकी दीक्षा तथा योग दीक्षा और चाक्षुषी दीक्षा, स्पार्शिकी दीक्षा, वाचिकी दीक्षा एवं मांत्री दीक्षा तथा होत्र। शास्त्री और अभिषेचिका आदि हैं। वैसे तो पहिले ब्रह्मा ने क्रियावती आदि भेद से दीक्षायें चार प्रकार की कही हैं, परन्तु वे क्रियावती, वर्णमयी, कलात्मा, वेधमयी तथा आणवी और शाम्भवी आदि दीक्षायें कई प्रकार की हैं, इसलिये शास्त्र को जानने वाले विद्वान् पुरुष एक एक करके नाना प्रकार से कहते हैं।

श्री महेश्वर के कथनानुसार दीक्षा स्पर्श द्वारा, दृष्टि द्वारा और मनः द्वारा तीन प्रकार से होती है, इसलिये तीन ही प्रकार की है। ऐसे ही श्री ब्रह्मा जी के कथनानुसार ये दीक्षायें मन द्वारा, वाणी

द्वारा दृष्टि द्वारा और स्पर्श द्वारा चार प्रकार से होती हैं, इसलिये मानसिकी, वाचिकी, चाक्षुषी, स्पार्शिकी चार प्रकार की कहलाती हैं, परन्तु नाना प्रकार के नाम इसलिये दिये जाते हैं कि स्थान, समय और अधिकारी भेद से उपास्य देवता, उपासक की रुचि और उपासना की विभिन्नता के कारण सब की क्रियायें एक सी नहीं होने से और कर्म विधि की पृथक्ता से नाम में भिन्नता हो जाती है।

तुम लोग समझते होंगे कि ज्ञान देने की चीज़ नहीं है, कहने ही से होता है जैसा कि वर्तमान समय में वाचिक वैदान्तिक लोग कहते हैं, परन्तु तुम्हें समझना चाहिये कि जहां कहने से न हो सके वहां देने से तो अवश्य होता है। इसी तरह यह दीक्षा का विषय ज्ञान भी कहने से नहीं होता, वरन देने से ही होता है इसलिये जिन्हें यह प्राप्त नहीं है वह तुम्हें क्या दे सकेंगे? अतएव तुम निश्चय पूर्वक जान लो कि दीक्षा एवं ज्ञान कहने का विषय नहीं है, देने की चीज़ है, इसलिये कहने से नहीं होगा, देने से ही होगा। जिसने इसको दिया है और लिया है वही जानते हैं, इसलिये यह कहने सुनने की बात नहीं है लेने और देने की है।

ये दीक्षायें देश, काल और पात्रानुसार दी जाती हैं, इसलिये वेदान्त मार्ग में शाम्भवी दीक्षा, योग मार्ग में योग तथा शाक्ती दीक्षा, तन्त्र मार्ग में वेध दीक्षा, मन्त्र मार्ग में मान्त्री एवं आणवी दीक्षा और भक्ति मार्ग में वैष्णवी दीक्षा होती है, इसी तरह तुम्हारे वेदान्त, योग, मन्त्र, तन्त्र, भक्ति इत्यादि जितने भी

सम्प्रदाय हैं उन सब में दीक्षा की विधि परम्परा से चली आती है। इसलिये तुम लोग संसार बन्धन से मुक्त होने के लिये सब ही अपने अपने गुरुओं से दीक्षा लेते हो, परन्तु काल प्रभाव से अथवायों कहो कि अपने दुर्भाग्य से जैसा कि श्री महेश्वर और ब्रह्मा जी ने कहा है वैसा दीक्षा का फल-ज्ञान और परम शान्ति, वर्तमान में तुम में से कोई विरला ही भाग्यवान् अनुभव करता होगा।

वेदान्त मार्ग में शाम्भवी दीक्षा

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्यदेहके।
जनयेद्यः समावेशं शांभवं सहि देशिकः॥

सामर्थ्य वाले गुरु लोग कृपा करके देखने से, स्पर्श से, या वाक्य से ही शिष्य में अपने ज्ञान का समावेश कर देते हैं, ऐसे शाम्भव शम्भु पद प्राप्त कराने वाले शिवभावापन्न गुरु की कृपा होने से शिष्य को कुछ भी करना धरना नहीं पड़ता।

गुरोरालोकमात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि।
सद्यः सञ्जायते ज्ञानं सा दीक्षा शांभवीमता॥
देशिकानुग्रहेणैव शिवता व्यक्तकारिणी।
सेयन्तु शांभवी दीक्षा शिवादेशस्य कारिणी॥
चरणद्वयसंभूता शांभवी शीघ्रसिद्धिदा।

परम कृपालु गुरु देव के दृष्टि मात्र से, या उनके वाक्य से, अथवा सिद्ध गुरु के स्पर्श से ही दीक्षा द्वारा गुरु की शक्ति शिष्य में

संक्रमण होती है तब तत्काल ही शिष्य को दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। गुरु की महती कृपा और शिष्य के सौभाग्य से इस महान् आत्म–साक्षात्कार की जो अवस्था जिससे आती है उसको तत्त्व वेत्ताओं ने शम्भु पद प्राप्त कराने वाली शाम्भवी दीक्षा माना है। श्री गुरु के अनुग्रह की महानता सब ही शास्त्र कहते हैं, जिनकी कृपा से शिव रूपता समाधि का स्वरूप व्यक्त हो जाता है, जो प्रसन्न होकर अपने शिष्यों पर अनुग्रह करते हैं तो दीक्षा द्वारा अपने शिष्यों को कृतार्थ कर देते हैं, जिससे कृतार्थता आती है वह मङ्गलमयी शाम्भवी दीक्षा है जो शिवजी का आदेश करती है। शिव शक्ति के समायोग चरण द्वय से सम्यक् प्रकार से दी हुई शाम्भवी दीक्षा शीघ्र सिद्धि देती है।

योग मार्ग में योग-दीक्षा तथा शाक्ती-दीक्षा

योगोक्तक्रमतो योगी शिष्यदेहं प्रविश्यतु ।
गृहीत्वा तस्य चात्मानं स्वात्मानं योजनात्मिका ।।
योग दीक्षेति सा प्रोक्ता मलत्रय-विनाशिनी ।

अब योग साधन के लिये योग दीक्षा कही जाती है, उसका कार्य शक्तिमान् योगी गुरु के सामर्थ्य पर निर्भर करता है। "निर्माण चित्तान्यस्मिता मात्रात्" इस सूत्र की सूचना है कि योगी लोग अपने एक रूप से एक होते हुए भी आवश्यकतानुसार अपने सङ्कल्प से दूसरों में भिन्नाभिन्न चित्त निर्माण कर देते हैं और उन निर्माण चित्तों से भिन्न भिन्न व्यक्तियों में विभिन्न

प्रकार की क्रियायें उत्पन्न कर देते हैं, इसलिये योग का प्रभाव और सामर्थ्य श्री महेश्वर के अनुग्रह से प्रकाश्य और प्रसिद्ध हैं। "आदि विद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान्परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।" पातञ्जलदर्शन व्यासभाष्य में पञ्चशिखाचार्य के सांख्य तंत्रोक्त प्रथम सूत्र से ज्ञात होता है कि आदिविद्वान् परमऋषि भगवान् कपिल मुनि ने अपने जिज्ञासु शिष्य आसुरि मुनि को सांख्य तंत्र के ज्ञान का उपदेश निर्माण चित्त द्वारा प्रदान किया था–

प्रकृति के प्रभु योगियों के लिये विश्व में कोई कार्य असाध्य वा असम्भव नहीं है, वे अपने योग बल से जिसको जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं यही तो योग में विशेषत्व है, अतएव योग शास्त्र के बिना अन्यान्य शास्त्र के साधन के ज्ञान का विषय अनुमान और आगम पर ही निर्भर करता है जिसका फल कालान्तर में वा जन्मान्तर में मिलेगा, परन्तु योगशास्त्र कथित साधन के ज्ञान का फल तत्काल वा क्रम से इसी जन्म में एवं स्वल्प समय में मिलता है इसलिये ही योग शास्त्र और योग साधन को प्रत्यक्ष दर्शन कहा है।

श्री महेश्वर कथित योग के उक्त क्रमानुसार योगी शिष्य के शरीर में प्रवेश कर उसकी आत्मा को ग्रहण करके अपनी आत्मा में योजना करें अर्थात् शिष्य को अपना सामर्थ्य देके निर्विकल्प में जोड़ देवें जिसमें गुरु के आत्म सामर्थ्य से शिष्य को ज्ञान एवं समाधि की सिद्धि होती है और अणिमादि महा ऐश्वर्य की

प्राप्ति होती है, ऐसी और तीनों मलों का नाश करने वाली योग-दीक्षा कहलाती है।

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहे प्रविश्यतु।
गुरुणा योग-मार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा ॥
सिद्ध्यैच शक्तिमालोक्य त्वया केवलया शिशोः।
निरूपायं कृता दीक्षा शाक्तेयी परिकीर्त्तिता ॥
अभिसन्धिं विनाचार्यशिष्ययोरुभयोरपि -
देशिकानुग्रहेणैव शिवता व्यक्तकारिणी ॥

गुरु योगमार्ग से शिष्य के शरीर में प्रवेश करके ज्ञानचक्षु-दिव्यदृष्टि से जो दीक्षा करते हैं वह ज्ञानवती शाक्ती दीक्षा है शाक्ती दीक्षा में गुरु को चाहिये कि शिष्य का सामर्थ्य देख लेवें कि वह इस शक्ति के योग्य है कि नहीं तब दीक्षा देवें; क्योंकि और जितनी भी दीक्षायें हैं उन सब में शिष्य को गुरु के पास आना पड़ता है अथवा गुरु को ही शिष्य के पास जाना आवश्यक होता है, परन्तु इस शाक्ती दीक्षा में यह बात नहीं है, शाक्ती दीक्षा गुरु की योगशक्ति सेहोती है, इसलिये और कोई उपाय की आवश्यकतानहीं होती, शाक्ती-दीक्षा का यह विशेषत्व है कि जहां गुरु और शिष्य का मिलना नहीं हो सकता ऐसी निरुपाय अवस्था में भी यह दीक्षा गुरु की शक्ति से होती है इसलिये इसको शाक्ती दीक्षा कहा है।

गुरु और शिष्य किसी कारण से मिल न सकें, शिष्य दूर देश में हो और गुरु भी जहां तहां विचरते हों, परन्तु शिष्य को दीक्षा लेने की इच्छा है और गुरु को भी दीक्षा देने की इच्छा है तथापि मिलने का संयोग नहीं है, ऐसी दशा में गुरु और शिष्य के परस्पर मिले बिना भी गुरु के अनुग्रह से शिव भाव को व्यक्त करने वाली ज्ञानवती शाक्ती दीक्षा हो जायगी, श्री महेश्वर के अनुग्रह से योग में ऐसा होना स्वाभाविक है, इसलिये इसमें सन्देह होने का कोई कारण नहीं है, जहां इस विषय की जो घटनायें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं वहां अनुमान की भी आवश्यता नहीं होती। देश, काल और पात्र के शुभसंयोग से योग साधन में सब कुछ हो जाता है।

शाक्ती शक्तिभवा दीक्षा शक्तिः श्रीपर कुण्डली।
तस्याः प्राण विलोमेन प्रवेशः परशम्भवे ॥

श्री महेश्वर कहते हैं कि गुरु की योग शक्ति से होने वाली यह शाक्ती दीक्षा है, और शक्ति पराकुण्डलिनी देवी है, गुरुदेव अनुग्रह करके दीक्षा देते हैं तो कुण्डलिनी शक्ति जागने से सब शक्तियों का भण्डार खुल जाता है, शिष्य को अपनी ओर से कुछ भी नहीं करना पड़ता, स्वयं कुण्डलिनी देवी सब क्रियायें कराती है जिससे शिष्य का प्राण पश्चिम मार्ग सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगता है और कुण्डलिनी शक्ति प्राण के साथ ब्रह्म नाड़ी में प्रवेश करके सहस्रार में परशिव में संलग्न होती है, तब प्राण ब्रह्म-रन्ध्र में लय हो जाता है, सुषुम्ना मार्ग से कुण्डलिनी शक्ति का

परशिव में प्रवेश करना ही शाक्ती दीक्षा है। इसलिये शक्ति के शम्भु में मिल जाने से शिष्य के लिये और कोई उपाय नहीं रहता, तब गुरु का गुरु होना और शिष्य का शिष्य होना सार्थक होता है, शिष्य चाहे गुरु के समीप हो या दूर हो परन्तु शिष्य को गुरु की शक्ति का आदेश-ज्ञान-सर्वदा काल अथवा आवश्यक्तानुसार मिलता रहे, शिष्य गुरु के ज्ञान का बोध करे ऐसी गुरु के सामर्थ्य से होने वाली यह ज्ञानवती शाक्ती दीक्षा है।

मन्त्रमार्ग में मान्त्री तथा आणवी दीक्षा

मंत्र मार्गानुसारेण साक्षात् कृतेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चोद्बोधयेच्छिष्यं मंत्रदीक्षेति सोच्यते ।।
स्वयं मंत्रतनुर्भूत्वा संक्रमं मंत्रमादरात् ।
दद्यात् शिष्याय सा दीक्षा मांत्रीमलत्रिघातिनी ।।
मांत्री मंत्रोद्भवादीक्षा तच्छक्तिः स्वात्मसम्भवा ।
मंत्र यंत्रार्चनादुक्तक्रियाभिर्भोगमोक्षदा ।।

गुरुमन्त्रमार्गानुसार अपने इष्ट देवता का साक्षात्कार करके उनका शिष्य को बोध करावें यह मन्त्र दीक्षा कहलाती है, गुरु को चाहिये कि स्वयं मन्त्र मूर्ति होकर आदर से प्रेमपूर्वक शिष्य में मन्त्र शक्ति का ऐसा संक्रमण करें कि जिससे शिष्य का मन्त्र चैतन्य हो जाय, और मन्त्र प्रतिपाद्य शक्ति कुण्डलिनी देवी जाग जाय, एवं शिष्य को अपने उपास्य देवता की सिद्धि हो जाय।

ऐसी शिष्य को जो दीक्षा दी जाती है वह मल का विशेष करके नाश करने वाली मान्त्री दीक्षा है। यह मान्त्री दीक्षा मन्त्र से ही होती है और इसकी शक्ति गुरु के आत्म बल से प्रकाश पाती है, तब शिष्य को गात्र-कम्प होने लगता है, इष्ट देवता के आवेश से शिष्य आप्लुत हो जाता है, उसके मन प्राण और शरीर में विकृति आ जाती है और भाव समाधि हो जाती है, यह मान्त्री-दीक्षा मंत्र, यन्त्र, गुरु पूजन, अर्चनादि क्रियाओं से की जाती है जिसका फल प्रवृत्ति परायण रहने से भोग और निवृत्ति परायण रहने से मोक्ष होता है इसलिये मान्त्री दीक्षा भोग और मोक्ष दोनों देती है।

आणवी दीक्षा

मंत्रार्चनासनन्यासध्यानोपचारकादिभिः ।
दीक्षा सा आणवी प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी ॥
शिवशक्तिसमायोगाज्जन्मान्तरकृतात् शुभात् ।
शिवपूजानुसन्धानात् कर्मसाम्यं यदा भवेत् ॥
शिव एव तदा साक्षादाणव्यादीक्षया भवेत् ।
सर्वेषामेव दीक्षाणां मुक्तिः फलमखण्डितम् ॥

जैसा कि मन्त्र शास्त्र में कहा है, मन्त्र, अर्चन, आसन, न्यास, ध्यान, उपचार आदि की यथा शास्त्र विधि से जो दीक्षा दी जाती है वह आणवी दीक्षा कहलाती है, शिव शक्ति के

समायोग से तथा पूर्व जन्म के प्रबल पुण्य प्रताप से अथवा शिव पूजनादि के अनुसन्धान से जब साधक के कर्म साम्यता को प्राप्त होते हैं तो आणवी दीक्षा से साधक शिवरूप हो जाता है। अतएव निष्काम परमार्थ बुद्धि रख कर शास्त्र विधि अनुसार उपयुक्त सामर्थ्य वाले गुरुओं से उनकी प्रसन्नता करके जो दीक्षायें ग्रहण की जाती हैं उन सब दीक्षाओं का फल अन्त में अखण्ड मुक्ति होता है।

तन्त्र मार्ग में वेध दीक्षा

ततो वेधमयीं वक्ष्ये दीक्षां संसारमोचिनीम् ।
ध्यायेच्छिष्यतनोर्मध्ये मूलाधारे चतुर्दले ॥
त्रिकोणमध्ये विमले तेजस्त्रयविजृम्भिते ।
वलयत्रयसंयुक्तां तड़ित्कोटिसमप्रभाम् ॥
शिवशक्तिमयीं देवीं चेतनामात्रविग्रहाम् ।
सूक्ष्मां सूक्ष्मतरां शक्तिं भित्वा षट् चक्रमञ्जसा ॥
गच्छन्ति मध्यमार्गेण दिव्यां परशिवावधि ।
सहैवमात्मनः शक्तिं वेधयेत्परमेश्वरे ॥

संसार बन्धन का नाश करने वाली वेधमयी दीक्षा कही जाती है, गुरु को चाहिये कि शिष्य के शरीर में चतुर्दल मूलाधार-कमल में तीन प्रकार के रङ्ग युक्त विमल तेजत्रय से देदीप्यमान त्रिकोण योनिस्थान के मध्य में निवास करने वाली त्रिवलयाकार

कोटि २ विद्युत-पुञ्ज के सदृश महाप्रकाशयुक्त शिवशक्तिमयी कुण्डलिनी देवी का ध्यान करें कि उसका चेतना मात्र ही दिव्य शरीर है और जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तरशक्ति है, उसको मध्यमार्ग सुषुम्ना में प्रवेश कराकर षट् चक्र का वेध करके उस दिव्य शक्ति को पर-शिव में विलीन करें। इसी तरह गुरु अपनी आत्मशक्ति सञ्चार करके शिष्य को परमेश्वर के स्वरूप का बोध कराके उसमें स्थित करे।

गुरूपदिष्टमार्गेण वेधं कुर्याद्विचक्षणः।
पाप मुक्तः क्षणाच्छिष्यश्छिन्नपाशस्तथा भवेत्॥
बाह्यव्यापारनिर्मुक्तो भूमौ पतति तत्क्षणात्।
सञ्जातदिव्यभावोऽसौ सर्वं जानाति शाम्भवि।
यदस्ति वेधकं तत्तत्स्वयमेवानुभूयते।

श्री महेश्वर से परम्परा गुरु के उपदेश किये हुये मार्गानुसार जब ज्ञानी पुरुष वेध दीक्षा देते हैं तो उस समय गुरु के शक्तिपात के कारण शिष्य पाप रहित होकर पाश मुक्त हो जाता है और वह बाह्य व्यापार को भूल कर तत्क्षण ही भूमि में गिर जाता है-दिव्य भाव को प्राप्त हुआ वह सब जान जाता है एवं दीक्षा में गुरु का जो भाव होता है शिष्य स्वयं अनुभव करता है।

प्रबुद्धः सहसा शिष्यस्तत्सौख्यं वहुधेश्वरि।
वेधविद्धः शिवः साक्षान्न पुनर्जन्मतां व्रजेत्॥

एषा तीव्रतरा दीक्षा भवबन्धविमोचिनी ।
शिवभावप्रदा देवि त्वां शपे कुलनायिके ॥

अतएव तत्काल ही शिष्य को बोध हो जाता है जिससे महा-सुख अनुभव करता है, ऐसी सुख कर वेध दीक्षा को प्राप्त करने वाला साक्षात् शिव रूप हो जाता है– उसका पुनर्जन्म नहीं होता, श्री महेश्वर शपथ करके कहते हैं कि ऐसी तीव्र तर वेध दीक्षा भव-बन्धन का नाश करने वाली शिव भाव–कल्याण को प्राप्त कराती है ।

आनन्दश्चैव कम्पश्चोद्भवो घूर्णा कुलेश्वरि ।
निद्रा मूर्च्छा च वेधस्य षडवस्थाः प्रकीर्तिताः ॥
दृश्यन्ते षड्गुणा ह्येते वेधनेन कुलेश्वरि ।
वेधितो यत्र कुत्रापि तिष्ठेन्मुक्तो न संशयः ॥
वेधदीक्षाकरो लोके सद्गुरुर्दुर्लभः प्रिये ।
शिष्योऽपि दुर्लभस्तादृक् पुण्ययोगेन लभ्यते ॥
न दद्यादस्य कस्यापि इत्याज्ञा परमेश्वरि ।

इसलिये गुरु देव के अनुग्रह से वेधदीक्षा होती है तो आनन्द, कम्प, उद्भव, तथा घूर्णा, निद्रा और मूर्च्छा ये छः अवस्थाएं शिष्य में प्रकाश पाती हैं, ये छः अवस्थायें होने लगें तो समझ लेना कि वेधदीक्षा हो गई, वेधदीक्षा लाभ होने पर शिष्य चाहे जहां कहीं भी रहे निःसन्देह वह मुक्त हो जाता है, ऐसी परम कल्याणकर

वेधदीक्षा देने वाला सद्गुरु इस लोक में दुर्लभ है और ऐसा शिष्य भी दुर्लभ है जो पुण्य के योग से मिलता है, इसलिये श्री महेश्वर की यही आज्ञा है कि जिसको तिसको यह वेधदीक्षा नहीं देनी चाहिये।

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्न जायते ॥

शक्तिपात के अनुसार ही तो शिष्य अनुग्रहीत होता है, जहां शक्ति का पात नहीं होता वहां सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव सामर्थ्य हीन गुरु द्वारा शिष्य का मङ्गल नहीं हो सकता, शाम्भवी दीक्षा, योग दीक्षा और वेध दीक्षा में शक्तिपात किया जाता है, फलस्वरूप आत्मज्ञान का अभ्युदय होता है, इसलिये शिष्य लक्ष्यार्थ बोध करने में समर्थ होजाता है। योग वेदान्त और तन्त्र कथित दीक्षा का विषय शक्ति-पात का कार्य अतीव आश्चर्य जनक प्रभावशाली एवं प्रत्यक्ष फल-प्रद है।

वशिष्ठ मुनि का गुरुत्व और शक्तिपात का लक्षण

हे वशिष्ठ महाभाग ब्रह्मपुत्र महानसि ।
गुरुत्वं शक्ति-पातेन तत्क्षणादेव दर्शितम् ॥

श्री शम्भु के इस प्रसाद का परिचय महा ज्ञानी वशिष्ठ मुनि ने भगवान् श्री रामचन्द्र को कराया था, श्री रामचन्द्र को जब संसार से वैराग्य हो गया तब उन्होंने खाना पीना ओढ़ना, पहनना इत्यादि राजवैभव का सुख त्याग दिया था और शरीर से जीर्ण

शीर्ण हो गये तब ऋषि मुनि एकत्र होकर उन्हें राज सभा में लिवा लाये, और उनको उपदेश देने लगे, उस समय विश्वामित्र ऋषि ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ मुनि से कहा कि हे महाभाग वशिष्ठ! तुम ब्रह्मा के बड़े पुत्र हो, गुरु हो तुमने श्री रामचन्द्र के प्रति शक्तिपात करके तत्क्षण ही अपने गुरुपने का परिचय दिया है। जिसके फल स्वरूप पीछे बृहत् योग-वाशिष्ठ-ज्ञान का ग्रन्थ बना।

अधर्मधर्मयोः साम्ये जाते शक्तिः पतत्यसौ ।
ज्ञानात्मिका परा शक्तिः शंभोर्यास्मिन्निपातिता ॥

जब गुरु के अनुग्रह से अथवा तुम्हारे प्रबल पुण्य प्रताप से धर्माधर्म रूप संस्कार साम्यता को प्राप्त होते हैं तब श्री शम्भु से आई हुई ज्ञानात्मिका परा शक्ति का गुरु द्वारा शक्तिपात होता है। तब तुम्हें यह लक्षण होंगे।

देहपातस्तथा कम्पः परमानन्दहर्षणे ।
स्वेदो रोमाञ्च इत्येतच्छक्तिपातस्य लक्षणम् ॥
शिष्यस्य देहे विप्रेन्द्राः धरण्यां पतितेसति ।
प्रसादः शाङ्करस्तस्य द्विजाः सञ्जात एव हि ॥
यस्य प्रसादः सञ्जातो देहपातावसानकः ।
कृतार्थ एव विप्रेन्द्रा न स भूयोऽभिजायते ॥

शक्तिपात होते ही शरीर भूमिष्ठ हो जाता है, कम्प होने लगता है मन अतीव प्रसन्नता लाभ करता है एवं परम आनन्दित

होता है, जिससे रोमाञ्च हो जाते हैं, प्रस्वेद आजाता है। इस प्रकार शक्ति के पात से देहादि पात के लक्षण प्रकाश पायें तो तुम्हें समझना चाहिये कि मङ्गलमय महेश्वर की परम कृपा हुई, जब गुरु के शक्ति सञ्चार से देहपात आदि शुभ लक्षण तुम में होने लगें तो समझना कि तुम कृतार्थ होगये, तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं हो सकता।

तस्य प्रसादयुक्तस्य विद्यावेदान्तवाक्यजा।
दहत्यविद्यामखिलां तमः सूर्योदये यथा ॥
शक्तिपातविहीनोऽपि सत्यवाग्गुरुभक्तिमान्।
आचार्याच्छ्रुतवेदान्तः क्रमान्मुच्येत बन्धनात् ॥
शक्तिपातेन संयुक्ता विद्या वेदान्तवाक्यजा।
यदा यस्य तदा तस्य विमुक्तिर्नात्र संशयः ॥

इसी तरह श्री शङ्कर के प्रसाद को प्राप्त होकर शिष्य के वेदान्तकथित विद्या जनित ब्रह्मज्ञान से समस्त अविद्या रूपी अन्धकार दूर हो जाता है जैसे सूर्य उदय होने से अन्धकार चला जाता है। जो शिष्य शक्तिपात-शम्भु के प्रसाद रूपी गुरु-कृपा से वञ्चित है ऐसा सत्यवादी गुरु भक्ति वाला शिष्य गुरु से वेदान्त वाक्य सुनकर क्रम से संसार बन्धन से मुक्त होता है परन्तु शक्तिपात से युक्त शिष्य को वेदान्त शास्त्र प्रतिपादित विद्या जिस समय प्राप्त होती है निस्सन्देह वह उसी समय ही मुक्त हो जाता है। अतएव वेदान्त कथित साधन से इसी जन्म

में जीवन मुक्ति लाभ करने में श्री महेश्वर का प्रसाद-गुरु-कृपा-होना अति आवश्यक है।

अधिकारी भेद से शक्ति पात के फल में तारतम्य

आदिमध्यावसानेषु योग्ये शक्तिर्निपातिता।
अधमा मध्यमाः श्रेष्ठाः शिष्या देवि प्रकीर्त्तिताः॥
आदौ भक्तिर्भवेद्देवि दीक्षार्थं समुदन्ति ये।
पुनर्विह्वलहृष्टास्ते आदि योग्या इतीरिता॥
यथा विहङ्गमः शीघ्रं फल एव निषीदति।
तथा ज्ञानोपदेशश्च कथितः कुल नायिके॥

श्रीशम्भु से परम्परा से आई हुई शक्ति का सामर्थ्य एक समान होते हुए भी शिष्य के उत्तम, मध्यम तथा अधम अधिकारी होने से उसे दीक्षा के समय शक्तिपात के विकास का लक्षण भी तीन प्रकार का हो जाता है जिसका फल तत्काल क्रम से एवं विलम्ब से मिलता है। जिनमें पहिले से ही भक्ति होती है, जो शिष्य दीक्षा ग्रहणार्थ प्रसन्नता से उत्सुक होते हैं एवं दीक्षा के पश्चात् हर्ष से विह्वल हो जाते हैं, वे आदि योग्य अधिकारी उत्तम कहलाते हैं उनको दीक्षा-जनित ज्ञान का फल तत्काल ही मिलता है जैसे पक्षी सीधा ही फल पर बैठ जाता है।

दीक्षासमयसम्प्राप्ता ज्ञानाज्ञानविवर्जिताः ।
भक्त्या प्रध्वस्त सुधियो मध्य योग्याश्चेते स्मृताः ॥
यथा कपिश्च शाखायाः शाखामुलङ्घ्य यत्नतः ।
फलं प्राप्नोति धर्मस्य चोपदेशस्तथा प्रिये ॥

दीक्षा का समय आने पर जो ज्ञानाज्ञान से रहित हैं जिनको दीक्षा और योग सम्बन्धी अभिज्ञता ही नहीं है परन्तु दीक्षा प्राप्त होते ही, जिनको भक्ति का उदय होता है जिससे बुद्धि निर्मल होती है, ऐसे मध्य योग्य शिष्य अथवा मध्यम अधिकारी कहलाते हैं, उनको उपदेश का फल क्रम से मिलता है जैसे कपि वृक्ष की एक शाखा से दूसरी शाखा उल्लङ्घन करके फल को ग्रहण करता है।

आदौ भक्तिविहीना ये मध्य भक्तास्तु ये नराः ।
अन्ते भक्ताः प्रबुद्धा स्युर्ह्यन्तयोग्या भवन्ति ते ॥
यथा पिपीलिका मन्दं मन्दं वृक्षाग्रगं फलम् ।
चिरेणाप्नोति धर्मोपदेशश्चापि तथा स्मृतः ॥

जिसमें पहिले भक्ति होती हो नहीं, दीक्षा के बाद भक्ति उत्पन्न होती है ऐसे अन्त में ज्ञान भक्ति युक्त होने वाले अन्त योग्य अधिकारी अधम-कनिष्ट कहलाते हैं और वे गुरु प्रदत्त कृपा का फल चिरकाल में पाते हैं जैसे चींटी मन्द २ चल के वृक्ष के ऊपर फल पर पहुँचती है अतएव अधिकारी के भेद से गुरु कृपा के फल में समयान्तर हो जाता है।

भक्ति मार्ग में भी शक्तिपात है

जैसे वेदान्त सम्प्रदाय और योग में दीक्षित होने से गुरु-कृपा के कारण आत्मशक्ति जागने से मन, प्राण और शरीर में नाना प्रकार की क्रियायें उत्पन्न होकर शिष्य आत्म ज्ञान के लिये आवश्यक साधन करने लग जाते हैं तैसे ही भक्तिमार्ग में भी श्री शम्भु का प्रसाद गुरु कृपा से वा पूर्व के संस्कार से अथवा अपने पुरुषार्थ से आत्मशक्ति कुण्डलिनी देवी जाग जाती है।

अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः ।
ते बहिर्विक्रियाप्राया. प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया ॥
नृत्यं विलुंठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम् ।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वास भूमा लोकानपेक्षिता ॥
लालास्रावोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्कादयोऽपिच ।
ते शीताः क्षेपणाश्चेति यथार्थाख्या द्विधोदिताः ॥

तब भक्ति साधन में भी शक्तिपात से चित्तस्थ भाव के व्यञ्जक सब वाह्य लक्षण प्रकाश पाते हैं, नाचना, गीत गाने लग जाना, भूमि लुण्ठन–भूमि में लोट पोट हो जाना, उच्चस्वर से श्री भगवान् का नाम लेकर चिल्लाना, शरीर का तोड़ना मरोड़ना, हुङ्कार करना, जृम्भण–जमाई आना, दीर्घ २ श्वास लेना और छोड़ना, लोक की निन्दा स्तुति के प्रति उपेक्षा, लालास्राव–मुख से लार गिरना, अट्टहास–खिलखिला कर हंसना, घूर्णहिक्का–

हिचकी आना, शीत बोध और हस्त पादादि का क्षेपण-पटकना इत्यादि लक्षण प्रकाश पाते हैं।

चित्तंसत्वी भवत् प्राणे न्यस्यत्यात्मानमुद्भटम् ।
प्राणस्तु विक्रियां गच्छन्देहं विक्षोभयत्यलम् ॥
तदास्तंभादयो भावा भक्तदेहे भवन्त्यमी ।
ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथवेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः ॥

जब चित्त स्वस्थ होकर प्राण में लीन होता है अर्थात् प्राणायाम हो जाता है एवं प्राण में नाना प्रकार की आभ्यान्तरिक क्रियायें होने लगती हैं, तब प्राण की क्रिया शक्ति के कारण शरीर विशेष रूप से क्षोभित होता है तब भक्त साधक के शरीर में स्तम्भनादि भाव-समूह प्रकाश पाते हैं जैसे स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वर भेद, कम्प, शरीर की वर्ण विकृति, अश्रु और निद्रा ये आठ सात्विक भाव होने लगते हैं।

चत्वारि क्ष्मादि भूतानि प्राणो जात्ववलम्बते ।
कदाचित् स्वप्रधानः सन्देहे चरति सर्वतः ॥
स्तम्भन्भूमिस्थितः प्राणस्तनोत्यश्रु जलाश्रयः ।
तेजस्थः स्वेदवैवर्ण्ये प्रलयं वियदाश्रितः ॥
स्वस्थ एव क्रमान्मन्दमध्यतीव्रत्व भेद भाक् ।
रोमाञ्चकम्पवैस्वर्यान्यत्र त्रीणितनोत्यसौ ॥

जब प्राण देह के मध्य में कभी पृथ्वी, जल, तेज और आकाश इस भूत चतुष्टय में से किसी एक को अवलम्बन करके शरीर में सर्वत्र विचरता है, प्राण भूमि तत्त्व का अवलम्बन करने से स्तम्भ भाव को प्राप्त होता है और जल तत्त्व का आश्रय करने से अश्रुपात एवं तेज तत्त्व में स्थित होने से स्वेद और वर्ण-विकृति होती है, ऐसे ही प्राण आकाश तत्त्व में स्थित होने से प्रलय, भाव समाधि वा मूर्च्छा, तन्द्रा अथवा निद्रा होती है जब प्राण स्वस्थ होता है, तब मन्द, मध्यम और तीव्र भेद से यथा क्रम रोमाञ्च, कम्प एवं स्वर विक्रिया ये तीन भाव प्रकाश पाते हैं।

अतएव श्री गुरु के शक्तिपात से मन, प्राण और शरीर में अध्यात्म प्रसाद के आनन्द का आविर्भाव हो जाता है, चाहे साधक शिष्य वेदान्ती हो चाहे योगी हो अथवा साकार उपासना करने वाला भगवान् का भक्त हो, चाहे कुछ भी न जानता हो तथापि आत्म शक्ति, प्राणकला उद्बोधन के लक्षण सब ही में प्रकाश पा जाते हैं; इसलिये श्री महेश्वर कथित महा योग साधन, ज्ञात से वा अज्ञात से ज्ञानी, ध्यानी, योगी, यति, भक्त इत्यादि सब को ही करना पड़ता है। अतएव तुम लोग निश्चय पूर्वक समझ लो कि योग, भक्ति, ज्ञान पृथक् नहीं हैं।

ज्ञान के बीज का गर्भ

श्री शम्भु का प्रसाद सब के लिये एक सा है, शक्तिपात से शिष्य लक्ष्यार्थ का बोध कर लेता है उसकी बुद्धि में ज्ञान के बीज का अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है, बहुधा परीक्षा करके देखा गया है कि

यदि शिष्य वास्तविक हो शास्त्र कथनानुसार उपयुक्त अधिकारी है तो जैसा कहा वैसा ही तत्काल दीक्षा का फल मिलता है नहीं तो ऐसे कथित अनुभव होने पर भी शिष्य को साधना करनी पड़ती है। शिष्यों के शरीर, मन, प्राण आत्म ज्ञान के उपयुक्त बन जांय, इसलिये उनकी शक्ति उनके संस्कार अनुसार स्वतः ही वेदान्त, योग अथवा भक्तिमार्गानुसार साधन कराती है। अतएव शक्तिपात मात्र से ही सब शिष्य साधन मुक्त नहीं होते, तथापि उनके मन, प्राण और शरीर में एक प्रकार का विशेष परिवर्तन हो जाता है।

जैसे गर्भ स्थापन मात्र से ही सन्तान प्रसव नहीं होती, परन्तु स्त्री गर्भ रहने का लक्षण जान जाती है तैसे ही गुरु के शक्तिपात से हर एक शिष्य अनुभव करता है कि ज्ञान के बीज का गर्भ स्थापन होगया, समय में ज्ञान उत्पन्न होगा ही, जैसे गर्भवती नारी गर्भ वृद्धि का लक्षण अनुभव करती रहती है तैसे ही हर एक शिष्य कुण्डलिनी शक्ति की क्रिया से ज्ञान वृद्धि का अनुभव करता रहता है, जैसे जननी गर्भस्थ सन्तान की सुरक्षार्थ आवश्यकीय नियम पालती रहती है तैसे ही शिष्य को भी ज्ञान रक्षार्थ शास्त्र कथित नियम पालन करने चाहिये।

जैसे गर्भधारिणी उदरस्थ सन्तान की रक्षा न करके दुष्ट बुद्धि से नष्ट करना चाहे तो गर्भ नष्ट हो सकता है तैसे ही गुरु द्वारा किया हुआ शक्ति पात रूप गर्भ भी शिष्य के दुष्ट कर्म के आचरण से अथवा शास्त्र कथित आवश्यक धर्मपालन न करने

से नष्ट हो सकता है, क्योंकि जब तक ज्ञान उत्पन्न न हो तब तक धर्माधर्म रूप संस्कार नष्ट नहीं होते, इसलिये ज्ञान उत्पन्न होने तक शास्त्र कथित विधि वाक्य का पालन करना आवश्यक है। वैसे तो सद्विद्या का बीज नष्ट नहीं होता, पुनः जन्मान्तर में बोध के बीजाङ्कुर प्रस्फुटित होने का संयोग उपस्थित हो सकता है, इसलिये जब तक ज्ञान परिपक्व न हो तब तक स्वेच्छा से नहीं वर्तना चाहिये।

श्री महेश्वर की कृपा से गुरु द्वारा या तुम्हारे प्रबल पुण्य प्रताप से तुम्हारी आत्मसत्ता जाग उठती है उसको योगी लोग कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं, भक्ति मार्ग वाले आह्लादिनी शक्ति कहते हैं और वेदान्त वाले चितिशक्ति या आत्मसत्ता कहते हैं और तन्त्र मन्त्र वाले महामाया आद्या शक्ति, कुल कुण्डलिनी, इत्यादि नाना प्रकार के नामों से कहते हैं, इसके अनुग्रह की सभी कामना करते हैं क्योंकि इसकी सहायता से ही तुम परमात्मा से मिल सकोगे, इसलिये ज्ञान, योग और भक्ति ये तीन मार्ग मेरी प्राप्ति के मैंने ही कहे हैं और तीनों में ही दीक्षा द्वारा तुम मुझसे ही मिलोगे।

दीक्षा का फल मोक्ष है

यया दीक्षितमात्रेण जायन्ते प्रत्ययाः प्रिये।
सा दीक्षा मोक्षदा ज्ञेया शेषास्तु जनसेविकाः॥
उपासनाशतेनापि या चिन्ता नैव नश्यति।

तां दीक्षामाश्रयेद्यत्नात् श्रीगुरोर्मन्त्रसिद्धये ॥
रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत् ।
दीक्षान्वितस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते प्रिये ॥

अतएव जिस दीक्षा में दीक्षित होने से तात्कालिक अनुभव हो, आत्मप्रतीति विश्वास हो वही दीक्षा मोक्ष देने वाली जानना, जिसमें उक्त अनुभव न हों वह दीक्षा केवल नाम मात्र की ही है, उससे फल कुछ नहीं होता क्योंकि सैकड़ों प्रकार की उपासना करने पर भी जिस चिन्ता का नाश नहीं होता, वह यत्नपूर्वक गुरु से दीक्षित होने पर सर्वथा नष्ट हो जाती है, जैसे रासायनिक क्रिया के संयोग से पारद निकृष्ट धातु को भेदन करके सुवर्ण कर देता तैसे ही दीक्षा के संस्कार से तुम शिव रूप हो जाओगे।

दीक्षाग्निदग्ध कर्माऽसौ मायाविच्छिन्नबन्धनः ।
गतां परां ज्ञाननिष्ठां निर्बीजस्तु शिवो भवेत् ॥
गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं विप्रस्यापि च विप्रता ।
दीक्षासंस्कार-सम्पन्ने जातिभेदो न विद्यते ॥
येन पूजितमात्रेण चाब्रह्मभुवनान्तिकम् ।
पूजितं तेन सर्वं स्याद्दीक्षितेन न संशयः ॥

दीक्षा रूपी अग्नि से तुम्हारे कर्मसमूह दग्ध हो जांयगे, कर्म का बीज दग्ध होने के कारण माया का बन्धन कट जायगा तब तुम ज्ञान की पराकाष्ठा-निर्बीज समाधि-को प्राप्त होकर शिव

रूप हो जाओगे। इस दशा में तुम्हारी जाति–शूद्र की शूद्रता और विप्र की विप्रता—का अभिमान जाता रहेगा, क्योंकि दीक्षा संस्कार सम्पन्न होने से जाति भेद नहीं रहता। शिव की पूजा करने से यहां से लेकर ब्रह्म लोक तक की पूजा हो जाती है, अतएव दीक्षित व्यक्ति ने उन सब की पूजा कर ली, इसमें कोई सन्देह नहीं—शक्ति जागरण के लिये ही पूजा की जाती है और दीक्षा द्वारा शक्ति जागृत् होती है।

दीक्षितस्य न कार्यं स्यात्तपोभिर्नियमव्रतैः।
न तीर्थक्षेत्रगमनैर्न च शारीरयन्त्रणैः॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
न फलन्ति प्रिये तेषां शिलायामुप्तबीजवत्।

विधि पूर्वक दीक्षा द्वारा संस्कृत होने से दीक्षित को नित्य नैमित्तिक कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती, इसलिये कष्ट करके जप, तप, नियम, व्रत, तीर्थयात्रा आदि शारीरिक कष्ट करने की भी दीक्षित को आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दीक्षा से ही उक्त जप, तप आदि के फल की प्राप्ति हो जाती है, अतएव जो लोग अदीक्षित हैं वे जो कुछ जप, पूजादि क्रिया करते हैं उनको दीक्षित न होने के कारण पत्थर पर बोये हुए बीज की तरह कुछ भी नहीं फलता।



नवम प्रकाश

कुण्डलिनी शक्ति की स्थिति और स्वरूप

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः ।
सर्वेषां योगतंत्राणां तथाधारो हि कुण्डली ॥

योग शास्त्र के सिद्धान्त से कुण्डलिनी, मन, प्राण, नाद और विन्दु ये पाँच विषय ब्रह्माण्ड के यावतीय तत्त्व को ज्ञात कराते हैं इसलिये योग साधन में इनका जानना अतीव आवश्यक है, अतएव कुण्डलिनी के विषय में जो कुछ कहा जाय थोड़ा ही है क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति ही योग को आधार रूपा है, जैसे वन, पर्वत, नदी सरोवर और समुद्र युक्त पृथ्वी का आधार शेष नाग-ब्रह्म की शक्ति-है तैसे ही सब योग तन्त्र का आधार कुण्डलिनी शक्ति है ।

ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम् ।
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धं त्रिवलयान्विताम् ॥
कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भूलिङ्ग वेष्टिणीम् ।
तामुत्थाप्य महादेवीं प्राणमन्त्रेण साधकः ॥

सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया ।
अहिवत् सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञका ॥

इसलिये मूलाधार में निवास करने वाली सूक्ष्म शक्ति–इष्ट-देवता कुण्डलनी देवी–का ही तुम्हें ध्यान करना है जो साढ़े तीन फेरे लगा करके स्वयंभू लिङ्ग का वेष्टन किये है जिसका रूप कोटि २ विद्युत्पुञ्ज के सदृश है उस महादेवी को प्राणमन्त्र अर्थात् प्राणायाम से उत्थान करके ब्रह्मरन्ध्र में लाओगे तब तुम्हारी मुक्ति होगी, वह सोती हुई शक्तिनागिनी के सदृश चञ्चल अपनी ही प्रभा से महा तेजरूप से स्वयं प्रकाशित होती है, सुषुम्ना में संलग्न मूलाधार के सन्धिस्थान में जैसे सर्प कुण्डलीमार के सूक्ष्म होकर निष्क्रिय निर्जीव सा मृतवत् समाधिस्थ रहता है तैसी ही यह वाग्देवी यावतीय मन्त्र बीज रूपिणी कुण्डलाकार होकर स्वर्ण के सदृश कान्तिविशिष्ट प्रतीयमान होती है।

ज्ञेयाशक्तिरियं विष्णोर्निर्भया स्वर्णभास्वरा।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयप्रसूतिका ॥
मूलाधारस्थ वन्ह्यात्मतेजो मध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराथ तेजसी ॥
महा कुण्डलिनीप्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी।
शब्दब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः ॥
शक्ति कुण्डलिनी नाम विसतन्तु निभा शुभा।

इसको ही निर्भय पद देने वाली विष्णु की शक्ति जानना क्योंकि यही वैष्णवी महाशक्ति सत्व, रज और तमोगुण की जननी है जो मूलाधारस्थ अग्नि तेजपुञ्ज के मध्य में व्यवस्थित

स्वयं देदीप्यमान जीवशक्ति कुण्डलिनी कहलाती है और प्राणरूप से प्राणियों में प्रकाश पाती है, तुम भी उसे अपने अन्तर में प्राणायाम द्वारा प्राणाकार से देखोगे, वह परब्रह्मरूपिणी महाशक्ति कुण्डलिनी सब कुछ ही कही गई है, वह शब्दब्रह्ममयी देवी के रूप की एक से एक बढ़कर अनेकानेक आकृति है जिसकी वर्णना की नहीं जासकती, ऐसे अवर्णनीय दिव्यरूप वाली स्वयं अनुभव में आने योग्य जो शक्ति है उसका नाम कुण्डलिनी देवी है, जो मूलाधार कमल के गर्भ में निहित है और सब शुभ कामनाओं को देने वाली है। इस महाशक्ति कुण्डलिनी देवी की वर्णना योगशास्त्र में नाना प्रकार से की गई है जो अतीव आश्चर्यजनक है।

कन्दोर्ध्वे कुण्डली-शक्तिर्मुक्तिरूपाहि योगिनाम्।
बन्धनाय च मूढानां यस्तांवेत्ति स योगवित्॥

वह आत्म शक्ति मूलाधार कन्द के ऊपर सोई हुई है, तुम अज्ञानी उसको नहीं जानते इसलिये तुम्हारे बन्धन का हेतु है परन्तु योगी लोग इस शक्तिको जानते हैं सुतरां वह उन्हें मोक्ष देने वाली कहलाती है।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डलिनी परदेवता।
शायिता भुजगाकारा सार्द्ध त्रय वलयान्विता॥
यावत्सा निद्रिता देहें तावज्जीवः पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगविधेरपि॥

आधार शक्ति निद्रायां विश्वं भवति निद्रया ।
तस्यां शक्तिप्रबोधेन त्रैलोक्यं प्रति बुध्यते ॥

वह पर देवता कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में साढ़े तीन फेर लगा कर भुजङ्गाकृति होके सोई हुई है, जब तक वह शक्ति निद्रित है तब तक तुम जीव पशु की तरह अज्ञान में हो, कुण्डलिनी शक्ति के जागे विना चाहे कितना ही योग क्यों न किया जाय तथापि ज्ञान नहीं होता क्योंकि आधार शक्ति के सोने से सारा ब्रह्माण्ड सोया हुआ है और उसके जागने से त्रैलोक्य जाग उठता है अतएव कुण्डलिनी के जागे विना तुम्हारे ज्ञान के सब साधन निष्फल हैं ।

गुदामेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् ।
शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते ॥
यत्र कुण्डलिनी नाम पराशक्तिः प्रतिष्ठिता ।
यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते ॥
यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः ।
तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् ॥

गुदा और मेढ्र के बीच में त्रिकोण मूलाधार चक्र है वही जीव रूप शिव का स्थान कहा जाता है और वहीं पर ही कुण्डलिनी नाम की पराशक्ति प्रतिष्ठित है जिससे प्राण वायु और अग्नि उत्पन्न होते हैं, जिससे विन्दु उत्पन्न होता है जिससे नाद की

प्रवृत्ति होती है और जिससे हंस एवं मन उत्पन्न होते हैं, ऐसा यह काम रूप नाम का पीठ स्थान-मूलाधार कमल सब कामनाओं के फल को देने वाला है।

आधाराज्जायते विश्वं विश्वं तत्रैव लीयते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुपादं समाश्रयेत् ॥
आधारं यो विजानाति तमसः परमश्नुते ।
तस्य विज्ञानमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥
आधारचक्रमहसा विद्युत्पुञ्जसमप्रभा ।
तदा मुक्तिर्न सन्देहो यदि तुष्टः स्वयं गुरुः ॥
केचिद्वदन्ति चाधारं सुषुम्ना च सरस्वती ।
महामाया महालक्ष्मीर्महादेवी सरस्वती ॥
आधारशक्तिरव्यक्ता यया विश्वं प्रवर्तते ।

इसलिये आधार शक्ति से ही विश्व उत्पन्न होता है और उसी में ही लीन होता है इसको जानने के लिये सर्वतः गुरु-कृपा का आश्रय लेना चाहिये, जो इस आधार शक्ति के स्थान मूलाधार को विशेष रूप से जानता है वह अज्ञान रूप अन्धकार से परे उस ज्योतिर्मय चिदात्मा को जानकर परमसुखी और कृतार्थ होता है क्योंकि आधार शक्ति के जानने मात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, विद्युत्सम महाप्रभ मूलाधार कमल में स्थित प्रकाशमान आत्मशक्ति के अवलोकन से मुक्ति होती है,

यदि गुरु स्वयं प्रसन्न हो जांय तो मुक्ति होने में क्या संदेह है। इसको कोई आधार कहते हैं कोई सुषुम्ना कहते हैं कोई कुण्डलिनी, सरस्वती, आधार शक्ति कहते हैं, यही महा माया महा लक्ष्मी है यही महा देवी सरस्वती है यही अव्यक्त आधार शक्ति है जिसके कारण तुम्हारे मन, प्राण, शरीर की क्रियायें सम्पादित होती हैं इससे ही सारा विश्व प्रवृत्त हो रहा है।

वेद में महायोग

वेदाधीनं महायोगं योगाधीनो च कुण्डली।
कुण्डल्यधीनं चित्तं तु चित्ताधीनं चराचरम्॥
मनसः सिद्धि मात्रेण शक्तिसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
यदि शक्तिवशीभूता त्रैलोक्यं स्यात्तदा वशे॥

जिससे सब कुछ जाना जाता है, जो तुम्हारी सभी कामना– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पूर्ण करने के लिये दिव्य ज्ञान का प्रकाशक है, जो साक्षात् ईश्वर के वाक्य हैं, जिसमें तुम्हें कहने सुननेकी आवश्यकता ही नहीं एवं कोई सन्देह ही नहीं कर सकता, जो स्वतः प्रमाण है, ऐसा वेद सब विद्याओं का भण्डार है, वेद से ब्रह्म विद्या की प्राप्ति होती है. इसलिये वेद के आधीन महा– योग है, और महायोग के आधीन कुण्डलिनी शक्तिहै एवं कुण्ड- लिनी के आधीन चित्त है और चित्त के आधीन चराचर जगत् है, अतएव इस मन की सिद्धि होने से शक्ति की सिद्धि निश्चय हो जाती है यदि शक्ति वश में हो तो त्रैलोक्य भी वश में होजाता है

इसलिये विना कुण्डलिनी शक्ति के जागे ज्ञान, योग और भक्ति का फल तुम नहीं पा सकते, तुम्हें अपनी आत्मशक्ति का विकास करना ही चाहिये।

इस आत्मशक्ति के जगाने के लिये ही गुरु की आवश्यकता है इसलिये सब शास्त्र वार २ यही कहते हैं कि गुरु करना ही चाहिये क्योंकि विना गुरु किये कोई भी कर्म करोगे तो उसका फल मिलने में वर्षों लग जायेंगे परन्तु उपयुक्त गुरु के अनुग्रह से तत्काल आत्मप्रतीति-विश्वास होगा जिससे तुम्हारे सब धर्म कर्म फलने लग जायेंगे, तुम्हें भी श्रद्धा और सन्तोष से प्रसन्नता रहेगी और तुम्हारा मन भी निःशङ्क, निर्भ्रान्त हो जायगा, जैसे कठिन व्याधिग्रस्त व्यक्ति को उपयुक्त अच्छे वैद्य की प्राप्ति होने से वह निःशङ्क और निर्भय होकर जीवन का सुख पाने की आशा में आनन्दित रहता है तैसे ही तुम भी आत्मसुख की आशा से जीवनमुक्ति का सुख अनुभव कर सकोगे।

दीक्षा रहित ज्ञान निष्फल है

विना दीक्षा फलं नस्यादयमिनां शिवशासने ।
सा च न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्य पुरः सरम् ॥
देवि दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न सद्गतिः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥

महा योग शास्त्र में श्री महेश्वर का कथन है कि शिव कथित कल्याण मार्ग में दीक्षित नहीं होने से साधक का ज्ञान

ध्यान, योग, जप, तप, भक्ति, कर्म धर्म कुछ नहीं फलता है इसलिये यदि तुम अपना मङ्गल चाहो तो तुम्हें दीक्षित होना ही चाहिये और यह दीक्षा भी बिना आचार्य गुरु के नहीं हो सकती, सो दीक्षा के लिये ही तुम्हें गुरु के पास जाना होगा क्योंकि दीक्षा विहीन मनुष्य को न तो किसी धर्म कर्म की सिद्धि होती है और न सद्गति–मोक्ष-ही होती है इसलिये सर्वतो भाव प्रयत्न करके गुरू से दीक्षित होना ही आवश्यक है।

कुण्डलिनी जागरण के लिये दीक्षा की आवश्यकता

प्रत्येककर्मसाफल्यं यत्प्रबोधे प्रजायते ।
अतस्तस्याः प्रबोधाय शक्तेर्यत्नवान भवेत् ॥

क्योंकि अनादि काल से तुम्हारी कुल कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है, इसलिये तुम्हारे धर्म कर्म का फल नहीं होता सुतरां तुम वास्तविक सुख शान्ति भी नहीं पा सकते हो, केवल ऊपर के मन से अपने को सुखी और सत्कर्म करने वाला भले ही समझ लो, परन्तु विचार करके देखोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे जप, तप, ज्ञान, ध्यान, भक्ति, योग, धर्म, कर्म इत्यादि सब का फल कुण्डलिनी के सोने के कारण अन्धकार से आवृत है।

मन को प्रबोध देके सुख की नक़ल करने से वा मन से ही सुख मान लेने से वास्तविक सुख नहीं मिलता, सच्चा सुख देने वाली तुम्हारी आत्म शक्ति सुप्त है उसको जगाने के लिये तुम्हें

दीक्षा लेनी है, जब तुम आत्म ज्ञान की दीक्षा ले लोगे तो तुम्हारे धर्म कर्म के संस्कार की विशृङ्खल अवस्था शृङ्खलाबद्ध होकर साम्यता प्राप्त करेगी तब तुम्हें अपने किये हुये सत्कर्मों का फल– सत्य सुख अनुभव में आने लगेगा, जिसके प्रताप से तुम सहज ही अपने अन्तरात्मा से तुष्टि पाने लगोगे, तब तुम्हें वास्तविक ही सुखी होने का सौभाग्य प्राप्त होगा, उस अवस्था में यह जगत् तुम्हें आनन्द रूप भासने लगेगा।

अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्।
अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशं तु सुचक्षुषाम्॥

तुम लोग संसार को दुःख रूप समझते हो और घृणा प्रकाश करते हो एवं कहते हो कि यह संसार कारागार है, महादुःख और भय रूप है, जिससे तुम महा भय मानते हो वही संसार आत्म शक्ति जागने से तुम्हारे लिये महा सुख रूप हो जायगा, क्योंकि यह संसार ही सुख दुःख अनुभव करने के लिये है, यह संसार अज्ञानियों को महा दुःख रूप है परन्तु ज्ञानियों के लिये ईश्वर की क्रीड़ा का स्थान यह जगत् आत्म ज्ञान रूप दिव्य दृष्टि से आनन्द रूप है क्योंकि अन्धों के लिये सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है और नेत्र वालों के लिये सब जगह प्रकाश ही प्रकाश है; यदि यह जगत् ही न होता तो तुम जन्म ही क्यों लेते, तुम्हें ईश्वर के ज्ञान की आवश्यकता ही क्या थी, अतएव यह जगत् ही ईश्वर के ज्ञान का बोध कराता है।

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावत् सा निद्रिता प्रभो ।
तावत् किञ्चिन्न सिद्ध्येत मन्त्रयंत्रार्चनादिकम् ॥
जागर्ति यदि सा देवि बहुभिः पुण्यसञ्चयैः ।
तदा प्रसादमायान्ति मंत्र यंत्रार्च्चनादयः ॥

मूलाधार में जब तक कुडणलिनी शक्ति निद्रित है तब तक तुम्हारे जप, तप, ज्ञान, ध्यान, पाठ, पूजन, मन्त्र, यन्त्र इत्यादि साधनों में से किसी की किञ्चित् मात्र भी सिद्धि नहीं होगी, परन्तु सौभाग्य वश गुरु कृपा से अथवा तुम्हारे प्रबल पुण्य प्रताप से यदि कुण्डलिनी देवी जाग्रत हो गई तो तुम्हारे जप, तप, ज्ञान, ध्यान, योग, मन्त्र, तन्त्र, पाठ, पूजन उलटा सीधा जो कुछ भी करोगे सब फलने लग जायगा और यह संसार जिसको तुम कारागार समझते हो वही तुम्हारे लिये स्वर्ग का नन्दन-वन बन जायगा, अतएव जैसे रोगी व्यक्ति को दिव्य औषधि मिलते ही उसके सब रोग का दुःख दूर हो जाता है तैसे ही तुम्हारी आत्म-शक्ति जागने से भव व्याधि जाती रहेगी; निरोगी को शारीरिक, मानसिक कष्ट नहीं होता, तैसे ही तुम्हारी आधि और व्याधि चले जाने से सुख दुःख का स्वप्न मिट जायगा, केवल आनन्द ही आनन्द मनाते रहोगे।

दीक्षा के लिये सामर्थ्यवान् गुरु होना चाहिये

इस आनन्द का तत्काल प्रदर्शन कराने वाला गुरु है, गुरु के द्वारा ही तुम ईश्वर से मिलोगे, वैसे तो यह परमानन्द तुम्हारे

अन्तर में ही है उसे तुम अपने परम पुरुषार्थ से भी पा सकते हो उसमें तुम्हें वर्षों तो क्या कई जन्म लग जांयगे क्योंकि जिस दशा को अब तुम पहुँचे हो उसमें ऐसा प्रबल पुरुषार्थ तुम्हारे लिये सहज नहीं है, इसलिये केवल गुरु कृपा से ही इसी जन्म में पाने की आशा कर सकते हो, परन्तु वह गुरु भी योग्य सामर्थ्य वाला होना चाहिये और साथ ही तुम्हारीं भो अच्छी योग्यता चाहिये; तुम चाहो कि हमें व्यास और वशिष्ठ जैसे गुरु मिल जाय तो तुम्हें भी उनके शिष्य रामचन्द्र और जैमिनि जैसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये, नहीं तो तुम जैसे हो वैसे ही गुरु भी तुम्हें मिलेंगे तुम्हारी योग्यता ही तुम्हें गुरु को प्राप्त करायेगी।

अतएव व्यास, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर जैसे गुरु की तुम इच्छा रखते हो तो तुम्हें भी शुकदेव, जैमिनि, गौड़पाद, गोविन्दपाद, शङ्कराचार्य जैसी योग्यता प्राप्त करनी होगी तब विना प्रयत्न के ही व्यास जैसे गुरु तुम जहां होगे वहीं मिल जांयगे, यदि तुम अकर्मण्य प्रमादी, आलसी रहोगे तो तुम्हें वैसे ही पशु सदृश संसार में बांधने वाले गुरु मिलेंगे, इसलिये पहिले तुम शिष्य योग्य होने के लक्षण जान लो और योग्य बनो, पीछे गुरु से प्राप्त ज्ञान भी समझ लो और आत्म ज्ञान की दीक्षा का फल–आत्म–प्रतीति, विश्वास और गुरुप्रदत्त शक्ति का सामर्थ्य लक्ष्यार्थ बोध इत्यादि तुम्हें जानना आवश्यक है क्योंकि समधर्मी न होने से मेल नहीं हो सकता, इसलिये गुरु के उपयुक्त

शिष्य और शिष्य के उपयुक्त ही दीक्षा दी जाती है जिसका फल तत्काल वा क्रम से अथवा विलम्ब से मिलता है।

पहिले ही कहा जा चुका है कि अच्छे समर्थ गुरु के लिये तपस्या करनी पड़ती है तैसे ही उपयुक्त शिष्य के लिये भी गुरु का अनुसन्धान करना पड़ता है, शिष्य की योग्यता ही गुरु का गुरुत्व और शिष्य का शिष्यत्व सिद्ध करती है, जैसे योग्य वैद्य से चिकित्सा कराने वाला रोगी वैद्य पर आत्म समर्पण करके अपना जीवन मरण वैद्य के अधीन कर देता है तैसे ही भव व्याधि ग्रस्त शिष्य का मङ्गल, अमङ्गल भवरोग चिकित्सक गुरु के आधीन होता है, वैद्य का परम कर्त्तव्य है कि रोगी को उपयुक्त चिकित्सा से रोग मुक्त कर दे, तथा गुरु का भी परम कर्त्तव्य है कि शिष्य का अपने आत्म सामर्थ्य से कल्याण कर दे अतएव गुरु शिष्यों को अपने जीवन यात्रा निर्वाह की वृत्ति न बनावें और शिष्य भी गुरु को मात्र उपदेश देने वाला ही पर्याप्त न समझें वरन् अपना कर्त्तव्य यथेष्ट रूप से पालन करें, इस प्रकार कर्त्तव्य बोध से गुरु शिष्य दोनों ही आत्मभाव से मङ्गल को प्राप्त होवें यही परम्परा का नियम है, गुरु शिष्य का यह आत्म सम्बन्ध शास्त्र की दृष्टि से अतीव महत्व का है अतएव सोच समझ कर दोनों को सम्बन्ध करना चाहिये नहीं तो दोनों ही अधोगामी होंगे; शास्त्र की मर्यादा की रक्षा नहीं करके कोई अपने अभीष्ट की सिद्धि नहीं कर सकता।

गुरुशिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपिशिवाज्ञया।

किञ्चित्कालं विधायेत्थं स्वशिष्याय समर्पयेत् ॥
तस्यापि नाधिकारस्य योगः साक्षात् परे शिवे ।
देहान्ते शाश्वती मुक्तिरिति शङ्करभाषितम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साक्षात् परशिवोदितम् ।
सम्प्रदाय परिच्छिन्नं सदा कुर्यात् गुरुं प्रिये ॥
शक्तिसिद्धिमसिद्धार्थं परीक्ष्य विधिवत् गुरु ।
पश्चादुपदिशेन्मन्त्रमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

जगत् में जो २ महान् पुरुष गुरु पद में आये हैं वे सब त्यागी और तपस्वी हुए हैं, उन्होंने सांसारिक सुख का त्याग ही किया है, जिनको परमानन्द स्वरूप आत्म सुख की प्राप्ति हो गई है वे जगत् के सुख की वाञ्छा नहीं करते, तो भी उनके प्रारब्धानुसार भौतिक सुख स्वतः ही आ जाता है, तथापि वे उनका मन से त्याग ही करते हैं, स्वेच्छा से नहीं भोगते, परन्तु दूसरों के हित के लिये देश कालानुसार अनिच्छा और पर इच्छा से भोगते हैं क्योंकि जिनके पास अधिक से अधिक सुख और महान् से महान् सामर्थ्य होता है वे उसके पण में उतना ही त्याग स्वीकार करते हैं इसलिये उसमें ही उनकी महानता होती है जिनका कुवेर भण्डारी है साक्षात् अन्नपूर्णा देवी जिनकी गृह लक्ष्मी है जो अणिमादि महा ऐश्वर्य वाले जगत् के स्वामी हैं ऐसे परम कृपालु शिवजी भिक्षाटन करके त्याग की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हैं।

इसलिये शिवजी की आज्ञा से गुरु विरक्त होने पर भी, शिष्य के अधिकार के लिये थोड़ा समय ठहर कर शिष्य की परीक्षा करके तब अपने शिष्यों को शक्ति दान करें, क्योंकि जिसका योग में अधिकार नहीं है वैसा शिष्य साक्षात् पर-शिव में योग नहीं कर सकता इसलिये श्री महेश्वर कहते हैं कि जो शिष्य अधिकारी है उसकी देहान्त में शाश्वती मुक्ति हो जाती है अतएव जैसा महेश्वर ने कहा है तैसे, गुरु प्रयत्न करके शिष्य का अधिकार देख कर तब कृपा करें, और शिष्य भी गुरु की परीक्षा करके परम्परागत सामर्थ्य वाले को ही गुरु करें, शक्ति की सिद्धि व्यर्थ न हो, इसलिये गुरु को चाहिये कि शिष्य की विधिवत्-अच्छी तरह परीक्षा करके पश्चात् मन्त्र उपदेश करें नहीं तो अन्यथा निष्फल होगा।

गुरु शिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम् ।
उपदेशं ददद् गृह्णन् प्राप्नुयातां पिशाचताम् ।।
अशास्त्रीयोपदेशञ्च यो गृह्णाति ददाति हि ।
भुञ्जाते तावुभौ घोरे नरकानेकविंशतीः ।।
अन्यायेन तु यो दद्याद् गृह्णात्यन्यायतश्च यः ।
ददतो गृह्णतो देवि कुल शापो भविष्यति ।।

यदि मोह से गुरु और शिष्य परस्पर परीक्षा न करके उपदेश देते हैं और लेते हैं, ऐसे उपदेश देने वाले गुरु एवं लेने वाले शिष्य दोनों ही पिशाचता को प्राप्त होते हैं क्योंकि अध्यात्म-

पथ में कार्य अकार्य की विधि का निर्णय शास्त्रही करते हैं इसलिये शास्त्रविधि को न मान कर जो अशास्त्रीय उपदेश देते हैं वे ज्ञान का उपदेश देने वाले गुरु और लेने वाले शिष्य घोर नरकगामी होते हैं अतएव अन्याय से जो गुरु शिष्य करते हैं और जो शिष्य गुरु करते हैं ऐसे उपदेश देने वाले गुरु और लेने वाले शिष्य दोनों को ज्ञान के पथ में मिथ्या व्यवहार के कारण ब्रह्म शक्ति का शाप लगता है, इसलिये प्रतारणा से दिये हुए उपदेश और लिये हुवे ज्ञान का फल विपरीत हो जाता है क्योंकि ज्ञान के मार्ग में सत्यता, सरलता और शुद्धता ही फलीभूत होती हैं अतएव विधि वाक्य का उलङ्घन करके स्वेच्छाचारिता से किये हुए कर्मों का फल भी विपरीत हो जाता है।

ज्ञानेन क्रियया वापि गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् ।
संवत्सरं तदर्द्ध वा तदर्द्ध वा प्रयत्नतः ॥
धनेच्छाभयलोभाद्यैरयोग्यं यदि दीक्षयेत् ।
देवता शापमाप्नोति कृतञ्च निष्फलं भवेत् ॥

इसलिये गुरु को चाहिये कि प्रयत्न करके शिष्य की ज्ञान से, क्रिया से अच्छी तरह एक वर्ष छः मास कम से कम तीन मास परीक्षा करके तब दीक्षा दे, धन की इच्छा से या किसी के भय से अथवा लोभ से गुरु के अयोग्य शिष्य को दीक्षा दे देने से देवताओं का शाप लगता है जिससे किया हुआ सब निष्फल हो जाता है। श्री महेश्वर के कथनानुसार शिव शासन की रक्षा करना गुरु और शिष्य दोनों का कर्त्तव्य है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥

इसलिये जो लोग शास्त्र विधि का त्याग कर स्वेच्छा से वर्तते हैं वे न तो सिद्धि को पाते हैं, न सुख ही प्राप्त कर सकते हैं और न परागति ज्ञान ही पा सकते हैं, इसलिये शास्त्र विधि अनुसार कर्तव्य करने से ही अभीष्ट की सिद्धि होती है क्योंकि ज्ञान के विषय में शास्त्र ही प्रमाण है ।

असच्छिष्येष्वभक्तेषु यज्ज्ञानमुपदिश्यते ।
तत्प्रयात्य पवित्रत्वं गो क्षीरं श्वघृतादिव ॥
सच्छिष्यायातिभक्ताय यज्ज्ञानमुपदिश्यते ।
तज्ज्ञानं बहु शास्त्रार्थं तद्विदध्यादखण्डितम् ॥

जो शिष्य असत् कर्म वाला मिथ्याचारी हैं और जो भक्ति श्रद्धादि सद्गुणों से रहित है ऐसे अभक्त को ज्ञान का उपदेश दिया जाय तो वह अपवित्रता को प्राप्त हो जाता है, जैसे गौ का दूध, घी पवित्र होने पर भी कुत्ते को खिलाने से खाज हो जाती है; उसके बाल उड़ जाते हैं और कुत्ता किसी काम का नहीं रहता, इसी तरह अपात्र को दिया हुआ ज्ञान अनर्थ उत्पन्न करता है । उत्तम गुण वाले सद् शिष्य को और श्रद्धावान् अति

भक्त को जो ज्ञान दिया जाता है वह ज्ञान बहुत से शास्त्रों क प्रयोजन सिद्ध करता है, जिसका कोई खण्डन नहीं कर सकत अर्थात् शास्त्र में तर्क युक्ति और प्रमाण के द्वारा जो ज्ञान निष्प हुआ है उसको सत् शिष्य और अति भक्त साधक प्राप्त करते उसका किसी शास्त्र से खण्डन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वही ज्ञान शास्त्र के अर्थ का प्रकाशक होता है।

असत् शिष्य के लक्षण

जैसे सब कार्य के लिये तुम लोग सब ही दक्ष नहीं होते तैसे ही अध्यात्म ज्ञान के भी तुम सभी अधिकारी नहीं हो सकते, इसलिये शास्त्र में पात्रापात्र का निर्णय किया गया है क्योंकि सौभाग्य और दुर्भाग्य के लक्षण, तुम लोगों के स्वाभाविक व्यवहार ही परिचय कराते हैं अतएव अधिकारी अनधिकारी का निर्देश करके शास्त्र में उपयुक्त गुण वालों को ही आत्म ज्ञान का अधिकारी कहा है, इसलिये जो लोग शास्त्र कथित सद्गुणों से रहित हैं उनकी बुद्धि में ब्रह्म ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, ऐसे अनधिकारी भाग्यहीन शिष्य के लक्षण श्री महेश्वर कहते हैं कि:—

दुष्टवंशोद्भवं दुष्टं गुणहीनं निरूपितम् ।
परशिष्यश्च पाषण्डं षण्डं पण्डितमानिनम् ॥
हीनाधिकविकाराङ्गं विकलावयवान्वितम् ।
पंगुमन्धश्च बधिरं मलिनं व्याधिपीडितम् ॥

उत्सृष्टं दुर्मुखं चापि स्वेच्छावेशधरं परम् ।
दुर्विकाराङ्गचेष्टादि गतिभीषण भीषणम् ॥

जो दुष्ट वंश में उत्पन्न हुआ हो, स्वयं दुष्ट हो, सद्गुणों से रहित हो, क्लीव हो, जिसको अपने पाण्डित्य का अभिमान हो, दूसरे किसी का शिष्य हो, जो बहुत से गुरु करता हो, ऐसे पाखण्डी मनुष्य को गुरु शिष्य न बनावे–वह आत्म ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है, जिसमें कोई अङ्ग न्यून हो अथवा अधिक हो, जिसका कोई अङ्ग विकृत या नष्ट हो गया हो, जो पङ्गु हो अंधा वा बहरा हो, अथवा जो सदा मलीन या रोगी बना रहता हो, उस को गुरु-शिष्य न करे; जो घर वा समाज से बहिष्कृत हो, जिसको गुरु ने वा माता पिता ने अथवा गांव वालों ने त्याग दिया हो, जिसको देखने से खेद, दुःख भय उत्पन्न हो ऐसा दुर्मुख जो स्वेच्छा से वेष बदलने वाला हो, जो कभी तो साधु बन जाता है और कभी नौकरी कर लेता है ऐसा बहु रूपिया, अङ्ग के विकृत होने से जिसकी चेष्टा और गति विधि भीषण हो, जिसकी वाणी से क्षोभ और भय हो, ऐसा मनुष्य ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है ।

निद्रातन्द्राजडालस्य द्यूतादिव्यसनान्वितम् ।
अन्तर्भक्तिकरं क्षुद्रं बाह्यभक्तिविवर्जितम् ॥
व्यलीकवादिनं शुष्कं प्रेषितं प्रेरकं शठम् ।
धनस्त्रीशुद्धिरहितं निषेधविधिवर्जितम् ॥

रहस्यभेदकं वापि देवि कार्यविनाशकम् ।
मार्जारबकवृत्तिश्च रन्ध्रान्वेषणतत्परम् ॥

जो निद्रा तन्द्रा आलस्य और जड़ता से अकर्मण्य है, जुआ खेलने वाला व्यसनी है, उदारता से रहित कृपण क्षुद्रचित्त वाला है क्षुद्र विषयों में लगा है ऐसा मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान का विधि निषेध को मानता न हो, बना के झूठ बोलता हो, दूसरे का अधिकारी नहीं है, जो भेजा हुआ आया हो, जिसने बिना विवाह किये ही दूसरे की स्त्री रक्खी हो, जो अन्याय से धन संग्रह करता हो, एवं स्वयं बुद्धिमान् बनता हो—ऐसे शठ को गुरु शिष्य न करे—वह तत्त्व ज्ञान का अधिकारी नहीं है। जो दूसरों के दोष ही देखता रहता है, देखने में बगुला और बिल्ली की तरह निरीह मालूम पड़ता हो, अथवा महा घातक कर्म करने वाला हो, जो गुप्त भेद की रक्षा न कर सकता हो, न कहने की बात कह देता हो, ऐसा कार्य का नाश करने वाला मनुष्य ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है।

मायाविनं कृतघ्नञ्च प्रछन्नान्तरदायकम् ।
विश्वासघातिनं द्रोहकारिणंपापकर्मिणम् ॥
आततायिनमेकाक्षं कुत्सितं कूटसाक्षिणम् ।
सर्वप्रतारकं देवि सर्वोत्कृष्टाभिमानिनम् ॥
असत्यं निष्ठुरासक्तं ग्राम्यादिबहुभाषिणम् ।
कुविचारकुतर्कादिकारकं कलहप्रियम् ॥

जो अपने वास्तविक भाव को छिपाकर छल से अपना अर्थ साधन कर लेता हो, विश्वास घाती हो, जो उपकार के बदले में अपकार करने वाला कृतघ्नी हो, जो गुप्त रहस्य को प्रकट कर देता हो, अर्थात् परस्पर में भेद उत्पन्न कराता हो, एवं द्रोह कराने वाला हो, अथवा जो पाप कर्म में लगा हो, ऐसा पापी मनुष्य ज्ञान का अधिकारी नहीं है। जो आततायी है, देखने में कुत्सित काना है तथा मैले दिल का है, जो सब को ही धोखा देता है, अपना उपकार हो चाहे न हो, तथापि दूसरे का सर्व नाश करने वाला है, जो झूंठी साक्षी देता है, तथा अपने को ही सबसे अच्छा समझता है, ऐसा अभिमानी मनुष्य शिष्य होने के योग्य नहीं है। जो मिथ्यावादी एवं निष्ठुर और आसक्ति वाला है, जो दुनियां भर का बखेड़ा करता रहता है, जो कदर्य-भाषी कुतार्किक, बकवादी बुरे विचार रखने वाला है तथा बिना प्रयोजन ही झगड़ा करने वाला है, ऐसा मनुष्य आत्म ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है।

वृथाऽऽक्षेपकरं मूर्खं चार्वाकं वाग्विडम्बकम् ।
परोक्षे दूषणकरं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥
वाग्ब्रह्मवादिनं विद्याचौरमात्मप्रशंसकम् ।
गुणासहिष्णुमहितमात्मक्रोधनमम्बिके ॥
वाचालं दुर्जनसखं सर्वलोकविगर्हितम् ।
पिशुनं परसन्ताप्यं सम्विदग्रणयं प्रिये ॥

जो मूर्ख है– नास्तिक है–ज्ञान की बातें बनाया करता है, जो वृथा दूसरों पर आक्षेप करता है, परोक्ष में निन्दा और अनिष्ट की चेष्टा करता है, और प्रत्यक्ष में प्रियवादी बनता है, ऐसा मनुष्य अधिकारी नहीं हो सकता। जो केवल मुख से ब्रह्म ज्ञान कथन करता हो, गुरु से प्रतारणा करके विद्या को चोरी करता हो, एवं अपनी प्रशंसा करता हो, दूसरों के सद्‌गुणों को सहन न कर सकने के कारण दुःखी होता हो, और क्रोध करके अहित करता हो, ऐसा मनुष्य तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं हो सकता। जो बकवादी है, दुर्जनों से मैत्री रखता है, जिसकी सब लोग निन्दा करते हैं, जो व्यर्थ ही दूसरों को कष्ट पहुँचाया करता है, ऐसा ज्ञान से और ज्ञान मार्ग वालों से शत्रुता करने वाला मनुष्य दीक्षित होने योग्य नहीं है।

स्वक्लेशवादिनं स्वामिद्रोहिणं स्वात्मवञ्चकम्।
जिह्वोपस्थपरं देवि तस्करं पशुचेष्टितम्॥
अकारण द्वेषहासक्लेशक्रोधादिकारिणम्।
अतिसाहसकर्माणं मर्मान्तपरिहासकम्॥
कामुकं चातिनिर्लज्जं मिथ्यादुश्चेष्टसूचकम्।
असूयामदमात्सर्यदंभाहंकारसंयुतम्॥

जो सब के पास अपना ही दुःख रोता हो, अपने स्वामी का द्रोह करता हो, जो शिश्नोदर-परायण अर्थात् जिह्वा और उपस्थ के सुख में रत होने वाला हो, एवं चोर हो, तथा अपने

को ही धोखा देता हो, अथवा पशु के सदृश हिताहित का विचार न करके वर्तता हो, ऐसा आत्मवञ्चक मनुष्य ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है। जो अकारण ही द्वेष करता हो, हंसता हो, क्लेश और क्रोध करता हो, जो अत्यन्त गर्हित कर्म करने का साहस करता हो, बिना प्रयोजन दूसरों का दिल दुखाने को हंसी करता हो, ऐसा दूसरों का चित्त दुखाने वाला मनुष्य शिष्य होने के योग्य नहीं है। जो कामी अत्यन्त निर्लज्ज हो जो मिथ्या ही दुराचार की चेष्टा करता हो, तथा असूया, मद, मत्सर, दम्भ, अहङ्कार से युक्त हो, गुरु को चाहिये कि ऐसे अनधिकारी को कभी शिष्य न बनावे।

ईर्षापारुष्यपैशुन्यकार्पण्य क्रोधमानसम्।
अधीरं दुःखिनं भीरुमशक्तं स्तब्धमातुरम्॥
अप्रबुद्धमतिं मन्दं मूढं चिन्ताकुलं विटम्।
तृष्णालोभयुतं दीनमतुष्टं सर्वयाचकम्॥

जिसका मन ईर्षा, निर्दयता कपट तथा कृपणता और क्रोध से युक्त हो; जो अधीर दुःखी भीरु, अशक्त, स्तब्ध और आतुर हो, ऐसे मनुष्य को आत्म ज्ञान की दीक्षा नहीं देनी चाहिये। जो महा अज्ञानी, मति मन्द तथा मूढ़ है, चिन्ताओं से घिरा हुआ रहता है, जो तृष्णा और लोभ से युक्त तथा असन्तुष्ट है, इसलिये दूसरों को अपनी दीनता दिखा कर सब से याचना किया करता है, ऐसा मनुष्य तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी नहीं है।

बह्वाशिनं कपटिनं भ्रामकं कुटिलं प्रिये ।
भक्तिश्रद्धादयाशान्ति धर्माचारविवर्ज्जितम् ॥
मातृपितृगुरुप्राज्ञसद्वचोहास्यकारकम् ।
इत्यादिदुर्गुणोपेतं गुरुः शिष्यं विवर्ज्जयेत् ॥

जो बहुत खाने वाला हो, कपटी हो, तथा दूसरों को भ्रम में डालने वाला कुटिल हो, जो भक्ति श्रद्धा, दया, शान्ति एवं धर्माचार से वर्जित हो, ऐसे मनुष्य को दीक्षा नहीं देनी चाहिये। जो माता, पिता, गुरु तथा ज्ञानी महात्माओं की अच्छी बातों की हंसी करता हो, ऐसे दुर्गुण युक्त मनुष्य को गुरु शिष्य करना त्याग करे, ऐसा मनुष्य ज्ञान का अधिकारी नहीं है।

सत् शिष्यों के लक्षण

पूर्व कथित असत् एवं त्याज्य शिष्य के लक्षण कहकर अब सौभाग्यवान् पुण्यात्मा, योग साधन के उत्तम अधिकारी शिष्य के लक्षण श्री महेश्वर कहते हैं कि:—

सच्छिष्यन्तु कुलेशानि शुभलक्षणसंयुतम् ।
समाधिसाधनोपेतं गुणशीलसमन्वितम् ॥
स्वच्छदेहाम्बरं प्राज्ञं धार्मिकं शुद्धमानसम् ।
दृढव्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥
दक्षमल्पाशिनं गूढवित्तं निर्व्याजसेवकम् ।
विमृश्यकारिणं वीरं मनोदारिद्र्यवर्ज्जितम् ॥

जो पुरुष समाधि के साधन यम, नियम, आसन, प्राणायामादिपरायण हो, गुण एवं शील आदि शुभ लक्षण से युक्त हो, वही शिष्य तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का उपयुक्त उत्तम अधिकारी है। जो मनुष्य शुद्ध मन वाला धार्मिक हो, नियम का पक्का दृढ़ व्रत वाला सदाचार सम्पन्न हो, एवं श्रद्धाभक्तियुक्त शास्त्रज्ञ हो तथा सुन्दर शरीरयुक्त स्वच्छ वस्त्र धारण करता हो, वही शिष्य होने के योग्य आत्मज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है। जो विचारपूर्वक कर्म करता है, एवं उदारचित्त है, जो गम्भीर है अल्प भोजन करने वाला मिताहारी है, जो सब कार्यों में दक्ष और निरभिमान है, एवं वीर है, जो सदा निष्काम सेवा करता है, ऐसा उत्तम पुरुष ही योगदीक्षा का अधिकारी है।

सर्वकार्यातिकुशलं स्वच्छं सर्वोपकारिणम् ।
कृतज्ञं पापभीतश्च साधुसज्जनसम्मतम् ॥
आस्तिकं दानशीलश्च सर्वभूतहिते रतम् ।
विश्वासविनयोपेतं धनदेहाद्यवश्चकम् ॥
असाध्यसाधकं शूरमुत्साहबलसंयुतम् ।
अनुकूलक्रियायुक्तमप्रमत्तं विचक्षणम् ॥

जो पुरुष सब ही कार्यों को कुशलता से सम्पन्न करता है, जो सब का उपकार ही करता है, जो पापकर्म से भय मानता है, पुण्य कर्म से पवित्र है, जो कृतज्ञ है एवं साधु सज्जन के अनुकूल वर्तता है, ऐसा उत्तम शिष्य ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है। जो

आस्तिक है, दानशील है, दाता है एवं सब ही के हितसाधन में लगा रहता है, किसी को भी अपनी ओर से धोका देकर धनादि से वञ्चित नहीं करता है, जो विश्वासी है, विनययुक्त है, ऐसा पुरुष ही ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है। जो विचक्षण पुरुष उत्साह-रूप बल से असाध्य को साधन करता है, एवं अपनी अनुकूल-क्रिया-तपस्या में प्रमादरहित होकर लगा रहता है, ऐसा शूरवीर पुरुष ही ब्रह्मज्ञान की दीक्षा का योग्य अधिकारी है।

हितं सत्यं मितं स्मरेत् भाषणं मुक्तदूषणम्।
सकृदुक्तगृहीतार्थं चतुरं बुद्धिविस्तरम्॥
स्वस्तुतौ परनिन्दायां विमुखं सुमुखं प्रिये।
जितेन्द्रियं सुसन्तुष्टं धीमन्तं ब्रह्मचारिणम्॥
त्यक्ताधिव्याधिचापल्यदुःखभ्रान्तिमसंशयम्।
गुरुध्यानस्तुतिकथादेवार्चावन्दनोत्सुकम्॥

जो पुरुष सब के लिये हितकर, सत्य, दूषणरहित, परिमित, और आनन्दप्रद भाषण करता है, जो अति बुद्धिमान् एवं चतुर है, एक बार कहने से ही अर्थ को समझ जाता है, ऐसा बुद्धिमान् शिष्य ही ब्रह्मज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है। जो अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा सुनना पसन्द नहीं करता, जो महा प्रसन्न है, जो दूसरों का प्रिय काम करने में सदा तत्पर रहता है, जो जितेन्द्रिय है, सुसन्तुष्ट तथा बुद्धिमान् और ब्रह्मचारी है, ऐसा शिष्य योगदीक्षा का अधिकारी है। जो मनुष्य आधि अर्थात्

मनस्ताप दुश्चिन्तादि अन्तःकरण के रोग से एवं व्याधि अर्थात् शारीरिक रोग से रहित है, तथा चञ्चलता चपलता, दुःख भ्रान्ति और संशय मुक्त है, जो गुरु के ध्यान, स्तुति, कथा तथा देवता के अर्चन वन्दन में उत्सुक है, ऐसा पुरुष ही तत्त्वज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है।

गुरुदैवतसंभक्तं कामिनीपूजकं परम् ।
नित्यं गुरुसमीपस्थं गुरुसंतोषकारकम् ॥
मनोवाक्तनुभिर्नित्यं परिचर्यासमुद्यतम् ।
गुर्वाज्ञापालकंदेवि गुरुकीर्तिप्रकाशकम् ॥
गुरुवाक्यप्रमाणज्ञं गुरुशुश्रुषणेरतम् ।
चित्तानुवर्तिनं प्रेष्यकारिणं कुलनायिके ॥

जो नित्य गुरु के समीप रहता है, एवं हर समय गुरु की प्रसन्नता का ही कार्य करता है, जो गुरु और देवता में सम्यक् भक्ति युक्त हो कर महा माया भगवती कुण्डलिनी शक्ति की पूजा में परायण है, वही पुरुष योग दीक्षा का उत्तम अधिकारी है। जो मन,प्राण और शरीर से नित्य परिचर्या करने के लिये उद्यत रहता है, एवं गुरु की आज्ञा पालन करता है, ऐसा गुरु की कीर्ति प्रकाश करने वाला शिष्य ही योगदीक्षा का उत्तम अधिकारी है। जो शिष्य गुरु के वाक्य को ही प्रमाण मानता है, और गुरु की सेवा शुश्रूषा में ही लगा रहता है, एवं गुरु के चित्त की अनुवृत्ति को देख के कार्य करता है, ऐसा उत्तम पुरुष ही तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का उपयुक्त अधिकारी है।

जातिमानधने गर्ववर्ज्जितं गुरुसन्निधौ ।
निरपेक्षं गुरोर्द्रव्ये तत्प्रसादाभिकांक्षिणम् ॥
जपध्यानादिनिरतं मोक्षमार्गाभिकांक्षिणम् ।
इत्यादिलक्षणोपेतं गुरुः शिष्यं परिग्रहेत् ॥

जो शिष्य गुरु के पास अपने जाति, मान तथा धन का गर्व नहीं करता, एवं गुरु के द्रव्य की अपेक्षा नहीं करता, वरन् गुरु की कृपा का कांक्षी होकर रहता है, ऐसा उत्तम पुरुष ही शिष्य होने के योग्य तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का अधिकारी है। जो पुरुष निरन्तर, जप, तप, ध्यान आदि में लगा रहता है, और जो केवल मोक्ष मार्ग की ही कामना करता है, ऐसे सब शुभ लक्षणों से युक्त शिष्य को ही गुरु ग्रहण करे, वही आत्म ज्ञान की दीक्षा का उपयुक्त अधिकारी है।

शरीरमर्थं प्राणांश्च सद्गुरुभ्यो निवेद्य यः ।
गुरुभ्यः शिक्षते योगं शिष्य इत्यभिधीयते ॥

जो व्यक्ति तन, मन, धन और प्राणों को गुरु के समर्पण करके गुरु से योग सीखता है वही शिष्य कहलाता है।

असद् गुरु के लक्षण

क्षयरोगी च दुश्चर्मा कुनखी श्यावदन्तकः ।
कर्णान्धः कुसुमाक्षश्च खल्वाटः खञ्जरीटकः ॥
अङ्गहीनोऽतिरिक्ताङ्गः पिङ्गाक्षः पूतिनासिकः ।

वृद्धाण्डो वामनः कुब्जः श्वित्रीचैव नपुंसकः ॥
इत्याद्यैर्देहजैर्दोषैः संयुक्तो निन्दितो गुरुः ।

श्री महेश्वर ज्ञान की दीक्षा के अयोग्य, त्याज्य एवं निन्दित गुरु के लक्षण कहते हैं कि जो मनुष्य क्षयरोगी हो और जो चर्म रोग, फोड़ा, फुन्सी, दाद, खाज से पीड़ित हो, रक्त विकारादि दोष से जिसके नख विकृत हो गये हों, जिसके नीले व काले दांत हों, जो कानों से सुनता न हो—बहरा हो, जिसकी आंखें कुसुम की तरह लाल हों, जिसकी दृष्टि शक्ति विकृत हो गई हो, जो अन्धा हो, जिसका शिर खल्वाट हो, या शिर के बाल उखड़ गये हों, जो अङ्गहीन हो अथवा जिसका कोई अङ्ग अधिक हो, जिसको आंखें बिल्ली की सी पिङ्गल हों, और जिस की नाक से दुर्गन्ध आती हो, तथा जिसके अण्डकोष बढ़ गये हों, जो बहुत ही छोटे क़द का वामन हो, अथवा कुबड़ा हो, जो श्वेत कुष्ठी हो, तथा जो पुरुषत्व-हीन नपुंसक हो, ऐसे किसी भी शारीरिक दोष से संयुक्त अशुभ लक्षण वाला गुरु निन्दित कहलाता है इसलिये ऊपर कहे हुए शारीरिक दोषों में से किसी भी दोष वाला मनुष्य आत्म ज्ञान की दीक्षा के लिये गुरु करने योग्य नहीं है।

संस्काररहितो मूर्खो वेदशास्त्रविवर्जितः ।
श्रौतस्मार्त्तक्रियाशून्यः शुष्कभाषःसुकुत्सितः ॥
पुरयाचनजीवी च नरो वैद्यश्च कामुकः ।

क्रूरो दम्भी मत्सरी च व्यसनी कृपणः खलः ॥
कुसङ्गी नास्तिको भीतो महापातकचिन्हितः ।

जो द्विजातियों के संस्कार शिखा और सूत्र से रहित मूर्ख हो, जो वेद शास्त्र के ज्ञान से वर्जित हो, जो श्रौत स्मार्त्त–वेद एवं स्मृति में कहे हुए–क्रिया कर्म शून्य हो, अर्थात् वैदिक कर्म करता न हो, या जानता न हो, ऐसा हो और जो कुत्सित शुष्क असभ्य भाषा बोलता हो, जो ग्राम या नगर में पुरोहित की सी यजमानवृत्ति से जीवन निर्वाह करता हो, अथवा जो वैद्यक करके जैसा कि आजकल बहुत से वेषधारी साधु, लोगों को दवाई देकर अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और फिर ज्ञान के लिये गुरु भी बन जाते हैं ऐसी वैद्यक वृत्ति वाला हो, और जो मनुष्य कामुक हो-स्त्री के वश में रहता हो, जो बहुत सा खाने वाला हो, और जो क्रूर प्रकृति वाला दम्भी हो, मत्सरी मिथ्यावादी हो, तथा जो चोर शठ और धूर्त हो तथा गांजा, भांग, सुलफ़ा, अफ़ीम दारु आदि मादक द्रव्य का व्यसनी हो, और कृपण तथा दूसरों का अनिष्ट करने वाला खल पशु प्रकृति वाला हो, जो कुसङ्गी, नास्तिक हो, एवं डरपोक हो और जो महा पातक कर्म से चिन्हित हो, अर्थात् जिसको पूर्व जन्म के महा पातक कर्म से अथवा इसी जन्म के पाप कर्म से अर्श, गुल्म, भगन्दर, संग्रहणी, प्रमेह, श्वास, यक्ष्मा और कुष्ठादि महारोगों में से कोई रोग जिसमें प्रकाश पाया हो, ऐसे मनुष्य को ब्रह्म ज्ञान की दीक्षा के लिये गुरु नहीं करना चाहिये

देवाग्निगुरुविद्यादिपूजाविधिपराङ् मुखः ।
सन्ध्यातर्पणपूजादिमन्त्रज्ञानविवर्जितः ॥
आलस्योपहतो भोगी धर्महीन उपश्रुतः ।
इत्याद्यैर्बहुभिर्दोषै रागयुक्तैश्च यत्नतः ॥
वर्जनीयो गुरुः प्राज्ञैर्दीक्षा सुस्थापनादिषु ।

जो देवता, अग्नि, गुरु आदि की पूजा विधि से पराङ्मुख हो, जो सन्ध्या, तर्पण, पूजनादि मन्त्र ज्ञान से रहित हो, अथवा जिसने सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्म त्याग दिया हो, जो कोई भी कर्म करना नहीं चाहता हो, ऐसा महादीर्घ सूत्री हो, एवं आलस्य का आश्रय करके रहता हो, जो भोगी हो तथा धर्महीन हो और दूसरों का भरोसा करके रहता हो इत्यादि राग युक्त अनेक दोष वाले मनुष्य को बुद्धिमान् जन वैदिक कर्म और ज्ञान दीक्षा के लिये गुरु न करे ।

व्याधिनो वंशहीनाच्च भार्याहीनात्तथैव च ।
मंत्रक्षिप्तात्तथा मंत्रं न गृह्णीयात्कदाचन ॥
कर्मणा गर्हितेनैव हन्ति शिष्यधनादिकम् ।
शिष्या हितैषिणं लोकं वर्जयेत्तं नराधमम् ॥

जो गुरु व्याधि ग्रस्त हो, गृहस्थ होते हुए वंश हीन हो, स्त्री रहित अकेला हो, अथवा मन्त्र जप से जिसका मस्तिष्क विकृत होकर जो पागल होगया हो, ऐसे गुरु से मन्त्र या दीक्षा कभी

ग्रहण नहीं करनी चाहिये। जो गुरु प्रलोभन दिखा कर गर्हित कर्म द्वारा शिष्यों का धन अपहरण करता है, और शिष्यों का हित साधन करने में समर्थ नहीं है, ऐसे अहित करने वाले अधम मनुष्य को सर्वदा त्याग देना चाहिये।

प्रमादाच्च यदा ताभ्यां दीक्षाविधिमुपाचरेत्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्॥
पूर्वोक्त दोषयुक्तश्चेद्दिव्यो वा वीर एव वा।
तयोरपि न कर्त्तव्याशिष्येण गुरुभावना॥
अज्ञानिनं वर्जयित्वा शरणं ज्ञानिनां व्रजेत्।

जैसा पहले कहा वैसे दोषयुक्त योग को सिद्धि वाला दिव्याचारी, या कर्म और मन्त्र की सिद्धि करा देने वाला वीराचारी क्यों न हो तथापि शिष्य को उसमें गुरु भावना नहीं करनी चाहिये। शारीरिक मानसिक एवं व्यावहारिक दोष वालों की योग, मन्त्र एवं औषधि की सिद्धियां देख कर भूल जाना नहीं चाहिये, ऐसे लोग इसी जन्म में मुक्ति नहीं दे सकते, यदि प्रलोभन में आकर या प्रमाद से अथवा भूल से ऐसे गुरु से ज्ञान के लिये दीक्षा ले ली हो तो प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये और पुनर्दीक्षा के लिये अज्ञानी को छोड़ के किसी ज्ञानी की शरण में जाना चाहिये।

धर्मोद्देशेन लोकेऽस्मिन् गुरून् गृह्णन्ति केचन।
अर्थोद्देशेन् केचिच्च कामोद्देशेन केचन॥

तेषां तत्तत्फला सिद्धौ गुरुशुश्रूषणादिकम् ।
यथा वृथा तथा मोक्षोद्देशेनाराधनं गुरोः ॥
तस्माद्भिधर्मानाचार्यान्पूर्वकांस्त्वं परित्यज ।
गौणाचार्यानपि श्वश्रुस्तत्याज जनको मम ॥

साधारणतया वहुत से लोग गुरु करते हैं परन्तु सभो मोक्ष के लिये ही दीक्षा लेते हैं ऐसा नहीं है क्योंकि हर एक मनुष्य की प्रकृति और प्रवृत्ति भिन्न २ है, इसलिये जो जैसा अधिकारी है वह उसी भाव वाले गुरु से मिलता है, अतएव सभी लोग मोक्ष को नहीं चाहते; इस विषय में भगवान् रामचन्द्र हनुमान् जी के प्रति कहते हैं कि संसार में कोई धर्म के उद्देश्य से गुरु करते हैं, कोई अर्थ एवं कामना प्राप्ति के लिये गुरु सेवा करते हैं, एवं क्वचित् कोई मोक्ष के लिए गुरु से दीक्षा लेते हैं, परन्तु सब की सभी कामना पूर्ण नहीं होने से उनकी गुरु सेवा व्यर्थ होती है, अपने भाव से विरुद्ध विपरोत धर्म वालों से अभीष्ट की सिद्धि नहीं हो सकतो, धर्म अर्थ और कामना को चाहने वालों के लिये मोक्ष प्रदाता गुरु की कामना से सेवा करना व्यर्थ है, तैसे ही मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वालों को अर्थ और कामना प्राप्त कराने वाले गुरु की सेवा करना भी वृथा है, क्योंकि जो लोग सांसारिक भोग ऐश्वर्य चाहते हैं उनको ज्ञानी महात्माओं से लाभ नहीं होगा, इसलिये वे ज्ञानी गुरु को छोड़ देंगे और ज्ञानी पुरुष उनको छोड़ देंगे, तैसे ही जो लोग जिज्ञासु हैं मुमुक्षु हैं वे भी अर्थ और कामना

प्राप्ति करांने वाले अज्ञानी गुरु को छोड़ देंगे और वे गुरु भी उनको छोड़ देंगे, इसमें ही दोनों का मङ्गल है। परन्तु यदि वे परस्पर अपने विरुद्ध धर्म वालों से मिलने जांयगे तो मिल नहीं सकेंगे और बहुत से अनर्थ घटेंगे, इसलिये राजा जनक और उनकी रानी ने अपने भाव से विरुद्ध ऐसे गौण गुरुवों का–जो कि धर्म अर्थ और कामना की प्राप्ति कराने वाले तो थे परन्तु मोक्ष देने में समर्थ नहीं थे–त्याग किया था और अपने भाव वाले ज्ञानी गुरु की शरण ली थी। अतएव जिनको जैसी आवश्यकता हो उन्हें वैसे ही गुरु करने चाहियें, अपने भाव से विरुद्ध धर्म वालों को गुरु नहीं करना चाहिए; इसलिये शास्त्र में निर्देश किया है, कि जो लोग मोक्ष के अभिलाषी हैं उनको गुरुओं द्वारा दीक्षा से जो दैवी गुण प्राप्त होते हैं वे जब तक न हों तब तक चाहे जितने गुरु कर सकते हैं परन्तु शास्त्र कथित दैव शक्ति का विकास जिन गुरु की दीक्षा से हो जाय उनका आश्रय करके रहे, उन को त्यागना शिष्य के लिये महा पाप है। परन्तु अज्ञानी गुरु को करना ही पाप है और त्यागना ही मङ्गल है।

सर्वेषां भुवने सत्यं ज्ञानाय गुरुसेवनम् ।
ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम् ॥
अतो यो ज्ञानदाने हि न क्षमस्तं त्यजेद्गुरुम् ।
अन्नाकांक्षी निरन्नं च यथा संत्यजति प्रिये ॥
मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथाशिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥

श्री महेश्वर कहते हैं कि संसार में ज्ञान के लिये ही सब कोई गुरु सेवा करते हैं क्योंकि ज्ञान से ही परम शान्ति और मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिये ज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ पदार्थ है अतएव जो गुरु ज्ञान देने में असमर्थ है उसका परित्याग करना चाहिये। जैसे क्षुधार्त्त अन्नाकांक्षी व्यक्ति भोजन नहीं दे सकने वाले को त्याग देता है, तैसे जहां ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती हो ऐसे गुरु को शिष्य भी त्याग ही देता है।। जैसे मधुमक्षिका मधु रहित पुष्प पर बैठने पर भी उसका परित्याग करके अन्य मधुयुक्त पुष्प पर बैठती है तैसे ही ज्ञानार्थ शिष्य भी अज्ञानी गुरु को त्याग कर ज्ञानवान् गुरु का आश्रय ग्रहण करे।

अनभिज्ञगुरुं प्राप्तः सदा संशयकारकम् ।
गुर्वन्तरं तु गत्वा स नैतद्दोषेण लिप्यते ।।
यत्रानन्दः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते ।
वत्सरादपि शिष्येण सोन्यं गुरुमुपाश्रयेत् ।।
गुरुमन्यं प्रपन्नोऽपि नावमन्येत पूर्वकम् ।
गुरो भ्रातॄन्तथा पुत्रान्बोधकान्प्रेरकानपि ।।

अनभिज्ञ, अज्ञानी और संशयकारक गुरु कर लिया हो तो उसका त्याग करके दूसरे गुरु के पास जाने में शिष्य को गुरु त्याग-जनित दोष नहीं लगता है, अतएव जिस गुरु की दीक्षा से शिष्य एक वर्ष के बीच में शक्तिपात का लक्षण–आनन्द-अपूर्व सुख-और प्रबोध–कुंडलिनी जागरण के लक्षण जैसे पूर्व कहे गये हैं प्रत्यक्ष

अनुभूति के चिन्ह थोड़े बहुत भी अनुभव न कर सके तो उस गुरु को त्याग के अन्य गुरु से दीक्षा ग्रहण करे। शिष्य दूसरे गुरु के शरण में जाने पर भी पूर्व गुरु तथा गुरु के भ्राता एवं गुरु पुत्र इत्यादि बोधक प्रेरक गुरुओं का अनादर न करे वरन् उनका यथायोग्य सम्मान करता रहे।

सद् गुरु के लक्षण

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेशो मनोहरः।
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वावयवशोभितः॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वतन्त्रविधानवित्।
लोकसम्मोहनाकारो देववत् प्रियदर्शनः॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छो भ्रमसंशयनाशकः।
इङ्गिताकारवित् प्राज्ञः ऊहापोहविचक्षणः॥

अब श्री महेश्वर, भगवती से योग दीक्षा के उपयुक्त सामर्थ्यवान् गुरु के लक्षण कहते हैं। जिसका वेश शुद्ध वस्त्र से सुशोभित एवं मनोहर हो, जो शारीरिक सब अवयव से सुन्दर तथा सर्वशुभलक्षणसम्पन्न हो, जो सब शास्त्रों के अर्थ का तत्त्व जानता हो, एवं शास्त्र कथित क्रिया कर्म की व्यवस्था विधान को जानता हो, जिस पर लोग मोहित हों, जो पास में आने वाले सब ही को प्रसन्न कर देता है ऐसा देववत् प्रिय दर्शन हो; जो प्रसन्नवदन है, जो शास्त्र के सिद्धान्त के अनुकूल और प्रतिकूल विचार

में विचक्षण है, जो इशारे से ही तत्त्व को समझा सके, ऐसा ज्ञानी है जिसके कथन से कठिन से कठिन विषय भी सहज ही समझ में आ जाय और भ्रम और संशय दूर हों, ऐसा उत्तम पुरुष ही तत्त्व ज्ञान की दीक्षा का उपयुक्त गुरु है।

अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धिस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥
वेधको बोधकः शान्तः सर्वजीवदयाकरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसञ्चारः षड्वर्गविजयप्रदः ॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित् ।
शिवविष्णुसमः साधुमनुभूषणभूषितः ॥

जिसकी दृष्टि बाहर रहते हुए भी लक्ष्य अन्तर में होता है जो सर्वज्ञ एवं देश काल को जानने वाला त्रिकाल दर्शी है, सिद्धियां जिसकी आज्ञा में हैं, जिस किसी को जो आज्ञा देता है सो सिद्ध होती हैं, जो पुरुष कृपा करने और दण्ड देने में समर्थ है और अपना सामर्थ्य दे के जब चाहे ले सकता है, तथा जिसकी आज्ञा चक्र में स्थिति रहती है, जो पुरुष आत्म सामर्थ्य से दूसरों में शक्ति सञ्चार करता है एवं ज्ञान का बोध कराता है, जो शान्त है, सब जीवों पर दया करता है, जिसने षट्रिपु को जीत लिया है, जितेन्द्रिय है जो सब कार्य में अपना प्रथम स्थान रखता है, अति गम्भीर है, पात्रापात्र की विशेषता को जानता है, जिसकी शिव विष्णु में सम बुद्धि है, जो साधु के

के भूषण सद्‌गुणों से भूषित है, ऐसा उत्तम पुरुष ही योग दीक्षा के लिये योग्य गुरु है ।

निर्ममो नित्यसन्तुष्टः स्वतंत्रो ऽनन्तशक्तिमान् ।
सद्भक्तवत्सलोधीरः कृपालुः स्मितपूर्णवाक् ॥
नित्येनैमित्तिकेकाम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ।
रागद्वेषभयक्लेशदम्भाहङ्कारवर्ज्जितः ॥
स्वविद्यानुष्ठानरतो धर्मज्ञानार्थदर्शकः ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टो गुणदोषविभेदकः ॥

जो पुरुष ममता रहित नित्य सन्तुष्ट एवं स्वतन्त्र और अनन्त शक्ति वाला है, जो सद्‌भक्तों में स्नेह सम्पन्न, धीर, कृपालु तथा हास्य पूर्ण सुख प्रद वाणी बोलता है, जो राग, द्वेष, भय, क्लेश, दम्भ, अहङ्कार से रहित होकर नित्य नैमित्तिक तथा अनिन्दित काम्य कर्म में रत है, जो पुरुष अपने विद्या अनुष्ठान में नियुक्त रह कर धर्म और ज्ञान के अर्थ को दर्शाता है तथा दोष और गुण के विशेष भेद को समझाता है, जो दैव इच्छा से प्राप्त आय में ही सन्तुष्ट है, ऐसा उत्तम पुरुष ही ब्रह्म ज्ञान की दीक्षा के लिये योग्य गुरु है ।

स्त्री धनादिष्वनासक्तो दुःसङ्गो व्यसनादिषु ।
सर्वाहम्भावसन्तुष्टो निर्द्वन्दो नियतव्रतः ॥
अलोलुपोह्यसङ्गश्च पक्षपाती विचक्षणः ।

निः सङ्गो निर्विकल्पश्च निर्णीतात्मातिधार्मिकः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निरपेक्षो नियामकः ।
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥

जो पुरुष स्त्री तथा धनादि में आसक्ति रहित है, बुरे सङ्ग और व्यसनों में जिसकी प्रवृत्ति नहीं है, जो निर्द्वन्द्व, नियत व्रत-संयमी और अपने में ही सन्तुष्ट है, जो तृष्णा रहित सङ्कल्प शून्य है, जो कभी पक्षपात नहीं करता, ऐसा विचक्षण, सङ्ग रहित, विकल्प शून्य है, जिसने आत्म तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है, जो अति धार्मिक है, निन्दा और स्तुति को समान समझता है एवं मनन शील है, जो किसी की अपेक्षा नहीं करता जो अपने आत्म बल से दूसरों को नियन्त्रित करता है, ऐसा शुभ लक्षण युक्त पुरुष ही आत्म ज्ञान की दीक्षा के लिये उपयुक्त गुरु है।

गुरु साक्षात् शिव रूप है.

यः शिवः सर्वगः सूक्ष्मो निष्कलश्चोन्मनाऽव्ययः ।
व्योमाकारो ह्यजोऽनन्तः सकथं पूज्यते प्रिये ॥
अतएव शिवः साक्षाद् गुरु रूपं समाश्रितः ।
भक्त्या सम्पूजयेद्विभुक्ति मुक्तिप्रयच्छति ॥
शिवोऽहमाकृतिर्देवि नर दृग्गोचरो न हि ।
तस्मात् श्रीगुरुरूपेण शिष्यान् रक्षति सर्वदा ॥

जो परमात्मा शिव, अनन्त, अव्यय, अज, निष्कल, व्योमाकार, मन रहित सर्वत्र सूक्ष्म है, वह कैसे पूजा जा सकता है ? अतएव साक्षात् शिव ही गुरु रूप को आश्रय करके भक्ति द्वारा पूजित होता है और भुक्ति तथा मुक्ति देता है, क्योंकि मेरी शिव रूप आकृति मनुष्य के दृष्टि गोचर नहीं हो सकती, इसलिये गुरु रूप को धारण करके मैं ही शिष्यों की सर्वदा रक्षा करता हूँ।

मनुष्यचर्मणा बद्धः साक्षात्परशिवः स्वयम् ।
स्वशिष्यानुग्रहार्थाय गूढं पर्य्यटति क्षितौ ॥
सद्भक्तरक्षणायैव निराकारोऽपि साकृतिः ।
शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीवद्विचेष्टितः ॥
नरवद् दृश्यते लोके श्री गुरुः पाप कर्मणा ।
शिववद् दृश्यते लोके भवानि पुण्यकर्मणा ॥

साक्षात् परशिव स्वयं मनुष्यरूप से अपने शिष्यों पर अनुग्रह करने के लिये अपने को छिपाकर पृथ्वी पर विचरते हैं वही परम शिव निराकार होते हुये भी सद्भक्तों की रक्षा करने के लिये गुरु रूप साकार बन कर कृपानिधि संसारी के सदृश चेष्टा करते हुये देख पड़ते हैं, इसलिये पाप कर्म वाले लोग गुरु को मनुष्य रूप से देखते हैं, परन्तु पुण्य कर्म वाले लोग श्री गुरु को शिव रूप से देखते हैं।

श्री गुरुं परमं तत्त्वं तिष्ठन्तं चक्षुरग्रतः ।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्य मिवोदितम् ॥

गुरुः सदा शिवः साक्षात्सत्यमेव न संशयः।
शिवरूपी गुरुर्नोचेद्भुक्तिं मुक्तिं ददाति कः॥
सदा शिवस्य देवस्य श्री गुरोरपि पार्वति।
उभयोरन्तरं नास्ति यः करोति स पातकी॥

साक्षात् परमतत्त्वस्वरूप श्री गुरु नेत्र के सामने प्रत्यक्ष रहते हुये भी भाग्यहीन मनुष्य नहीं देखते, जैसे अन्धे लोग उदय हुये सूर्य को नहीं देखते। अतएव यह सत्य है कि गुरु ही साक्षात् सदा शिव रूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि यदि गुरु ही सदा शिव रूप न होते तो भुक्ति और मुक्ति कौन दे सकता। इसलिये सदा शिव में और श्री गुरु देव इन दोनों में कोई भेद नहीं है, परन्तु जो लोग भेद देखते हैं वे पापी हैं।

देशिकाकृतिमास्थाय पशुपाशानशेषतः।
छित्त्वा परं पदं देवि नयत्येवमतो गुरुः॥
शिवरूपं समास्थाय पूजां गृह्णाति पार्वति।
गुरुरूपं समादाय भवपाशान्निकृन्तयेत्॥
सर्वानुग्रहकर्त्तृत्वादीश्वरः करुणानिधिः।
आचार्यरूपमास्थाय दीक्षया मोक्षयेत् पशून्॥

गुरु ही उपदेशकरूप को ग्रहण करके जीव के बन्धनों को जड़ से काट कर परम पद को प्राप्त कराते हैं, क्योंकि सब के ऊपर अनुग्रह करने वाले करुणानिधि ईश्वर ही आचार्यरूप धारण करके दीक्षा द्वारा जीव को मुक्ति प्राप्त कराते हैं, और वही शिव गुरु रूप में स्थित होकर पूजा ग्रहण करते हैं, और गुरु-

रूप ग्रहण करके संसार बन्धन का नाश करते हैं।

नाना विकल्प विभ्रान्ति नाशन्तु कुरुते च यः।
सद्गुरुः स तु विज्ञेयो न तु स्वैरप्रजल्पकः ॥

अतएव महेशानि सद्गुरुः स शिवोदितः।
सत्यवादी सत्यशीलो गुरुभक्तो दृढव्रतः ॥

स्वल्पाचाररतात्मानो दानादिशीलसंयुतः।
कापट्यलोभविन्यासी महावंश समुद्भवः ॥

ईदृशः सद्गुरुस्तस्य संगतो यत्नवान्भवेत्।
तदेव मनसा शान्तिं प्राप्नोति परमं पदम् ॥

श्री महेश्वर कहते हैं, कि जीव के बंधन का मूल कारण मन के ही संकल्प विकल्प हैं, विकल्प रूप भ्रान्ति के उदय से बन्धन और उसके अस्त से चित्त लय होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिये जो गुरु शिष्य के चित्त को लय-समाधि अवस्था में पहुँचा कर नाना विकल्प रूप भ्रान्ति का नाश करने में समर्थ हैं, उनको ही सद्गुरु जानना चाहिये, किन्तु शास्त्र की बातें बहुत बनाने वाला मनुष्य गुरु नहीं होता है। इसलिये हे महेशानि! मैंने स्वयं सद्गुरु के लक्षण कहे हैं, कि सद्गुरु, सत्यवादी, सत्यशील, गुरु भक्त, दृढ़ व्रत, सूक्ष्म आचार वाले और आत्मरत, दानादि गुणों से युक्त, कपट तथा लोभादि से रहित और उत्तम कुल में उत्पन्न हुए होते हैं, मनुष्य को चाहिए कि ऐसे लक्षण देखकर सद्गुरु को पहिचान लेवे, और यत्न पूर्वक उनका

सत्संग करे तभी उनकी कृपा से मन की शांति और परम पद की प्राप्ति होती है।

विष्णोः संपर्कः सम्यक् त्रिविधोत्पात्कर्मणि ।
षट् चक्र-भेद कुशलः षडध्व-ज्ञान-पारगः ॥
पिण्डे पदे तथा रूपे रूपातीते विवेचकः ।
संध्यात्रयविशेषज्ञो ह्यध्वषट्क-विशोधकः ॥
मंत्र चैतन्य विज्ञाता गुरुसक्तः स्वयंभुवः ।
मंत्र तंत्रार्थ चैतन्यः कुण्डलिगति वेदकः ॥
मंत्र सिद्धान्तविधिवत् गुरु र्भवति न परः ।

आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रिताप से संतप्त सांसारिक मनुष्यों को सम्यक् रूप से जो सद्गुरु श्री विष्णु भगवान् की शरण में पहुँचा देते हैं, जो सुषुम्ना मार्ग में स्थित षट् चक्रों का भेदन करने में कुशल हैं, और षडध्व,–अर्थात् वर्णपद, मंत्र-कला, भुवन और तत्त्व के ज्ञान में पारंगत हैं, और पिंड कुंडलिनी शक्ति,-पद, हंस-रूप-विन्दु एवं रूपातीत पर ब्रह्म का विवेचन करने की क्षमता रखते हैं, संध्या त्रय के विशेष ज्ञान को जानते हैं, जो षड् चक्र के मार्ग की शुद्धि रखने में समर्थ हैं, मंत्र चैतन्य के जानने वाले हैं, ऐसे पुरुषों को मुझ स्वयम्भू ने गुरु कहा है। मंत्र तथा तंत्र के रहस्य को और उनके चैतन्य भाव को एवं जागृत कंडलिनी शक्ति की गति को जो जानते हैं, और मंत्र सिद्धि के साधन के कौशल को जो विधिवत् जानते हैं, वे ही गुरु हैं, और दूसरे मनुष्य गुरु नहीं हो सकते।

दशम प्रकाश

दीक्षा का स्थान

गोशालायां गुरो गेंहे देवागारे च कानने ।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च दीक्षणम् ॥
धात्रीविल्वसमीपे च पर्वताग्रगुहासु च ।
गङ्गायास्तु तटे वापि कोटिगुणं भवेत् ॥
अथवा गुरुरेवास्य दीक्षयेद् यत्र तच्छुभम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तद्वाक्यं श्रुतिसन्निभम् ॥

जिस दीक्षा से गुरु शिष्य को आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध कराते हैं उसको ग्रहण करने के लिये शास्त्र में स्थान और समय का विधान है, इसलिये उत्तम स्थान में और उत्तम समय में दीक्षा ग्रहण करने से शिष्य के सब अभीष्ट की सिद्धि होती है ।

दीक्षा के लिये प्रशस्त स्थान—गोशाला, गुरु गृह (जहां गुरु निवास करते हों) देवालय, वन (एकान्त अरण्य), पुण्य क्षेत्र (तीर्थ स्थान) अथवा उद्यान (बगीचा) या नदी के तट पर दीक्षा होनी चाहिये, अथवा आंवला एवं विल्ववृक्ष के नीचे हो सकती है पर्वत पर अथवा गुफा में दीक्षा लेनी चाहिये, अथवा गङ्गा

के तट पर किसी भी स्थान में दीक्षाग्रहण करने का बड़ा पुण्य है, इस लिये गङ्गा तट में दीक्षा लेना सर्वोत्तम है, क्योंकि गंगा तट के सभी स्थान तीर्थ रूप हैं, परन्तु गुरु इच्छा करके जहां कहीं दीक्षा दें वही स्थान सर्व श्रेष्ठ है, क्योंकि गुरु से बढ़ कर कोई तीर्थ नहीं है उनका वाक्य ही वेद वाक्य तुल्य है।

दीक्षा का समय

यदि भाग्यवशेनैव सिद्धो हि पुरुषो मिलेत्।
तदैव दीक्षां गृह्णीयात् त्यक्त्वा कालविचारणाम् ॥
दुर्लभे सद्गुरुणाञ्च सकृत् सङ्ग उपस्थिते।
तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान् ॥
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ॥
न तीर्थं न व्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया।
दीक्षायाः कारणं किन्तु स्वेच्छा प्राप्ते तु सद्गुरौ ॥

साधारणतया शास्त्र के कथनानुसार व्यवहार में प्रायः लोग यज्ञोपवीत, विवाह आदि शुभकर्म में तिथि, वार, नक्षत्र लग्न योगकरण से मुहूर्त देखकर कार्य करते हैं, तैसे तीर्थयात्रा यज्ञ, दान, तप, जप, दीक्षा आदि महाशुभ कर्म में भी शुभाशुभ काल का निर्णय करके कार्य करते हैं; अच्छे काल में अच्छे तिथि वार नक्षत्र में अपनी नाम राशि के अनुसार किये हुए शुभकर्म का अनुष्ठान निर्विघ्नता से संपन्न होता है और उनका

वांच्छितफल इच्छानुसार मिलता है, इसलिये ज्योतिष द्वारा कालाकाल का निर्णय करके सब धर्म कर्म किये जाते हैं, और करने भी चाहियें; जो कुछ भी हो, परन्तु यदि सौभाग्यवश गुरु सिद्ध पुरुष मिल जायें तो कालाकाल का विचार न करके उनसे दीक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये, क्योंकि जिस समय सद्गुरु का दुर्लभ संग मिल जाय और जब वह प्रसन्न होकर कृपा करने के लिये तैयार हो जायं एवं शिष्य को दीक्षा के लिये अनुमति देदें वही अवसर शिष्य की दीक्षा के लिये श्रेष्ठ समय है; अतएव गुरु की आज्ञानुसार जब गुरु शिष्य दोनों की इच्छा हो तभी दीक्षा हो सकती है, स्वयं गुरु कृपा करते हैं तो गुरु की कृपा लाभ करने में कालाकाल का कोई नियम नहीं है।

सामर्थ्य वाले गुरु लोग शास्त्रों और लौकिक व्यवहार के विधिनिषेध से परे होते हैं, और वे जिन पर कृपा करते हैं उन्हें भी विधिनिषेध के बन्धन से छुड़ा देते हैं; ऐसे गुरु भाग्य से ही कचित् किसी को प्राप्त होते हैं; इसलिये साधारणतया लोग सामर्थ्य हीन बाह्यक्रियाकर्म करने वाले गुरुओं से ही दीक्षा लेते हैं और शास्त्र कथनानुसार दीक्षा के पूर्व पवित्र तीर्थादि-स्थान देखते हैं और दीक्षार्थ व्रत लेके स्नान, जप, पूजा, हवन आदि बहुत सी बाह्य क्रिया करते है, परन्तु ये सब वास्तविक दीक्षा के मुख्य कारण नहीं हैं; सद्गुरु की कृपा होने से शिष्य को न प्रायश्चित्त के लिये तीर्थ, स्नान और न व्रत, जप, हवनादि क्रिया करने की आवश्यकता है, किन्तु सद्गुरु प्राप्त होने से

शिष्य पर गुरु की कृपा और उनकी इच्छा ही दीक्षा का कारण है।

शिष्यानाहूय गुरुणा कृपया यदि दीयते।
तदा लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन ॥
सर्वेवारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥

गुरु यदि कृपा करके शिष्य को अपने पास में बुलाकर दीक्षा देवें तो लग्न, तिथि, वार, ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि मुहूर्त के लिये किसी प्रकार का भी विचार कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि जिस रोज़ गुरुदेव सन्तुष्ट होकर दीक्षा देते हैं, वही रोज तिथि, वार, ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि सब यदि निषिद्ध हों तो भी गुरु की कृपा से वे सब शिष्य के लिये शुभ हो जाते हैं।

लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि।
गुरोराज्ञानुरूपेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥
न तिथि न व्रतं पूजा न सन्ध्या न जपक्रिया।
दीक्षायां कारणं ज्ञानं स्वेच्छा प्राप्ते च सद्गुरौ ॥
सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ॥

इसलिये सामर्थ्य वाले गुरु की आज्ञानुसार शुभ वा अशुभ

लग्न में अथवा किसी भी तीर्थ में गुरु के आज्ञानुरूप विशेष-रूप से दीक्षा कार्य संपन्न होना चाहिये, उसमें शुभ तिथि, व्रत, पूजा की भी आवश्यकता नहीं होती और न स्नान, संध्या, तर्पण, जप, हवनादि क्रियाओं की आवश्यकता है, क्योंकि ये सब बाह्यसाधन ज्ञान के कारण नहीं हैं; अतएव देश, काल, तिथि, वार एवं स्नान, संध्या, पूजा, हवनादि लौकिक क्रियाओं की ज्ञान अपेक्षा नहीं करता, परन्तु सिद्धपुरुष की कृपा दीक्षा ही ज्ञान का कारण है; अतएव जिस रोज गुरु प्रसन्न होकर दीक्षा देते हैं और शिष्य ग्रहण करता है वही रोज, तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रह, राशि आदि सब शिष्य का मंगल विधान करते हैं; गुरु की दीक्षा देने की इच्छा और शिष्य की ग्रहण करने की इच्छा जब हो वही रोज गुरु की कृपा का महा उत्तम समय समझना चाहिये; गुरु और शिष्य की इच्छा ही दीक्षा का शुभ समय है।

दीक्षा ग्रहण की विधि

उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम् ।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम् ॥
तोषयेत् तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः ।
वाचा च मनसाचैव कायेन द्रविणेन च ।
आचार्यं पूजयेत् शिष्यः सर्वदा हि प्रयत्नतः ।
हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।

भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च ।
एतानि गुरवे दद्यात् भक्त्या च विभवे सति ॥

सब सद्गुणों से युक्त महासामर्थ्य वाले, जपतप ध्यान योग परायण, तत्त्व को जानने वाले गुरु के पास जाकर शुद्ध मन से कर्मणा, मनसा वाचा तन, मन और धन से प्रयत्न करके गुरु की सदा प्रसन्नता लाभ करने के लिये दीक्षा के पूर्व शिष्य को विशुद्ध भाव से गुरु का पूजन करना चाहिये, और अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य हो तो भक्तियुक्त होकर हाथी, घोड़ा, रत्न,रथ, क्षेत्र, गृह आभूषण, वस्त्र, धान्य और धन आदि वैभव देकर गुरु की सेवा करनी चाहिये ।

शिष्य का कर्तव्य

वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ।
पश्चान्निवेदयेद्‌ त्रि स्वात्मानं सपरिच्छदम् ॥
एवं संपूज्य विधिवद् यथाशक्ति त्ववञ्चयन् ।
आददीत गुरोर्मन्त्रं ज्ञानञ्चैव क्रमेण तु ॥

अतएव यदि शिष्य अपने आत्मा का कल्याण चाहता है तो जैसा कहा वैसा सामर्थ्य हो तो सेवा करे, और धन आदि वैभव से सेवा करने की शक्ति न हो तो पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ हो लेके अनन्य भाव से गुरु की शरण ग्रहण करे, परन्तु धन होते हुए कभी अभाव न दिखावे; गुरु को अभाव दिखाने से किसी

धर्म कर्म की सिद्धि नहीं होती है, इसलिये गुरु के पास किसी भी प्रकार की आत्मप्रतारणा न करके एवं कपट रहित अपने आप जैसा है वैसा ही जाहिर करके यथा शक्ति विधिवत् पत्र पुष्प से गुरु का पूजन करके पश्चात् सरल मन से अपने वास्तविक भाव कर्म अकर्म, पाप पुण्य जो कुछ किये हैं और करने की इच्छा है, वे सब गुरु को निवेदन करके उनके मन का सन्तोष साधन कर, उनसे दीक्षा मंत्र ग्रहण कर क्रम से ज्ञान लाभ करे।

भक्त्या तुष्टेन गुरुणा यः प्रदिष्टः कृपालुना।
कर्ममुक्तो भवेच्छिष्यो भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम्॥
गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती।
अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादभिचाराय कल्पते॥
आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

भक्ति से प्रसन्न होने वाले कृपालु गुरु शिष्य को दीक्षा देंगे तभी तो शिष्य गुरुप्रदत्त योग साधना से कर्ममुक्त होकर भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होगा, इसलिये शिष्य को गुरु की कृपा लाभ करना परम आवश्यक है, क्योंकि गुरु संतुष्ट होने से ही सब कर्म धर्म की सिद्धि और शाश्वती मुक्ति होती है; अतएव बिना गुरु की प्रसन्नता के कोई सिद्धि नहीं होती, गुरु के असन्तुष्ट रहने से शिष्य को सब कर्म धर्म में द्वेष और दोष रूप विपरीत बुद्धि होजाती है, जिससे साधक का पतन होता है; अतएव गुरु को साक्षात् भगवान् का रूप जानना,

उनका कभी अनादर नहीं करना, और न गुरु को मनुष्य समझ कर उनकी किसी प्रकार की अवहेलना करना, क्योंकि गुरु सर्व देवमय मेरा स्वरूप है, इसलिये शिष्य को चाहिये कि दीक्षा ग्रहण के पश्चात् भी गुरु का सर्वथा अनुगामी रहे, और उनकी प्रसन्नता के लिये सर्वदा तत्पर होकर सेवापरायण रहे।

त्रिदिनं निवसेद् भक्त्या सिद्धये गुरुसन्निधौ ।
अन्यथा तद्गतं तेजो गुरुमेति न संशयः ॥

तस्य छायानुसारी च निकटे त्रिदिनं वसेत् ।
न चेत् सञ्चारिणी शक्ति गुरुमेति न संशयः ॥

दीक्षा लेकर शिष्य को चाहिये कि सिद्धि प्राप्ति के लिए दीक्षा ग्रहण के बाद भी कम से कम तीन दिन भक्तियुक्त होकर गुरु के पास में रहे, नहीं तो गुरु का जो तेज दीक्षा द्वारा शिष्य में प्रवेश कर गया है वह निःसन्देह गुरु में फिर वापिस आ जाता है, इसलिये दीक्षा के बाद भी तीन दिन, पांच दिन, सात दिन अथवा जब तक अपनी क्रिया शक्ति का अच्छी तरह विकास न हो तब तक शिष्य गुरु के समीप उनकी आज्ञानुसार रह कर एकान्त में बैठ के साधन करता रहे; जब गुरु प्रसन्न होकर कहें और अपनी इच्छा की पूर्ति हो जाय, एवं गुरु शक्ति का ज्ञान हो जाय, तब गुरु से विदा लेनी चाहिये; ऐसा नहीं करने से गुरु की संचारिणी शक्ति गुरु में ही पुनः फिर जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। और दीक्षा लेकर चले जाने के बाद नित्य

प्रति योगाभ्यास नहीं करने से अथवा गुरु के प्रति उदासीन रहने से, या गुरु से सम्पर्क नहीं रखने से, गुरु की संचारिणी शक्ति की क्रियायें मन्द हो जाती हैं और शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करती हैं, और साधक की धर्म कर्म में विपरीत बुद्धि उत्पन्न करके नष्ट हो जाती हैं, जिससे दुर्भाग्य होता है। अतएव अपनी साधनोन्नति के लिये आवश्यकतानुसार गुरु से साक्षात् मिलने का समय निर्दिष्ट कर लेना चाहिये। वर्ष में एक मास अथवा एक पक्ष या कम से कम एक सप्ताह गुरु के निकट वास करने से साधन में यथेष्ठ उन्नति होती है और अपने अभीष्ट की सिद्धि शीघ्र होती है, इस के सिवाय नित्य प्रति ध्यान द्वारा और पत्र व्यवहार से सर्वदा गुरु के सम्पर्क में रहने से शिष्य के साधन में कोई बाधा विघ्न नहीं होते हैं।

गुरु दक्षिणा

गुरवे दक्षिणां दद्यात् प्रत्यक्षाय शिवात्मने।
न चेत् सञ्चारिणी शक्तिः कथमस्य भविष्यति ॥
तत उत्थाय गुरवे यथाशक्त्यनुसारतः।
दक्षिणां स्वं फलं वापि दद्यात् साधकसत्तमः ॥

जिन गुरु की महाशक्ति के प्रभाव से शिष्य आश्चर्य अति-आश्चर्यजनक अपने में क्रियाशक्ति का अनुभव करता है, जिनकी कृपा से शिष्य धर्म अर्थ काम और मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होगा ऐसे प्रत्यक्ष अनुभव कराने वाले शिवरूप गुरु से दीक्षा

लेके उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए; गुरु से दीक्षा लेके अपने सामर्थ्यानुसार गुरु दक्षिणा नहीं देने से गुरु की सञ्चारिणी शक्ति शिष्य में रह नहीं सकती, यदि रह भी जाय तो शिष्य का अमंगल होता है; इसलिये उत्तमसाधक को चाहिये कि दीक्षा कार्य संपन्न हो जाने पर गुरु से अनुमति लेके उठकर अपनी योग्यतानुसार अर्थ, स्वर्ण, वस्त्र अथवा फलफूल यथाशक्ति गुरु को दक्षिणास्वरूप नम्रतापूर्वक भक्तिभाव से अर्पण करे।

गुरवे दक्षिणां दद्याद् वित्तार्धं भक्तितत्परः ।
तदर्धं व ततो दद्याद् यथाशक्त्याथभक्तितः ॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कृतेऽनर्थं समाहरेत् ।
गोभूहिरण्यवस्त्रादीन् गुरुवेऽथनिवेदयेत् ॥
गुरुपुत्रेऽपि तत्पत्न्यै तच्छिष्येऽपि स्वशक्तितः ।
वस्त्रालङ्करणं दद्याद् भोज्यं मिष्टं यथारुचि ॥

गुरु को दक्षिणा देनी ही चाहिये; न्याय से उपार्जित अपने संचित धन का आधा भाग या चौथाई अथवा यथाशक्ति भक्ति सहित गुरु को अर्पण करे, धन होते हुए अभाव नहीं दिखाना चाहिये; परंतु जो लोग वित्तशाठ्य करते हैं, धन रहने पर भी देना पड़ेगा ऐसी लोभवृत्ति से गुरु को अभाव दिखाते हैं और अपने धर्म कर्म और अपने मन के वास्तविक भाव को गुरु से छिपाते हैं उनका अनर्थ ही होता है, उन्हें दीक्षाजनित ज्ञान का कोई फल नहीं होता इसलिये अपनी शक्ति अनुसार गुरु को गौ, भूमि,

सुवर्ण, वस्त्र आदि निवेदन करना चाहिये; और गुरु के पुत्र को तथा गुरु की धर्मपत्नी को भी वस्त्र, आभूषण निज शक्ति अनुसार देना चाहिये; यदि गुरु के स्त्री पुत्र न हो तो उनके प्रधान शिष्य को देना चाहिये, और दीक्षा के दिन सबको यथा रुचि मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये ॥

पित्रोरभरणं कृत्वा ह्यदत्त्वा गुरुदक्षिणाम् ।
कृतघ्नताञ्च संप्राप्य मरणान्ता हि निष्कृतिः ॥
विद्यां प्राप्यापि यो मोहात् स्व गुरोः पारितोषिकम् ।
न प्रयच्छन्ति निरयं ते यान्त्याचन्द्रतारकम् ॥

जैसे जन्मदाता माता पिता का भरण पोषण करना पुत्र के लिये परम कर्त्तव्य है तैसे ही संसार बन्धन से मुक्त करने वाले परम ज्ञान दाता गुरु की सेवा करना भी शिष्य का कर्त्तव्य है, कर्त्तव्य की अवहेलना करके अपने माता पिता का भरण पोषण नहीं करने से, एवं गुरु से विद्याप्राप्त होकर दक्षिणा नहीं देने से मरण पर्यन्त मनुष्य कृतघ्नता दोष से लिप्त रहता है, उस कृतघ्नी का मरना ही निष्कृति हैं, अतएव जो लोग गुरु से ब्रह्म विद्या प्राप्त होकर मोह वश अपने गुरु को पारितोषिक दक्षिणा नहीं देते वे प्रलय प्रर्यन्त नरक रूप दुःख भोगते हैं ।

कस्मिन्न यज्ञः प्रतिष्ठितः, दक्षिणायामिति ।
कस्मिन्नु दक्षिणा प्रतिष्ठिता, श्रद्धायामिति ॥
यदाह्येव श्रद्धत्ते अथ दक्षिणां ददाति ।

श्रद्धायां ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठिता ॥
दक्षिणा विहीनो यज्ञः सिद्धिदो न च मोक्षदः ।
दक्षिणा यज्ञ पत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता ॥
यया विना च विश्वेषु सर्व कर्म च निष्फलम् ।

यज्ञ किसमें प्रतिष्ठित है ? दक्षिणा में; और दक्षिणा किस में प्रतिष्ठित है ? श्रद्धा में, अर्थात् यज्ञ कैसे फलता है ? दक्षिणा देने से, और दक्षिणा कैसे फल प्रद होती है ? श्रद्धा से ही फलीभूत होती है, इसलिये यज्ञ करने वाले यजमान वैदिक यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों को श्रद्धा पूर्वक दक्षिणा देते हैं, क्योंकि श्रद्धा में ही दक्षिणा प्रतिष्ठित है । अतएव श्रद्धा से दी हुई दक्षिणा सभी यज्ञ के फल को देती है । दक्षिणा विहीन यज्ञ न तो वांछित फल देता है और न मोक्षदायक होता है । अतएव शास्त्रकथनानुसार यह दीक्षा भी एक प्रकार का यज्ञ है, क्रियावती दीक्षा वाह्य यज्ञ है जो बाहर के हवनादि कर्म से संपादित होता है, और ज्ञानवती दीक्षा आन्तर यज्ञ है जो गुरु की आत्म शक्ति से संपादित होता है, इसकी दक्षिणा नहीं देने से यह निष्फल होगा, इसलिये दीक्षा की दक्षिणा देनी ही चाहिये; दीक्षा और दक्षिणा ये यज्ञ की पत्नी हैं, इनके ही संयोग से यज्ञ वांछित फल देता है इस लिये संसार में दीक्षा और दक्षिणा के विना जो कोई धर्म कर्म किया जाय वह सब निष्फल होता है । अतएव वैदिक यज्ञ कर्म में दीक्षित होकर यज्ञ करके दक्षिणा देकर फल प्राप्त किया जाता है । बिना श्रद्धा और भक्ति के दक्षिणा भी निष्फल होती है ।

सर्वस्वमपियो दद्यात् गुरौ भक्तिविवर्जितः।
शिष्यो न फलमाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम् ॥
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धा हीनं वरानने ।
आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम् ॥

जो शिष्य गुरु भक्ति से रहित हैं। वे चाहें अपना सर्वस्व भी गुरु को अर्पण कर देवें तथापि वे दीक्षा का फल नहीं पा सकते क्योंकि फल प्राप्ति का कारण गुरु भक्ति ही है । इसलिये जो शिष्य गुरु की आज्ञा को नहीं मानते वे और जो क्रिया नहीं करते और श्रद्धाहीन हैं वे तथा जो गुरु कृपा रूप आज्ञा शक्ति ग्रहण करके जो दक्षिणा नहीं देते ऐसे लोगों के जप, तप आदि कर्म सदा निष्फल होते हैं ।

इसलिये शास्त्रकथनानुसार गुरु की सेवा करके प्रसन्नता लाभ की जाय तो गुरु कृपा का फल पूर्णज्ञान में परिणत होता है, एवं शिष्य निर्विघ्नता से अपने अभीष्ट की सिद्धि सहज ही प्राप्त कर लेता है, परन्तु अन्याय से आत्मप्रतारणा करके, गुरुसे महान् उपकार लेके प्रत्युपकार नहीं करने से, शिष्य में गुरु की संचारिणी शक्ति नष्ट हो जाती है, अथवा और ही रूप में परिणत हो जाती है, जिसकी साधना से शिष्य का मन उद्भ्रान्त एवं विक्षिप्त हो जाता है, और शान्ति रहित होकर नाना प्रकार के विकल्प पोषण करता है । इसी तरह गुरुभक्ति की अवज्ञा वा तिरस्कार करने से अथवा गुरुमें अनास्था होने

से शिष्य को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दुःख उपस्थित हो जाता है; एवं बलात्कार से उनके धनका नाश होता है और बहुत सी आपत्तियां आ पड़ती हैं, क्योंकि अन्याय से ग्रहण की हुई दीक्षा के ज्ञान का फल विपरीत हो जाता है।

जिन गुरु की आत्मशक्ति शिष्य में अष्ट प्रहर क्रिया कर रही है, जिन गुरु की शक्ति के स्मरणमात्र से शिष्य को अष्टांग-योग स्वयमेव होता है, जिनकी शक्ति के कार्य से शिष्य के शरीर मन, प्राण, बुद्धि विवश होकर अपना अस्तित्व खोदेते हैं, जिन गुरु की शक्ति की साधना में कार्याकार्य का कोई विचार नहीं है, और न तो किसी और गुरु की वा अन्यज्ञान की आवश्यकता है, शिष्य स्वयं अपना गुरु होता है, जिन गुरु की कृपा से साधक संसार में ही सुख पूर्वक रह कर अनायास धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है, ऐसा महा कल्याण-कारी साधन देने वाले निर्व्याजकरुणाकर गुरुसे दीक्षा लेके यदि शिष्य प्रत्युपकार में गुरु की कुछ भी सेवा न करे तो वह महा दुर्भागी है, वह कैसे सुखी हो सकता है।

शिष्य को दीक्षा देने से गुरुओं के अपने आत्मतेज की हानि होती है, जैसे सर्प विष के नष्ट होने से बल हीन होता है, और पुरुष वीर्य्य नाश से तेज हीन होता है, तैसे गुरु भी अपने आत्म सामर्थ्य व्यय करते रहने से उस समय प्रभाहीन हो जाते हैं, क्योंकि गुरु की दीक्षा से शिष्य के पाप संस्कारों में आघात पहुँचता है एवं उनका नाश होता है; इसलिये वे

संस्कार गुरुको आक्रमण करते हैं। गुरु शक्तिमान् हैं इसलिये उनका प्रशमन और नाश भी कर देते हैं, तथापि प्रत्याघात के स्वरूप कुछ समय के लिये गुरु व्याधिग्रस्त भी हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में यदि गुरु कृपा प्राप्त शक्तिमान् शिष्य उनकी सेवा न करे तो गुरुको उन लोगों के प्रति मनमें अनास्था और तिरस्कार आता है जिससे शिष्य का अमंगल होता है। गुरुका मन भी दीक्षा व्यापार से उदासीन हो जाता है। गुरुओं में भी एक ही सिद्ध गुरु के बहुत से शिष्य होते हुए भी सभी एक समान शक्तिसम्पन्न नहीं होते हैं इसलिये शिष्यों में भी उनकी क्रिया शक्ति के विकास का तारतम्य हो जाता है; जो गुरु सर्वत्यागी हैं एक स्थान में नहीं रहते हैं उन्हें सेवा की आवश्यकता बहुत कम होती है, परन्तु जो गुरु गृहस्थी हैं संसार में रहते हैं अथवा आश्रम मठ आदि एक निर्दिष्ट स्थान में रहते हैं ऐसे पुरुषों को परस्पर की सहायता की आवश्यकता होती है, इसलिये शास्त्र में गुरु सेवा करना कहा है। पुराकाल में वशिष्ठादि ऋषि-मुनि और याज्ञवल्क्य आदि योगी गृहस्थी गुरु थे, वर्तमान में बहुत करके साधनसंपन्न शक्तिवाले ही गुरु मिल सकते हैं परन्तु साधन मुक्तसिद्ध गुरु का मिलना अतीव दुर्लभ है, इसलिये दुर्बुद्धि न करके जिन गुरुसे उपकृत हुआ जाय उनका बिना विचार किये प्रत्युपकार करना चाहिये।

गुरु का कर्तव्य

वृथा परिश्रमस्तस्य निरयवैव केवलम्

शक्तिपात समायोगाद् ऋते तत्त्वानि तत्त्वतः ।
तद्व्याप्तिस्तद् विशुद्धिश्च ज्ञातुमेव न शक्यते ॥

शास्त्रकथनानुसार अपने कल्याण के लिये शिष्य गुरु को तन, मन, और धन अर्पण करके केवल उनकी कृपा का कांक्षी होकर रहता है, इसलिये शिष्य तो अपने कर्तव्य से मुक्त होता है, परन्तु गुरु का महान् कर्तव्य है कि वह भी दीक्षा द्वारा अपने सामर्थ्य से शिष्य को कृतार्थ करें, क्योंकि शिष्य को एकबार ग्रहण करने से गुरुका गुरुत्व भार बढ़ जाता है; इसलिये यदि गुरु शिष्य की सेवा लेकर उसका उद्धार न कर सकें तो महापाप के भागी होते हैं। गुरुका परमकर्तव्य है कि शिष्य को मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त सर्वदा काल उनके मन प्राण की गति विधि का लक्ष्य करके आवश्यकतानुसार अपने आत्म सामर्थ्य से उनकी सहायता किया करें, शिष्य को दीक्षामात्र देने से ही गुरुका कर्त्तव्य शेष नहीं हो जाता है, किन्तु शिष्य के निर्विघ्नता से अपने अभीष्ट की सिद्धि ज्ञान लाभ करने से ही गुरुका कर्त्तव्य निःशेष होता है। यह कर्त्तव्य पालन करने के लिये गुरुको शक्ति संचार करने का सामर्थ्य होना चाहिये, क्योंकि शिष्य में शक्ति संपात नहीं होने से तत्त्व समूह के यथार्थ स्वरूप तथा व्याप्ति और विशुद्धि एवं वास्तविक ज्ञान को कोई भी शिष्य जान नहीं सकता। यह प्रत्यक्ष सत्य है कि ईश्वर की शक्ति गुरुके मध्य होकर शिष्य में संचारित होती है तो शिष्य में शक्ति के संपात से ही श्री महेश्वर कथित महायोग का ज्ञान स्वयं प्रकाशित होता है।

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति ।
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात् समासतः ॥
यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते ।
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः ॥
तस्माल्लिङ्गानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः ।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं विशोधयेत् ॥
योऽन्यथा कुरुते मोहात् स विनश्यति दुर्मतिः ।
तस्मात् सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् ॥

अतएव शैवधर्म में यह प्रत्यक्ष है कि शिष्य में महेश्वर की शक्ति का प्रकाश ही शिष्य के कल्याण का मूल कारण है इसलिये शक्तिसंचार के अनुसार ही शिष्य फललाभ करता है, शक्तिपात नहीं होने से शिष्य की बुद्धि नहीं होती और न विद्या होती है और न शैवधर्म का आचार अष्टांग योग होता है जहां शक्ति का पात नहीं होता वहां मुक्ति भी नहीं हो सकती और न किसी प्रकार के कर्म धर्म की सिद्धि होती है, इसलिये गुरु दीक्षा देकर देखें कि शक्तिपात से जो नाना प्रकार की योग क्रियायें तथा आनन्द और प्रबोध होते हैं वे सब लक्षण शिष्य में होते हैं या नहीं । यदि न हुए हों तो चेष्टा करके प्रकाश कर शिष्य को उसका अनुभव कराना चाहिये, ताकि शिष्य अपने अनुभव से, गुरु के वाक्य से

तथा शास्त्र के प्रमाण से, जानकर भ्रान्ति रहित निःसन्देह हो जाय, यह बारंबार गुरु को देख लेना चाहिये और शिष्य को स्वाधीन कर देना चाहिये, ताकि उसकी कुंडलिनी शक्ति स्वयं उनमें आवश्यकतानुसार क्रियायें करती रहे और वह सर्वदा काल उसका बोध करता रहे इसी तरह गुरु का कर्तव्य है कि ज्ञान से अथवा योगक्रिया से शिष्य के अन्तःकरण की शुद्धि करके उसमें ज्ञान और योग प्रकाश करें; जब तक शिष्य का ज्ञान स्वयमेव प्रकाश न हो और योग की क्रियायें स्वतः न हों, तब तक गुरु का गुरुपना सिद्ध नहीं होता है, परंतु शक्तिसंचार का सामर्थ्य न होते हुए शिष्य की सेवा लेकर, अथवा सामर्थ्य होते हुए मोहवश प्रमाद से शिष्य की संपूर्ण शक्ति का विकास न करके शिष्य को मनस्तुष्टि किये बिना ही दीक्षा देके जो गुरु छोड़ देते हैं उनका विनाश होता है, इसलिये सद्‌गुरु को चाहिये कि निम्नकथित शास्त्रोक्त लक्षणों से शिष्य की परीक्षा करके उनके मन का संतोषसाधन करें।

लक्षणं शक्तिपातस्य प्रबोधानन्दसंभवः ।
सा यस्मात् परमाशक्तिः प्रबोधानन्दरूपिणी ॥
आनन्दबोधयोर्लिङ्गम् अन्तःस्फुरणविक्रिया ।
ययास्युः कम्परोमाश्चस्वरनेत्रादिविक्रियाः ॥
शिष्योऽपि लक्षणैरेभिः कुर्याद् गुरु परीक्षणम् ।
तत्सम्पर्के शिवार्चादौ स्वगतैर्वाथतद्गतैः ॥

श्री शंभु की शक्ति पात का यह लक्षण है कि शिष्य में आनन्द और प्रबोध का उद्भव होता है क्योंकि यह परमाशक्ति आनन्द और प्रबोध स्वरूपिणी है, प्रबोध और आनन्द से शिष्य को अन्तःस्फुरणरूप विक्रिया से हठयोग, मंत्रयोग, लययोग आदि की नाना प्रकार की योगक्रियायें तथा कंप रोमांच और स्वर नेत्रादि अंग की विक्रियायें होती हैं, अतएव इन लक्षणों से शिष्य भी शक्तिमान् गुरु की परीक्षा कर सकता है, कि गुरु सामर्थ्य वाले हैं या सामर्थ्य हीन हैं। वह अपने में शक्ति का संचार हुआ कि नहीं यह जानकर निश्चिन्त हो सकता है; और गुरु भी शिष्य में परमेश्वर की शक्ति के प्रकाश की ये सब बाह्य, आभ्यन्तर क्रियायें देख कर परीक्षा करके निश्चिन्त होते हैं। ईश्वर की शक्ति गुरु द्वारा शिष्य में संचारित होने से शिष्य प्रबोध और आनन्द लाभ करता है, शिष्य को एक प्रकार का अपूर्व ज्ञान एवं निर्विषय परमानन्द सुख का अनुभव होता है, यह लक्षण परम और चरम है, इसलिये हर एक शिष्य तात्कालिक इसका ठीक २ अनुभव नहीं कर सकते हैं; परंतु अन्तःस्फुरणरूप नाना विध आभ्यन्तरिक क्रियाओं का अनुभव करता है, उसमें प्रबोध और आनन्द मिश्रित रहता है कि जिससे शिष्य समझ सकता है कि शरीर में कोई शक्ति प्रवेश कर गई है। उससे विद्युत्स्पर्शसदृशस्फुरण चमक का अनुभव होता है और कंप रोमाञ्च स्वरभंग नेत्र विकृति एवं सिर के बाल का कंपन होता है, अथवा शरीर टूटने

लगता है, या भारी हो जाता है, अथवा हाथ पैर ढीले हो जाते हैं और मूलाधार पृष्ठ हृदय एवं मस्तक में भारीपने का बोध होता है और शरीर हिलने झूलने को चाहता है, इच्छा शक्ति को छोड़ देने से भूमि में पतन और अंग की विक्रिया चेष्टायें होने लगती हैं, अथवा श्वास प्रश्वास बढ़ जाते हैं या निद्रा की सी अवस्था होकर चित्त किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है, शरीर में चेंटी लगने का अनुभव होता है, अथवा शरीर शून्य हो जाता है, मन प्राण निष्क्रिय हो जाते हैं या शरीर का उत्ताप बढ़ जाता है और निद्रा सुषुप्ति वा मूर्च्छा की सी अवस्था भी हो जाती है अथवा सिर में चक्कर आने लगते हैं, भांग जैसा नशा चढ़ता है और मन के संकल्प बहुत कम हो जाते हैं अथवा बड़ी स्फुर्ति आ जाती है जिससे आनन्द आवेश में साधक नाना प्रकार की योग क्रियायें कर जाता है।

ये अव्यक्त शक्ति संचार के बाह्य और आभ्यन्तरिक लक्षण समूह साधारणतया गुरु के शक्तिपात से शिष्य में पहिले दूसरे या तीसरे रोज में ही प्रकाशित हो जाते हैं अथवा पांच सात रोज में तो अवश्य ही प्रकाशित हो जाते हैं, परन्तु यह बात गुरु का पूर्ण सामर्थ्य एवं कृपा और शिष्य की गुरु भक्ति एवं सुसंस्कार पर निर्भर करता है, क्योंकि इस दीक्षा कार्य में सभी गुरु एक समान शक्ति सामर्थ्य वाले नहीं होते हैं और न सभी शिष्य ही सुसंस्कारी होते हैं, इसलिये क्रिया शक्ति के विकास में समयान्तर हो जाता है। अतएव दीक्षा के अनन्तर तत्काल यदि

शिष्य में क्रिया शक्ति का प्रकाश न हो तो भी निराश नहीं होना चाहिये क्योंकि यदि शिष्य को ध्यानादिकाल में गुरु-शक्ति का थोड़ा भी अनुभव हुआ हो तो शिष्य को समझ लेना चाहिये कि अपने में भी उस शक्ति का प्रकाश अवश्य ही होगा; इस प्रकार शिष्य अपने में अथवा गुरु में शक्ति का प्रकाश देखकर अपने साधन में निश्चिन्त रहे। यह बात शास्त्र में कही है कि दीक्षा के पश्चात् भी अधिक से अधिक एक वर्ष पर्यन्त शिष्य गुरु शक्ति के प्रकाश की प्रतीक्षा कर सकता है।

बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः।
संस्कारो गुर्वधीनश्चेत् संस्क्रिया तु प्रभिद्यते ॥
श्री गुरौ निश्चला भक्तिर्वर्धते हि यथा यथा।
तथा तथास्य विज्ञानं वर्द्धते कुलनायिके ॥

इस विषय में यहां बहुत कहना अनावश्यक है क्योंकि जो कोई भी मनुष्य शिव शक्ति का आश्रय लेता है अर्थात् श्री महेश्वर की शक्ति से दीक्षित होता है उसको दीक्षा देने का पूर्ण सामर्थ्य शक्तिमान् गुरु में है। और गुरु शक्तिसंचार भी करते हैं परन्तु अधिकारी के भेद से शिष्य में क्रिया का प्रकाश विभिन्न प्रकार का होता है, इसलिये सब साधकों की क्रियायें एक सी नहीं होती हैं; जैसे जैसे शिष्य की गुरु में निश्चला भक्ति बढ़ती जाती है तैसे तैसे शिष्य में भी योग की क्रिया शक्ति का प्रकाश बढ़ता जाता है, जिससे उनके विज्ञान की वृद्धि होती है।

यस्य जन्मान्तरे पापकर्मबाधादिका भवेत् ।
न तस्य गुरुकारुण्यं कुलज्ञानं न जायते ॥

परन्तु यदि दुर्भाग्य वश किसी शिष्य को पूर्व जन्म के किये हूये पापकर्म बाधा डालें तो उसको गुरु कृपा का लाभ नहीं होता और कुण्डलिनी शक्ति जागरण का फल ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है इसलिये उसको पहले से ही इसका प्रतिकार कर लेना चाहिये, इसके लिये क्रमदीक्षा का विधान है तथापि गुरु चाहे जो कर सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

अपात्रेभ्यः प्रदत्ता च दीक्षा साऽपि महेश्वरि ।
मनोव्यापारमात्रेण निर्वीर्या भवति ध्रुवम् ॥
मोहेन वाऽथ लोभेन दीक्षामनधिकारिणे ।
यो दद्यात्स दरिद्रः स्यात् शिष्यः स्याद्दुःखभाजनम् ॥

परन्तु यह मानसिक दीक्षा अयोग्य पात्र को देने से निर्वीर्य हो जाती है-उसका निश्चय कोई फल नहीं होता इसलिये गुरुओं को ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, तथाऽपि यदि कोई गुरु मोहवश धनमानादि के लोभ से अनधिकारी को दीक्षा देंगे तो वे दरिद्र होकर दुःखी होंगे और दीक्षा लेने वाला अपात्र शिष्य भी महा-दुःख भोग करेगा।

योग साधनार्थ आसन स्थापन

तूलकम्बलवस्त्राणां सिंहव्याघ्रमृगाजिनम् ।

कल्पयेदासनं धीमान् सौभाग्यज्ञानवर्द्धनम् ॥
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिः मुक्तिः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ।
वस्त्रासने व्याधिनाशः कम्बलं दुःखमोचनम् ॥

साधारणतया योग साधन करने वाले साधकों को बिना आसन के ध्यान, भजन नहीं करना चाहिये इसलिये अपने निर्दिष्ट स्थान में आसन बिछा कर तपस्या करने का विधान है अतएव बुद्धिमान् साधकों को चाहिये कि सौभाग्य और ज्ञान की वृद्धि के लिये रूई और कम्बल के वस्त्रों को अथवा सिंह व्याघ्र और मृग चर्म के आसन काम में लावें। कृष्ण मृग चर्म के आसन पर बैठ कर धारणा ध्यान करने से ज्ञान की सिद्धि होती है, सिंह व्याघ्र चर्म पर बैठ कर समाधि लगाने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, कम्बल के आसन पर बैठकर भजन, जप, तप, पूजन करने से दुःख की निवृत्ति होती है और वस्त्रासन पर सोने बैठने से व्याधियों का नाश होता है।

धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने ।
वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडनम् ॥
तृणासने यशो हानिःपल्लवे चित्तविभ्रमः ।
जपध्यानतपोहानि जायते वसनासने ॥
नादीक्षितो विशेज्जातु कृष्णाजिनासने गृही ।
विशेद्यतिर्वनस्थो वा ब्रह्मचारी च भिक्षुकः ॥
मृद्धासने यदा मंत्री चैलाजिन कुशोत्तरे ॥

परन्तु पृथ्वी पर विना आसन के बैठकर भजन, पूजन, जाप ध्यान करने से दुर्भाग्य होता, है बांस के बने हुए आसन पर दारिद्र्य एवं खाली पत्थर पर बैठने से पीड़ा और रोगों की उत्पत्ति होती है, घास फूंस पर बैठने से यश की हानि होती है तथा पत्तों के आसन चटाई आदि पर बैठने से चित्त में भ्रान्ति होती है और खाली वस्त्र के आसन पर बैठकर भजन करने से जप, ध्यान और तप का नाश होता है। दीक्षा हीन और गृहस्थी मनुष्यों को मृग चर्म काम में नहीं लाना चाहिये वह केवल यति, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्यासियों के लिये ही है। पुरुश्चरण और मंत्र का अनुष्ठान करने के लिये कुशासन, उस पर मृग चर्म और उसके ऊपर रेशमी वस्त्र अथवा नरम कम्बल बिछा कर आसन करना चाहिये।

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले ।
स्थलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥
नाड़ीशुद्धिः समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ॥

योगाभ्यास के लिये कम से कम तीन साढ़े तीन गज और अधिक से अधिक छः सात गज लम्बा चौड़ा अच्छा लिपा पुता तथा साफ सुथरा कमरा होना चाहिये उसमें जल अग्नि अथवा और कोई ऐसा वैसा सामान नहीं रखना चाहिये परन्तु दर्शनीय देवता और साधनोन्नत सिद्ध पुरुषों के चित्रों से सुशोभित तथा धूप दीप से सुगंधित रखना चाहिये उसके मध्य में जमीन पर कुशासन, मृगासन और कम्बल बिछा कर उस पर पूर्व अथवा उत्तराभिमुख बैठ के गुरु और ईश्वर को प्रणाम कर प्रथम नाड़ी शुद्धि की क्रियायें करके फिर प्राणायाम करने चाहियें।

एकादश प्रकाश

दीक्षायोग प्रत्यक्ष प्रमाण है

परोक्षमपरोक्षञ्च द्विविधं ज्ञानमिष्यते ।
परोक्षमस्थिरं प्राहुः अपरोक्षं तु सुस्थिरम् ॥
हेतूपदेशगम्यं यत् तत् परोक्षं प्रचक्षते ।
अपरोक्षं पुनः श्रेष्ठादनुष्ठानात् भविष्यति ॥
नापरोक्षादृते मोक्ष इति कृत्वा विनिश्चयम् ।
श्रेष्ठानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रयतध्वमतन्द्रिता ॥

पूर्व ही कहा गया है कि ज्ञान शास्त्रसिद्ध परोक्ष और साधन सिद्ध अपरोक्ष दो प्रकार का है; शास्त्रसिद्ध परोक्ष ज्ञान अस्थिर है, जो स्थिर नहीं है वह चला भी जा सकता है और बदल भी सकता है अथवा और ही रूप में परिणत हो सकता है उससे चित्तका वास्तविक सन्तोष साधन नहीं हो सकता, परन्तु साधन सिद्ध अपरोक्षज्ञान सुस्थिर एवं प्रत्यक्ष है जो एक बार हो जाने से कभी नहीं जाता है और न बदलता है, और जिससे चित्त पूर्ण तृप्ति लाभ करता है; जो ज्ञान शास्त्रों की युक्तिद्वारा अथवा दूसरों के उपदेश से मिलता है वह परोक्ष कहलाता है और जो ज्ञान श्रेष्ठ योगानुष्ठान से स्वयं प्राप्त होता है वह दूसरा अप-

रोक्ष कहलाता है। सर्वशास्त्रों को जानने वाले ज्ञानियों का मत है और वेद का भी निश्चित कथन है कि विना अपरोक्ष ज्ञान के मोक्ष नहीं होती है, और यह प्रत्यक्ष अपरोक्षज्ञान विना योग के अनुष्ठान के नहीं आता, इसलिये योगसाधना करना परम-कर्त्तव्य है, अतएव इस श्रेष्ठ अनुष्ठान की सिद्धि के लिये प्रमाद रहित होकर योग साधना में लग जाना चाहिये।

तत्त्वं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ।
हेतुदृष्टान्तरहितं वाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥
अनुष्ठानं विना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते ।
प्रतिबिम्बित शाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ॥

परमतत्त्व को जानने वाले ज्ञानी लोग कहते हैं कि विज्ञान, आनन्द और ब्रह्म ही तत्त्व है वह हेतु और दृष्टान्त रहित है एवं मन वाणी से परे है, अर्थात् जो विज्ञान प्रत्यक्षस्वरूप, आनन्दस्वरूप पूर्णब्रह्मस्वरूप और सर्वव्यापी तत्त्वस्वरूप है वह मन वाणी का विषय नहीं है, केवल योगसाधना से अपरोक्षा-नुभवज्ञानगम्य है। इसलिये उसको युक्ति तर्क दृष्टान्त द्वारा अपने मन में भी समझा नहीं जा सकता, एवं वाक्य द्वारा दूसरों को भी समझाया नहीं जाता; परन्तु जो लोग योगसाधना का अनु-ष्ठान न करके ही अपने को ब्रह्मज्ञानी समझते हैं वे मूढ लोग शाखा के अग्रभाग में लगे हुए फल के प्रतिबिम्ब के आस्वादन वत् वृथा ही ब्रह्मज्ञान का आनन्द लेते हैं उन्हें ब्रह्मज्ञान का वास्तविक फल नहीं मिलता।

स्वस्याविद्यावन्ध सम्बन्ध मोक्षात्
सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ ।
शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं
चान्तःसिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणम् ॥

प्रत्यक्षं च प्रमाणाय सर्वेषां प्राणिनां प्रिये ।
उपलब्धिवशात्तस्य सताः सर्वे कुतार्किकाः ॥

परोक्षे कोऽनुजानीते कस्य किंवा भविष्यति ।
यद् वै प्रत्यक्षफलदं तदेवोत्तमदर्शनम् ॥

अपने को अविद्या संवन्धी वन्धन से छूटने के लिये सत्य, ज्ञान और आनन्दस्वरूप आत्मा की प्रत्यक्ष उपलब्धि करनी चाहिये । यह आत्म ज्ञान लाभ करने के लिये शास्त्र, युक्ति, गुरु का वाक्य तथा निज के अन्तर का अनुभव ये चार प्रमाण माने जाते हैं, यही सब शास्त्रों का कथन है, इसलिये व्यवहार में प्रत्यक्ष, अनुमान और शास्त्र इन तीन प्रमाण द्वारा लोग तत्त्व का निश्चय करते हैं, किंतु उसमें जो विषय प्रत्यक्ष नहीं होता है उसको तर्क, युक्ति एवं शास्त्र द्वारा तथा अनुमान से सिद्ध करके मानते हैं; परन्तु शास्त्र तथा अनुमान प्रमाण की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण सब को ही अधिक माननीय है, कोई भी विषय जब स्वयं अनुभव से प्रत्यक्ष हो जाता है तो युक्ति, तर्क वितर्क वाद वितण्डा करने वाले कुतार्किक लोग भी सब निरस्त हो जाते हैं क्योंकि

परोक्ष में किस विषय का क्या होगा कौन जानता है? इसलिये जो प्रत्यक्ष फल देता है वही उत्तम दर्शन योगशास्त्र प्रत्यक्ष प्रमाण है। अतएव प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने और किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती।

गुरु दीक्षा

दीक्षा च द्विविधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
क्रियादीक्षा भवेद्बाह्या वेधाख्याभ्यन्तरी मता॥

द्विधादीक्षासाधारा च निराधारा तथैव च।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये यस्याश्चैवाधिकारिता॥

साधारा सा च संप्रोक्ता निराधारा च मुक्तिदा।
निर्मला सा च विज्ञेया कथ्यते तत्त्वचिन्तकैः॥

दीक्षा बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार की हैं; धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के लिये हवन, जप, देवार्चन, पुरश्चरण इत्यादि नाना प्रकार की क्रियाओं से होने वाली शास्त्री, होत्री, क्रियावती, वर्णमयी और क्रमदीक्षा आदि जितनी दीक्षायें हैं वे सब बाह्यदीक्षायें कहलाती हैं जिसमें जप, तप, हवन इत्यादि परिश्रम साध्य क्रियाकर्म किये जाते हैं, परन्तु शांभवी, शाक्ति, योग और वेध आदि दीक्षायें आभ्यन्तरिक कहलाती हैं जिनमें बाह्याडंबर की कोई आयास साध्य क्रियायें नहीं करनी पड़ती हैं; ये दीक्षायें गुरु के आत्म सामर्थ्य से और कुंडलिनी के जागरण से होती हैं जिनकी क्रिया भी आयासरहित है और इनसे

ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। दीक्षा अधिकारी के भेद से साधारा और निराधार नाम से दो प्रकार की मानी गई है; नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्म संपादन करने के लिये जो दीक्षा ली जाय अर्थात सन्ध्यादि नित्य कर्म के लिये उपनयन संस्कार की दीक्षा तथा शत्रुनाश के लिये या दूसरों को अपने अनुकूल करने के लिये यज्ञादिकर्म करने की दीक्षा और यश, धन, ऐश्वर्य कामना सिद्धि के लिये जो ली जाय वह साधारा कहलाती है इससे ही धर्म अर्थ और कामना की सिद्धि होती है; परन्तु यह बाह्य दीक्षा मोक्ष नहीं दे सकती है, इसलिये मोक्ष देने वाली दूसरी आन्तरिक दीक्षा है, जो निराधारा कहलाती है, तत्त्वचिन्तन करने वाले ज्ञानी महात्माओं का कथन है, कि इस निराधार: आन्तरिक दीक्षा को ही निर्मल, पवित्र मोक्ष देने वाली जानना चाहिये; यह अन्तर की दीक्षा किसी बाह्य स्थूल वस्तु अथवा बाहर के किसी भी क्रिया कर्म की अपेक्षा नहीं करती, यह तो केवल गुरु और शिष्य के मानसिक व्यापार से संपन्न होती है, इसलिये इसको निराधारा कहते हैं। इस दीक्षा द्वारा ही गुरु शिष्य में शक्ति संचार करते हैं।

गुरोरालोकनादेव स्पर्शात् संभणादपि।
यस्य संजायते ह्याज्ञा तस्य नास्ति पराक्रिया॥

मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना।
स नेह कथ्यते गुह्यो गुरुस्त्वेक गोचरः॥

जिस दीक्षा द्वारा गुरु शिष्य में शक्ति संचार करते हैं, जिस से सब प्रकार के योग की साधना होती है, वह सूक्ष्म महाशक्ति चैतन्यरूपी शैवी शक्ति है। जो गुरु परंपरा से शिष्य में आती है और स्पष्ट चैतन्यरूप से प्रकाश पाती है, तब वह शक्ति आज्ञा नाम धारण करती है, जैसे भृत्य को स्वामी आज्ञा देता है और भृत्य भी स्वामी की आज्ञानुसार आवश्यकीय काम काज करता है तैसे ही शिष्य भी गुरु की संचारित शक्ति का संकेत आज्ञा पाकर आत्म ज्ञान के लिये आवश्यकीय कर्म क्रियायें करने लग जाता है। गुरु की दृष्टिद्वारा, स्पर्शद्वारा, वाक्य से अथवा मन से जिस शिष्य को सद्गुरु की आज्ञा शक्ति प्राप्त होती है, उसको अपनी ओर से कल्याण के लिये जप, तप, प्राणायाम, धारणा ध्यान आदि कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे स्वामी भृत्य को अपनी आज्ञानुसार काम करने को कहते हैं भृत्य की इच्छानुसार नहीं, भृत्य भी स्वामी की इच्छानुसार सब काम करता है तैसे ही शिष्य भी गुरु की आज्ञानुसार उनकी शक्ति से सब काम करने लगता है अपनी इच्छा से नहीं वर्तता। सेवक के लिये स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही कर्तव्य है तैसे शिष्य को भी अपना ज्ञान ध्यान त्याग के गुरु की आज्ञा को कार्य में परिणत करना है, गुरु की आज्ञाशक्ति से बढ़कर शिष्य के लिये और कोई क्रिया कर्म नहीं है यही पाशुपत महायोग का सिद्धान्त है। अतएव महायोग साधन करने वाले साधकों को गुरुकी आज्ञा बिना और कोई भी साधन करने की आवश्यकता नहीं है। जिन

गुरु की आज्ञा शक्ति सभी कुछ करा रही है उसमें अपनी बुद्धि चलाने से अथवा अपनी इच्छा से और और साधन करने से अनर्थ होता है, इसलिये जिन भाग्यवान् साधकों को ऐसे समर्थ गुरुओं से दीक्षा द्वारा गुरु की आज्ञा शक्ति प्राप्त हुई है उन्हें समझ लेना चाहिये कि गुरु की आज्ञा सर्वोपरि है, उनको न मानना ही अपना अनिष्ट करना है। श्रीगुरु की योग शक्ति से अथवा उनके मन से शिष्य को निराधारा अन्तर दीक्षा होती है जिससे साधक लोग आश्चर्य महान् आश्चर्यमय घटनायें देखते सुनते हैं और कहते हैं, उन सब का भेद तो श्रीगुरु ही जानते हैं, ये बातें गुप्त हैं. कहने योग्य नहीं है, अतएव शास्त्र में गुप्त रखी हैं, यहां तो उनका आवश्यकीय सामान्य भेदमात्र कहा है। इस विषय में यदि किसी को अधिक जानने की इच्छा हो तो वे अपने गुरु से जान सकते हैं।

सद् गुरु कृपा

मूलाधारेषु या नित्या कुण्डली तत्व रूपिणी।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परमा त्रिसतन्तु-स्वरूपिणी॥
विद्युत्पुञ्ज-प्रतीकाशा कुण्डलीकृत रूपिणी।
परब्रह्म गृहीणी पञ्चाशद् वर्ण रूपिणी॥
शिवस्य नर्तकी नित्या परब्रह्म प्रपूजिता।
ब्राह्मणः सैव गायत्री सच्चिदानन्द रूपिणी॥

तद्भ्रमावर्तवातोऽयं प्राणात्मा नित्यनूतना ।
नित्यं तिष्ठतु सानन्दा कुण्डली तव विग्रहे ॥

दीक्षा के समय जिन गुरु में शिवजी का अधिष्ठान होता है जो गुरु श्री महेश्वर के अधिष्ठान का आश्रय करके प्रसन्न होकर शिष्य को आज्ञा शक्ति और आशीर्वाद देते हैं, कि तुम में जो शक्ति मूलाधार में नित्य निवास करती है, जिस के बोध से तत्त्व ज्ञान का उदय होता है, जो तत्त्व ज्ञान देने वाली तत्त्व स्वरूप पद्मतन्तुवत् सूक्ष्माति सूक्ष्म परमाशक्ति कुण्डलिनी महा देवी है, जिसका रूप कोटि कोटि विद्युत्पुञ्ज के सदृश है, जो शक्ति परब्रह्म परशिव की पत्नी है, और अ से क्ष पर्यन्त पचास अक्षर रूपिणी है, जो श्री शिवजी की प्रसन्नता के लिये सदा नृत्य करती है, वही तुम को योग ज्ञान ध्यान की क्रियायें कराती है। जिनकी कृपा से तुम्हारे सर्व अभीष्ट की सिद्धि होती है, जो योग का परम ऐश्वर्य ज्ञान प्रदान करती है, ऐसी सदा उपासना करने योग्य सच्चिदानन्द स्वरूपिणी ब्रह्म गायत्री कुण्डलिनी देवी हमारे गुरु परंपरा के आशीर्वाद से तुम्हारे में सर्वदा जागृत रहे और तुम्हें नित्यनूतन नाना प्रकार की योग क्रियायें एवं दिव्य अनुभव कराती रहे, जिससे तुम्हारे शरीर, मन, प्राण स्वस्थ और संगठित हो जायें, एवं तुम संसार में रहते हुए सुख पूर्वक अपने परम कल्याण को प्राप्त कर सको।

शिवशक्तिपरां पूजां योगेनैव समाचरेत् ।
मन्त्रोदकैर्विना सन्ध्यां पूजाहोमैर्विना जपम् ।

उपाचारैर्विनायागं योगी नित्यं समाचरेत् ॥
यमादि नियमैः पुष्पैः आत्मैकादशभिः परैः ।
दशदिक्षु तथा मध्ये यजेत परमेश्वरम् ॥
ध्यानिनां हि वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम् ।
ध्यानयज्ञरतास्तस्मात् देवान् पाषाणमृण्मयान् ।
नात्यन्तं प्रतिपद्यन्ते शिवयाथात्म्यवेदनात् ॥

इस प्रकार गुरु का आशीर्वाद और आज्ञाशक्ति प्राप्त होकर योग साधना करने वाले साधक योग के द्वारा ही अन्तर में शिव शक्ति का पूजन करते हैं, जिनकी बिना मन्त्र और जल के ही सन्ध्या होती हैं अर्थात् सुपुम्ना चलती है, जो पूजा एवं होम के बिना ही जप करते हैं, जिनका जप स्वतः होता है; तथा जो घृत काष्ठादि हवन की सामग्री के बिना ही नित्य यज्ञ करते हैं, जिनके पांच यम एवं पांच नियम दश और ग्यारवां मन ही पुष्प है, कि जिससे वे पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण एवं अग्नि नैऋत्य वायव ईशान और अधः ऊर्ध्व दशों दिशाओं में तथा शरीर के मध्य में एक परमेश्वर का ही पूजन करते हैं । इसी प्रकार ईश्वर को सर्वत्र पूजने वाले योग ध्यान परायण साधकों के निकट ईश्वर का ज्योतिर्मय सूक्ष्म शरीर प्रत्यक्ष प्रकट होता है । इसलिये ये साधक गुरु शक्ति के ध्यान रूप यज्ञ में लगे रहते हैं और जिनको श्री शिवजी के वास्तविक ज्योतिर्मयस्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है; वे काष्ठ पत्थर और मृत्तिका के निर्मित

देवताओं का ध्यान वा आश्रय नहीं करते हैं, क्योंकि जो लोग शिव के वास्तविक रूप को यथातथ्य जानते हैं वे बाहर के स्थूल रूप देवी देवताओं को भजना सर्वदा अन्तर से ही त्याग देते हैं।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि योगयोगीशलक्षणम्।
तस्य श्रवणमात्रेण योगः साक्षात्प्रकाशते।
सम्मोदः परमानन्दः पतनं गायनं तथा।
वेणु वीणादिवाद्यश्च कवितारचनादिकम्॥
रोदनं भाषणञ्चैव समुत्थानं विजृम्भणम्।
गमनं विक्रिया देवि योग इत्यभिधीयते॥
विकृतिं मनसो हित्वा यदोल्लासः प्रवर्तते।
तदा तु देवताभावं भजन्ते योगिपुङ्गवाः॥

श्री महेश्वर कहते हैं हे देवि! अब तुम्हें वास्तविक योग कहता हूँ गुरु के शक्तिसंपात से शिष्य की अन्तर शक्ति कुंडलिनी देवी जाग जाती है और क्रियायें करने लग जाती है तब शिष्य के मन प्राण और शरीर में नाना प्रकार की बाह्य और आभ्यान्तर कम्पनादि क्रियायें होने लगती हैं; शिष्य के कोटि कोटि जन्म के संस्कार छिन्न भिन्न होकर नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं, जिससे साधक को जन्मजन्मान्तर की अस्पष्ट स्मृति होती है अथवा नाना प्रकार की योनिओं के अपने सुख दुःख का भान

होता है, और जिसके कारण वह पशुपक्षी आदि के शब्द के सदृश भय सूचक शब्द करता है अथवा आह्लादित होकर हंसता है, रोता है, एवं भाव पूर्ण आवेश में आकर महा आनन्दित होकर परम प्रसन्नता लाभ करता है, और उस आनन्द आवेश में भूमि में गिर जाता है, लोट पोट होजाता है, और आनन्दोल्लास में आकर गाने लगता है, एवं वंसी, वीणा मृदंग आदि वाद्य मुख से शब्द करके बजाता है एवं साथ ही साथ गान कवितादि की रचना भी करता रहता है, कभी रोने लगता है अथवा अपने आप अकेला ही भाषण देने लग जाता है, या नाना प्रकार की भाषा बोलता है, आसन से उठ जाता है आवेश में आकर नाना प्रकार की चेष्टायें करने लग जाता है; जम्भाई लेने लगता है घर में चलने फिरने लग जाता है, इस प्रकार गुरु कृपा से कुण्डलिनी शक्ति जगने के कारण ऐसी मन प्राण की विक्रिया होकर जो साधन होता है वही वास्तविक योग कहलाता है, इसयोग में होने वाली क्रियाओं की संख्या और उनके स्वरूप का वर्णन करना मनुष्य बुद्धि के परे की बात है; तथापि इस महायोग का विज्ञान साधक केवल श्रद्धा से ही समझ लेता है और साधक आनन्दोल्लास में आ कर इतने विचित्र व्यापार, आसन. प्राणायाम, बन्ध मुद्रादि ऐसी ऐसी विचित्र और नाना प्रकार की योग क्रियायें कितनी ही संख्या में कर जाते हैं तथापि उनका मन पराधीन व ज्ञान शून्य नहीं होता, साधक का ज्ञान पूर्ववत् बना रहता है, आनन्दमद से उत्साहित साधक का मन

जब अन्तर शक्ति की प्रेरणा से क्रियायें करता है उस अवस्था में भी उन पर कोई बलात्कार नहीं होता, साधक की बुद्धि निश्चल रहती है। संकल्प मात्र से वह सब कार्य से तुरन्त ही निवृत्ति लेकर पूर्ववत् अपनी अवस्था में आजाता है, इस तरह जब मन उल्लास को प्राप्त होकर सब कार्य करता है और विकृत नहीं होता है तब साधक योगी दिव्यभाव को प्राप्त होता है।

उन्मनाः पतनोत्थाने मूर्छना च मुहुर्मुहुः।
देहेन्द्रियाणामवशः समवस्था निगद्यते ॥
अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा तु शाम्भवी मुद्रा सर्व तंत्रेषु गोपिता ॥
एषा तु खेचरी मुद्राशिवस्य समबोधिनी।
सर्वोत्तीर्णा सदाहन्ता सामरस्य समाकृतिः ॥

इन क्रियाओं का आवेशमात्र दीक्षा के समय ही होता है ऐसा नहीं है परन्तु दीक्षा के पश्चात् भी जब तक शिव शक्ति का सम्मेलन नहीं होगा तब तक यावज्जीवन अथवा जब तक मुक्ति नहीं होगी तब तक जन्मान्तर में भी बना रहेगा, इसलिये साधक को कोई खास नियम बद्ध रहने की वा प्रतिज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु नित्य प्रति गुरु के आदेशानुसार प्रातः और सायंकाल बैठ कर साधना करनी पड़ती है, इससे ही दिन प्रति दिन नई नई क्रियायें और साथ ही नाना प्रकार के अनुभव अपने आप होते रहेंगे। श्री महेश्वर कहते हैं कि इसी तरह

योग-साधना करने वालों को भूमि में पतन और उत्थान अर्थात् नाना प्रकार के बैठकर, लेटकर आसनों का करना, एवं बार बार प्राणायाम तथा श्वास प्रश्वास लेने छोड़ने की क्रिया करने से उन्मनी अवस्था आती है, कि जिससे शरीर और इन्द्रिय अवश हो जाती हैं प्राणस्पन्दन लय हो जाता है, मन एकाग्र और निरुद्ध हो जाता है। इसी तरह शरीर, मन, प्राण इन्द्रियाँ अवश और विवश हो जाने से सम अवस्था समाधि होती है। इस समाधि के पूर्व साधक को और भी बहुत सी क्रियायें होती हैं। जैसे आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा, नाड़ीशुद्धि आदि इन सब क्रियाओं से समाधि होती है और समाधि हो जाने पर आवश्यकतानुसार ये क्रियायें होती रहती हैं। जितनी २ ये क्रियायें आयत और दृढ़ होती हैं उतने ही काल तक सम अवस्था आती जाती रहती है, इसलिये साधक को और २ क्रियाओं के साथ शाम्भवी मुद्रा हो जाती है जिससे अन्तर में लक्ष्य और बाहर में दृष्टि होती है, ऐसी निमेष उन्मेष वर्जित शाम्भवी मुद्रा हो जाती है। यह शाम्भवी मुद्रा सब तंत्रों में गुप्त है जिसको साधक बिना प्रयास के ही स्वयं कर लेता है। ऐसे ही साधक को खेचरी मुद्रा भी हो जाती जिह्वा तालु में उलट कर लग जाती है और रस पान होता है, यह भी अपने आप होती है। श्री शिव जी के स्थान में अमृत का बोध कराने वाली खेचरी मुद्रा तथा श्री शम्भु के स्वरूप को दर्शानेवाली शाम्भवी मुद्रा साधक को अपने आप ही हो जाती हैं जिनके प्रभाव से साधक में आत्मतत्त्व का प्रकाश होता है।

जिससे साधक अपने आपको विभुत्वभाव से बोध करता है।

न किञ्चिदपि जानन्ति स्वात्मध्यानपरायणाः।
तदा यत्परमं सौख्यं मनोवाचामगोचरम् ॥
स्वयमेवानुभूयन्ते शर्करा क्षीर पानवत्।
कीदृशं तादृशं सौख्यं इति वक्तुं न शक्यते ॥
दृश्यते पुलिकाद्यैर्यत्तद् ब्रह्मध्यानमुच्यते।
यत्सुखं विद्यते ध्याने देहावेशकरं परम् ॥
कथितुं नैव शक्नोति प्रबुद्धस्तत्समाहितः।
ब्रह्मध्यानपरानन्दपराः सुकृतिनो नराः ॥
क्षणेऽप्यन्तर्हिते तस्मिन् शोचन्त्यासंहता इव।

इस प्रकार जब साधक को शाम्भवी और खेचरी मुद्रा हो जाती हैं तब शारीरिक मानसिक और २ क्रियायें कम हो जाती हैं और मात्र प्राण की ही क्रियायें होकर रह जाती हैं। प्राण शुषुम्ना विवर में प्रवेश कर जाता है एवं शाम्भवी तथा खेचरी मुद्रा दृढ़ता से लगी रहती हैं इससे साधक को आत्मा का जो ध्यान होता है वह अवर्णनीय है। उस अवस्था में साधक योगी कुछ नहीं जानता, उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता है, वह आत्म तत्त्व में तन्मय हो जाता है, इसलिये आत्मा के बिना और कुछ नहीं जानता, परन्तु उस ध्यान में जो परम सुख होता है वह वाणी और मन से अगोचर है, उसको ध्यान करने वाला स्वयं ही

अनुभव कर सकता है किन्तु अन्य किसी को कह नहीं सकता। अतएव योग साधन से स्वयं ध्यान करने वाले साधकों को ध्यान से जिस प्रकार का सुख और आनन्द होता है वह किस प्रकार का है वह किसी भी प्रकार से कहा नहीं जा सकता है तथापि उनके वाह्य लक्षणों से अन्तर के आनन्द का थोड़ा बहुत परिचय होता है।

जो लोग गुरु प्रदत्त योग साधन करते हैं, जिनकी कुण्डलिनी शक्ति क्रियाशीला हो गई है, जिनका ध्यान संकल्प मात्र से ध्येय में स्वभाविक ही लग जाता है, उनके अन्तर के लक्षण तो वही जानते हैं परन्तु उनमें बाहर के लक्षण भी थोड़े बहुत प्रकाश पाते हैं। उनके मन, प्राण और शरीर की चेष्टायें सात्विकता धारण करती हैं इसलिये इन्द्रियां शान्त और स्वच्छ प्रकाशमान् हो जाती हैं, वे सर्वदा आनन्दोल्लास से प्रफुल्ल और प्रसन्न रहते हैं। ध्यान के स्मृति मात्र से उनकी दृष्टि अन्तर्मुख होने लगती है, इसलिये नेत्र मदोन्मत्त हो जाते हैं वाणी कोमल और गद्गद हो जाती है, अन्तरात्मा के सुख से शरीर में भाव पूर्ण रोमांच होकर कम्पन आदि होने लगते हैं एवं श्वास प्रश्वास बन्द हो जाते हैं यह ब्रह्म ध्यान का लक्षण देखने में आवे तो समझना कि ध्यान ठीक होता है, क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति जागने से मन, प्राण, शरीर आवेश पूर्ण हो जाते हैं, उस परम देहावेश में जो सुख ध्यान में मिलता है उसको ध्यान करने वाले साधक ध्यान से जागकर भी प्रकाश नहीं कर

सकते । जो भाग्यवान् साधक इसी तरह ब्रह्म का ध्यान करते हैं वे क्षणमात्र भी यदि उस ध्यान के परम आनन्द से च्युत हो जायें तो आघात प्राप्त व्यक्ति की तरह दुःख प्रकाश करते हैं वे ऐसे परम ध्यान के सुख का वियोग क्षणमात्र भी नहीं चाहते ।

प्रत्ययाश्च प्रवर्तन्ते प्रशस्तफलसूचकाः ।
मयि भाववतां पुंसां प्रागदृष्टार्थगोचराः ॥
कम्पस्वेदोऽश्रुपातश्च कण्ठे च स्वरविक्रिया ।
आनन्दाद्युपलब्धिश्च भवेदाकस्मिकी मुहुः ॥
एतैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा लिङ्गैरव्यभिचारिभिः ।
मन्दमध्योत्तमैर्भावैर्विज्ञेयास्ते नरोत्तमाः ॥

श्री महेश्वर कहते हैं कि जब सद्गुरु के शक्ति संचार से अथवा ईश्वर के अनुग्रह से या पूर्व जन्म के प्रबल पुण्य प्रताप अथवा शिव पूजनादि भक्तिसाधन द्वारा मनुष्य मुझ में भावान्वित होते हैं, तब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है, और पूर्व जन्म का किया हुआ योग साधन इस जन्म में आरम्भ कराती है जिससे प्रशस्त फल सूचक नाना प्रकार के प्रत्यय प्रवर्तित होते हैं ये निदर्शन मनुष्यों के अदृष्ट सिद्धि के कारण होते हैं । साधक को कम्प, प्रस्वेद, अश्रुपात, कण्ठस्वर की विक्रिया से विकृत शब्दोच्चारण, तथा कूदना, नाचना, हँसना, रोना, चिल्लाना इत्यादि क्रियायें, आनन्द उपलब्धि के आवेश से अकस्मात्

बारम्बार होती हैं। जिन मनुष्यों में ये सब अकृत्रिम लक्षण पृथक् पृथक् व्यस्त भाव से अथवा समस्त एक साथ मंद, मध्यम और उत्तम भाव से प्रकाश पाते हैं उन भक्तों को उत्तम, श्रेष्ठ साधक जानना चाहिये। मंद में कम्पनादि शारीरिक क्रियायें इच्छामात्र से रोकी जा सकती हैं, मध्यम भाव में शारीरिक और मानसिक क्रियाओं का वेग कष्ट से संभाला जाता है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरिक क्रियाओं को रोकने में मन को दुःख होता है और उत्तम भाव वह है जिसमें क्रियायें मन और शरीर को विवश कर दें और क्रिया शक्ति को रोकने की इच्छा ही न हो।

यथा योऽग्नि समादेशान्नायो भवति केवलम्।
तथैव मम सान्निध्यान्नते केवल मानुषाः॥

अवज्ञानं कृतं तेषु नरैर्व्यामूढचेतनैः।
आयुः श्रियं कुलं शीलं हत्वा निरयमावहे॥

गुरु कृपा से जिनकी कुण्डलिनी शक्ति जागने से मुझ में भक्ति उत्पन्न होगई है उन भक्तों को सामन्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये क्योंकि लोहे में अग्नि प्रवेश होने पर जैसे वह केवल लोहा नहीं रहता, उसी प्रकार मेरे सान्निध्य में आजाने से वे केवल मनुष्य नहीं रहते, परन्तु दिव्य भाव को प्राप्त हुवे दिव्य गुणयुक्त दैवी शक्ति सम्पन्न पूजने योग्य हैं। इसलिये जो मूढ़ ऐसे मेरे भक्तों की अवज्ञा करते हैं वे लोग अपनी आयु, अर्थ, कुल, श्री और शील को नष्ट करके अधोगामी होते हैं।

सर्ववेदमयी देवी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी ।
सर्वमंत्रात्मिका विद्या वेदविद्याप्रकाशिनी ॥
सैव कुण्डलिनी माया शुद्धाध्वपरमासती ।
सा त्रिभागस्वरूपैव षडध्वात्मा विजृम्भते ।
तत्र शब्दास्त्रयोऽध्वानस्त्रयश्चार्थाः समीरिताः ॥

इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जाग कर क्रियाशील होने से वास्तविक योग आरम्भ होता है, उसका ही नाम स्वाभाविकयोग, सिद्धयोग एवं महायोग है। यही सिद्धि प्रद मार्ग है, इसी उपाय से सर्व वेदज्ञानमयी, मंत्रस्वरूपिणी, सर्वमंत्रात्मिका विद्या और वेदविद्या का प्रकाश करने वाली कुण्डलिनी शक्ति साधक को क्रियायें कराती है, जिससे समस्त मंत्र तथा सर्व विद्याओं के विज्ञान का प्रकाश हो जाता है। तब साधक देवी देवताओं केदर्शन करते हैं, उनका अनुग्रह लाभ करते हैं और मंत्र वेदादिक शास्त्रों के मंत्र का विज्ञान जानते हैं तथा वेद का गूढ़ रहस्य समझने लगते हैं। वह कुण्डलिनीशक्ति वर्ण, पद और मंत्र इन तीन शब्दरूप से और भुवन, तत्त्व तथा कला इन तीन अर्थरूप से छः प्रकार से प्रकाशित होती है फलस्वरुप साधक भुवन अर्थात् अन्तर के दिव्य लोकों के ज्ञान का अनुभव करता है और तत्त्व पृथिव्यादि छत्तीस तत्त्वों का ज्ञान लाभ करता है और कला विद्या शक्ति कुण्डलिनी देवी की प्रकाश क्रिया को जान जाता है तब वर्ण, पद और मंत्र का बोध करता है। कुण्ड-

लिनी शक्ति षड् चक्र का भेदन व शोधन करती है और शुषुम्णा मार्ग में प्रवेश करती है और साधक को क्रमसे समाधि की अवस्थायें दर्शाती हैं। शिव शक्ति के सम्मेलनार्थ कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से साधक लोग ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक क्रियायें करते हैं जिनकी कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती। अपने २ संस्कार के अनुसार साधक हठ, मंत्र, लय और राज योग की शारीरिक मानसिक और प्राण की क्रियायें करते हैं जो नानाप्रकार की हैं जिनका वर्णन करना भी सहज नहीं है तथापि जो २ अनुभव साधकों को देखने में आये हैं, उनका यहां वर्णन किया गया है ।

नाड़ी शुद्धि की क्रियायें

मलाकुलासु नाड़ीषु मारुतो नैव गच्छति ।
प्राणायामः कथं सिद्धस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत् ।
तस्मादादौ नाड़ी शुद्धिं प्राणायामं ततोऽभ्यसेत् ॥

शरीर की सब नाड़ियों के मल से आवृत्त होने के कारण प्राण शुषुम्णा में सरलता से प्रवेश नहीं करता है इसलिये प्राणायाम की सिद्धि नहीं होती और न तत्त्वज्ञान ही होता है अतएव प्रारम्भ में नाड़ियों की शुद्धि होना आवश्यक है, इसलिये कुण्डलिनीशक्ति साधकों को प्रथम ही नाड़ी शुद्धि की क्रियायें कराती है। वातक्रम व्युतक्रम, शीतक्रम, भस्त्रा, अग्निसार, वायुसार, नौली और कपालभाती इत्यादि क्रियायें जो कि नेती धोती बस्ति का काम

करती है वे साधकों को स्वयं वायु द्वारा रेचक, पूरक, कुम्भक, प्राणायामरूप से हो जाती हैं अर्थात् साधकों को मुख, नासिका, गुदा और लिङ्ग से प्राण अपान वायु के निस्सरण एवं ग्रहण तथा निरोधरूप से ये सब क्रियायें कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से होजातीं हैं।

अङ्ग विकृति—नाना प्रकार के भाव भंगी, देहविक्षेप, व्यायाम, अङ्गमर्दन, अङ्गड़ाई, घर्षण, अभिघात, नेत्र की विक्रिया, आंखों के तारों का घूमना, आस्फालन–हाथ पैरों का फेंकना और फैलाना, धावन, भ्रमण, चक्कर लगाना, घूर्णा, झूमना–सरक कर सारे घर में लोट पोट होना, नृत्य करना, दार्दुरीगति–पद्मासन पर बैठकर मेंढक की तरह उछल कर जहां तहां गिरना, कूदना फांदना, पागल की तरह या मद्यपायी उन्मत्त की तरह अथवा भूताविष्ट के सदृश शारीरिक मानसिक चेष्टायें करना और भाव दिखाना इत्यादि नाना प्रकार की प्राण वायु की क्रियायें साधक स्वयं करते हैं, और भी साधकों की प्रकृति के अनुसार कितनी ही विकृत क्रियायें होती हैं जैसे कम्प, रोमाञ्च, अन्तर में स्फुरण, स्पन्दन, स्पर्श, जृम्भण, हास्य, रोदन, पतन, स्तम्भन, शरीर का भारी हो जाना, जमीन में लग जाना, श्वास, प्रश्वास का अत्यधिक आना जाना, प्रस्वेद, नेत्रों से जल का गिरना, लालास्राव, शरीर की कृषता, मल मूत्र का अल्प होना अथवा कोष्ठ काठिन्य होना, अल्प निद्रा वा अति निद्रा आना या निद्रा का अभाव होना, शीत लगना अथवा उत्ताप बोध करना, जो सुप्त रोग शरीर में हैं उनका प्रका-

शित होजाना, शरीर दुःखने लग जाना, पेट में दर्द होना, कामोत्तेजना, आत्यन्तिक कामेच्छा से वीर्य क्षरण हो जाना, अथवा दस्त लग जाना या मूत्र स्राव होना बहु मूत्र होना, ज्वर आजाना, हिक्का, श्वास आदि रोग जो शरीर में पहिले से हों सो उनका बढ़ जाना इत्यादि साधक के संस्कारानुसार कुण्डलिनी शक्ति सब दोषों के निवारणार्थ नाना प्रकार की क्रियायें कराती है जिससे कि साधक के सब रोग शीघ्र नष्ट हो जायें।

स्वर विक्रिया

विकृत शब्द—मुख, नासिका अथवा गले से नाना प्रकार के शब्द करना, स्वर साधन—नाना प्रकार के सुर, पशु पक्षी, मैंढ़क, कुत्ता बिल्ली. सिंह, व्याघ्र इत्यादि सदृश शब्द करना, गर्जन, हुँकार, चीत्कार और भयंकर शब्द करना तथा जल्प—बकने लग जाना, अद्भुत भाषा बोलना, क्रन्दन ध्वनि—नाना प्रकार के स्वर करके रोना, हास्यध्वनि—खिलखिला कर नाना भाव से हँसना, गान करना, भगवान के नाम का कीर्तन करना, मुखवाद्य बजाना जैसे मृदंग, तानपूरा के सदृश ध्वनि करना, नियमानुसार ताल देकर ताली बजाना, गद्य पद्य या गान की रचना करना, व्याख्यान देना और अनालस्य उत्साहित रहना इसी प्रकार नाना प्रकार के स्वर स्वयं साधक के बनते हैं और बिगड़ते हैं।

आसन

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रञ्च स्वस्तिकम्।
सिंहञ्च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥

मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ॥
मायुरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तान कूर्मकम्।
उत्तानमंडूकं वृक्षं मंडूकं गरुडं वृषम्।
शलभं मकरं उष्ट्रं भुजंगश्चयोगासनम् ॥

सिद्ध, पद्म, भद्र, मुक्त, सिंह, गोमुख, वीर धनुः, मृत, गुप्त, मत्स्य, पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र गोरक्ष, उत्कट, मयूर, कुक्कुट, कूर्म, मंडूक, वृक्ष, गरुड़, वृषभ, शलभ, मकर, उष्ट्र, भुजंग, और योगादि नाना प्रकार के आसन होते हैं। इन आसनों से शरीर स्थिरता प्राप्त करता है, शरीर में अग्नि की पाचन क्रिया भली प्रकार होती है और रजोगुण, तमोगुण प्रशमन होते हैं और और शरीर नीरोगी रहता है।

साधक को कई प्रकार की योनियों के आसन होते हैं क्योंकि जीव कोटि कोटि जन्म ले चुका है, इसलिये चौरासी लाख योनियों में भ्रमण भी कर चुका होगा अतः उन योनियों के अति सूक्ष्म संस्कार जीव में होते हैं जो कुंडलिनी शक्ति जागरण से स्मृति पथ में आकर चले जाते हैं। स्वप्न की तरह ये संस्कार ध्यानावस्था में साधक को भासते हैं उसके कारण ही साधक स्वाभाविक चेष्टावान् होता है किस योनि के कैसे संस्कार हैं यह साधक शारीरिक, मानसिक प्राण और स्वर की क्रियाओं के अनुमान से जान जाते हैं, अथवा जब साधक

की शुद्ध स्मृति दृढ़ होती है तो साधक स्वयं जन्मान्तरों के संस्कारों का अच्छी तरह अनुभव करता है ऐसा भी प्रत्यक्ष देखा गया है। अतएव साधक जो आसन करते हैं वे भी उनके संस्कारों का परिणाम हैं इसलिये चौरासी लाख आसनों में से हजारों प्रकार के आसन साधक अपने आप कर जाते हैं। उद्भिद योनि के आसन–पद्म, ताल, वृक्ष आदि। जल योनि के आसन–कूर्म, मत्स्य, मकर इत्यादि। कीट योनि के आसन–भुजंग, शलभ वृश्चिक आदि। पक्षी योनि के आसन–मयूर, गरुड़, कुक्कुट, हंस इत्यादि। पशु योनि के आसन–सिंह, वृषभ, उष्ट्रासन आदि।

ये आसन खड़े होकर बैठकर, लेटकर, सोकर, उल्टे, सीधे, टेढ़े और बांके होकर नाना प्रकार से किये जाते हैं और अनेक प्रकार से होते हैं।

बंध आदि मुद्रायें

महामुद्रा महाबंधो महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूलबंधश्च बंधो जालंधराभिधः॥
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रा दशकं जरामरणनाशनम्॥

महा मुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्यान, मूलबंध, जालंधर बंध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालन ये दश मुद्रायें जरा और मृत्यु का नाश करती हैं। ये भी आसन के ही अन्तर्गत हैं।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्यानं जलंधरम् ।
मूलबंधो महाबंधो महावेधश्चखेचरी ॥
विपरीतकरी योनिर्वज्रोली शक्तिचालनी ।
ताडागी मांडुकी मुद्रा शाम्भवी पंचधारणा ॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी ।
पचविंशति मूद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम् ॥

महा मुद्रा, नभो मुद्रा, उचडान, जालंधर, मूलबंध, महाबंध महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोली, शक्तिचालनी, ताड़ागी, मांडुकी, शाम्भवी, पार्थिवी आम्भसी, वैश्वानरी, वायवी, आकाशी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगिनी ये पच्चीस मुद्रायें योगियों को सिद्धि देने वाली हैं। ये भी आसनों के साथ ही की जाती हैं। आसनों का प्रधान कार्य शरीर को स्थिर करके दशों वायु को भली प्रकार चलाना और मुद्राओं का प्रधान कार्य शरीर को दृढ़ करके प्राण वायु को अंग विशेष में स्थिर करना है, जिससे मन धारणा करने में समर्थ हो जाता है। मुद्राओं के स्थानः—मूलद्वार और योनि स्थान में अश्विनी मुद्रा मूलबंध तथा महाबंध होता है इनकी क्रिया गुदा का संकोचन और विकास करने से होती है। नाभि और उदर में उडचान बंध, ताड़ागी मुद्रा तथा सारंगी होती है इनका कार्य उदरस्थ वायु को भरना और खाली करना है, कण्ठ संकोच में जालंधर बंध एवं चक्षु में त्राटक और शाम्भवी मुद्रा होती हैं

कर्ण में नाद श्रवण, षाणमुखी मुद्रा तथा भ्रामरी होती हैं, जिह्वा में खेचरी नभो मुद्रा और मांडूकी होती हैं, मुख में भुजंगी, काकी और योनि मुद्रा होती हैं, मस्तक में विपरीत करणी होती है, और सर्वाङ्ग में महामुद्रा, महावेध तथा ताड़न परिधान आदि क्रियायें होती हैं। इस प्रकार साधक को शास्त्रानुसार अपने आप प्रकृति देवी कुण्डलिनी शक्ति सब क्रियायें कराती है। इन बंध मुद्राओं के साधन से साधक का आनन्द तथा उत्साह वढ़ता है और इनका नित्य अभ्यास होते रहने से जठराग्नि प्रज्वलित होती है, श्वास, काश, प्लीहा और बीस प्रकार के श्लेष्मा के रोग सब नष्ट हो जाते हैं।

प्राणायाम

आनन्दोद्भव योगार्थं निद्रा घूर्णिस्तथैव च।
रोमाञ्चध्वनि सम्बिद्ध सांग मोटन कम्पनम्॥
भ्रमणं स्वेद जल्पाश्रु सम्बिन्मूर्छा भवेद्यदा।
तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः॥

योग शास्त्र में कुण्डलिनी शक्ति जागरण के लिये प्राणायाम को ही मुख्य साधन कहा है। योग शास्त्र कथनानुसार प्रथम प्राणायाम से घर्म, मध्यम से कम्प और उत्तम से प्राण का उत्थान होकर कुण्डलिनी जाग्रत होती है। ये प्राणायाम अपनी इच्छा से परिश्रम करके करने पड़ते हैं, परन्तु जब कुण्डलिनी जाग्रत हो

कर क्रियायें कराती है तो इनसे भी बढ़ कर प्राणायाम बिना परिश्रम स्वतः ही होते हैं उनसे साधक को महा आनन्द के चिह्न, घूर्णा, योग निद्रा तथा रोमाञ्च उद्भव होते हैं और साधक आनन्दावेश में आकर ओम् की ध्वनि करने लगता है और उसे शरीर का मरोड़ना, कम्प, भ्रमण, प्रस्वेद जल्प होने लगते हैं एवं आनन्दाश्रु बहने लगते हैं और साधक को ज्ञान युक्त मूर्छा हो जाती है जिससे योग का अर्थ स्पष्ट हो जाता है, यही उत्तम से भी उत्तम प्राणायाम है। जब २ कुण्डलिनी शक्ति को शुषुम्णा विवर में होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाने की आवश्यकता होती है तब २ कुण्डलिनी महादेवी स्वयं ही साधक से योग शास्त्र कथनानुसार नाना प्रकार की क्रियाओं के साथ प्राणायाम कराती है, जिससे कि साधक के मन, प्राण, शरीर स्वस्थ और संगठित हो जाय एवं साधक बिना प्रयास अपना अभीष्ट सिद्ध कर सकें।

इसी तरह कुण्डलिनी महाशक्ति साधक को कई प्रकार के प्राणायाम भी कराती है। सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम हैं, इनके सिवाय वाह्याभ्यन्तर और स्तम्भवृत्ति तथा केवल कुम्भक प्राणायाम हैं जो आवश्यकतानुसार साधक को स्वतः ही होते हैं इन सबका वास्तविक विज्ञान योग साधना करने से ही जाना जाना है इसके साथ ही साथ साधक का पंचभूत के तत्त्व समूह का ज्ञान स्वयं स्फुरता है। जो साधक पूर्वजन्म में ज्ञान, योग, भक्ति, मंत्र जप देवी देवताओं की

पूजा करके आये हैं उन्हें इसी जन्म में भी किसी भी प्रकार से कुण्डलिनी शक्ति के जागने से अपने पूर्व जन्म के संस्कारानुसार ज्ञान का साधन—सब में आत्मतत्त्व का एकत्व अनुभव करना, योगसाधन—यमनियमादि अष्टांग योग क्रियायें करना, और भक्तिसाधन में भगवत् प्रेम के लक्षण—चित्तचाञ्चल्य, चित्त-क्षोभ, भयत्रास, शंका, संशय, उग्रता, तथा गर्व, प्रफुल्लता, विषाद और स्वप्नयुक्त निद्रा एवं सुषुप्ति तथा मूर्छा और भाव-समाधि का होना, और मंत्र जप वालों को भी भक्ति मार्गानुसार उपरोक्त लक्षण समूह तथा देवी देवताओं के दर्शन इत्यादि होते हैं। सब साधकों की एक सी क्रियायें नहीं होतीं, हरेक की प्रकृति और प्रवृत्ति विभिन्न है इसलिये साधकों के अनुभव और क्रियायें भी विभिन्न होतीं हैं क्योंकि प्रत्येक साधक के संस्कारों की विभिन्नता के कारण सबकी क्रियायें एक सी नहीं हो सकतीं, परन्तु सबकी साधनाओं का अन्तिम फल समाधि वा ज्ञान और मोक्ष एक ही है।

नौ रस

रौद्रोऽद्भुतश्च शृंगारो हास्यं वीरो दया तथा।
भयानकश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेमभक्तिकः॥

रौद्र—तीक्ष्ण भाव, अद्भुत—विस्मयजनक भाव, शृंगार—रतिजनकभाव, हास्य—हंसी खुशी प्रसन्नता का भाव, वीर—उत्साह पूर्ण भाव, दया—करुणा का भाव, भयानक—भय सूचक

भाव, बीभत्स—घृणाव्यञ्जक भाव, और सप्रेम भक्तियुक्त शान्त—नम्र भाव ये नौ भाव रस कहलाते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति जागने से नाना प्रकार के अश्रुत शास्त्रों का ज्ञान और अज्ञात सब भाव समूह स्वयं प्रकाशित हो जाते हैं और उस भावावेश में ही साधक महा आनन्दित रहता है। एवं मन में जो स्फुरणायें होती हैं उनको क्रिया रूप में अपने २ संस्कारानुसार प्रकट करता है, जिसकी कोई शृङ्खला या क्रम नहीं है। जिस समय जो भाव वृत्ति आती है वह अपना वैसा ही कार्य करती है। अव्यक्त चैतन्य शक्ति से साधक के मन को सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा कभी तीव्र भाव की प्रेरणायें होती हैं जिन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, कार्य में परिणत होने देने की आवश्यकता है, इसलिये साधक लोगों को निःशंक निर्भय होकर अपनी इच्छा शक्ति को क्रिया में परिणत होने देना चाहिये।

जब साधक में रौद्रभाव का प्रकाश होता है तो साधन काल में साधक क्रोध और कर्कश भाषा में अपने रौद्ररूप को प्रकाशित करता है और जब साधक में अद्भुत रस की क्रियायें होती हैं तब वह महाविस्मय प्रकाश करता है क्योंकि उसे अनुभव भी विस्मयकर ही होते हैं, वैसे ही साधक में शृङ्गार रस का आविर्भाव होता है तो अपने उपास्य देव को पति रूप से देखता है अथवा आत्मरति में निमग्न हो जाता है और जब साधक में हास्य रस का विकास होता है तो वह साधन काल में स्मित,

हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित इन छः प्रकार के हास्यों में से किसी भी प्रकार के हंसने की क्रिया करता है और घण्टों तक नाना प्रकार से हंसता ही रहता है। साधक को क्रिया करते २ वीर रस का भाव आजाता है तो वह इतनी स्फूर्ति से गर्जन तर्जन आस्फालन, शरीर का तोड़ना, मरोड़ना, अथवा आवेश में कठिन से कठिन कार्य को भी सहज में कर डालता है और यदि चाहे तो उस अवस्था में वह मजबूत से मजबूत चीजों को भी तोड़मोड़ सकता है अर्थात् साधन काल में वह वीर की तरह उत्साह पूर्ण होता है। साधन काल में बहुत से साधक करुणा रस में भर जाते हैं तो कष्ट व्यञ्जक करुणा जनक स्वर में रोते हैं और रुलाते हैं। बहुत से साधकों को साधना करने बैठते ही अन्तर में भय का संचार होता है जिससे वह भय भीत हो जाते हैं अथवा भयसूचक शब्द करते हैं। कितने ही साधक साधन समय में निन्दा और घृणासूचक शब्द बोलते हैं और तिरस्कार सूचक शरीर की चेष्टायें करते हैं। ऐसे ही शान्त भाव वाले साधक साधन काल में चुप चाप सुनसान शरीर, मन, प्राण इन्द्रियों की क्रिया के व्यापार को रोक कर निश्चेष्ट बैठ जाते हैं और अपने अन्तरात्मा में संलग्न हो जाते हैं जिस से परम शांति और महासुख अनुभव करते हैं। इस तरह महायोग साधन में अन्तरात्मा की प्रेरणा से साधकों को शारीरिक, मानसिक और प्राणकी क्रियायें होती हैं, सब तत्त्व और भौतिक विषय समूहका ज्ञान हो जाता है, एवम् ये प्राकृतिक

तत्त्व साधक के अनुकूल हो जाते हैं, उनके स्थान, कार्य, स्थिति और स्वरूप को साधक स्वयं जानने लगता है और उन से अपनी आवश्यकतानुसार भौतिक और आध्यात्मिक सहायता लेता है वे भी साधक के प्रतिकूल कभी नहीं होते।

ये सब क्रियायें अर्थ शून्य नहीं हैं

यत्र यत्यत्कृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्।
तत्सर्वं देवता प्रीत्यै जायते सुर सुन्दरि॥
जल्पो जपफलं तन्द्रा समाधिरभिधीयते।
विक्रिया पूजनं देवि छर्दितं भैरवी बलिः॥
मुक्तिः स्याच्छक्तिसंयोगः स्तोत्रं तत्कालभाषितम्।
न्यासोऽयत्रसंस्पर्शो भोजनं हवनक्रिया।
वीक्षणं ध्यानमीशानि शयनं वन्दनं भवेत्॥

अतएव साधक की कुण्डलिनी महाशक्ति जाग्रत होने से मंत्र, यंत्र, जप, तप, पाठ, पूजन उल्टा सीधा जो कुछ भी क्रिया हो वह सब शुभरूप होकर फलने लगता है और सब देवी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। क्रिया के समय साधक जो कुछ भी शुभ अशुभ क्रिया कर्म करते हैं वे सब आत्मदेव की प्रीतिसम्पादन-कर्ता हैं। इसलिये क्रिया करते समय साधक का जलपना, बकना जप का फल देता है और उस समय की तन्द्रा या निद्रा समाधि का फल देती है अंगों की चेष्टा विक्रिया पूजा का फल प्रदान

करती है, रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम वलि का काम देता है जिस से सब पाप नाश होते हैं, इसी तरह उस समय का कुण्डलिनी शक्ति का संयोग मुक्तिरूप फल देता है और क्रिया साधना के समय का बोलना स्तोत्र पाठ के सदृश फलदायक है तथा उस समय का अवयव संस्पर्श हाथ से निज अंग प्रत्यंग का मर्दन और स्पर्श मंत्र न्यास का काम करता है, क्रिया करते समय का खाया हुआ भोजन हवन का फल देता है, और क्रिया शक्ति के आवेश से जिस तरफ भी दृष्टिपात होता है या देखा जाता है वह ध्यान रूप है उससे ध्यान का फल होता है, एवं क्रिया करते २ लेट जाना ईश्वर के प्रति साष्टांग प्रणामरूप नमस्कार का फलदायक है, इसी तरह साधक कुण्डलिनी जागरण से अपने २ संस्कारानुसार जो कोई भी क्रियायें करते हैं चाहे शुभ हों या अशुभ हों सब आध्यात्मिक ज्ञान में परिणत होकर महामंगलरूप सुखदायक हो जाती हैं।

योगक्रिया द्वारा कर्मनिवृत्ति

अध्यात्मविद्या हि नृणां सौख्यमोक्षकरीभवेत् ।
धर्म कर्म तथा जप्यमेतत्सर्वं निवर्तते ॥
मत्प्रसादाद्विशुद्धानां दुखमाश्रमरक्षणम् ।
न विधि न निषेधश्च तेषां मम यथा तथा ॥

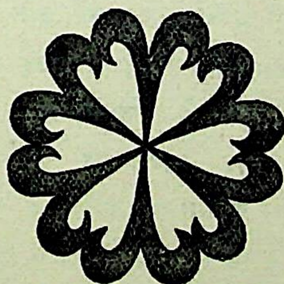
क्योंकि त्रिताप से संतप्त मनुष्यों को संसार में रह कर परम शान्ति पाने के लिये एक मात्र उपाय आध्यात्म योग विद्या

है जो परम सुख और मुक्ति प्रदान करती है, उसकी प्राप्ति होने से साधक के सब धर्म कर्म पाठ, पूजन, जप, तप इत्यादि अपने आप छूट जाते हैं और साधक सदा के लिये विधि निषेध के सब धर्मकर्म से निवृत हो जाता है, इसलिये श्री महेश्वर कहते हैं कि मेरी कृपा प्रसाद क्रियाशक्ति से जो साधक विशुद्ध होगये हैं उनके लिये शास्त्र कथित वर्णाश्रम धर्म का रक्षा करना कष्ट कर है इसलिये वे आश्रम धर्म की रक्षा नहीं कर सकते, न उन्हें करना आवश्यक है, क्योंकि वे भी मेरी भक्ति एवं शक्ति के बल से मेरे ही सदृश विधि और निषेध से परे हैं। अतएव उनके लिये विधि निषेध का कोई वन्धन नहीं है।

आद्यज्ञानोदये काम्यकर्मत्याग उदीर्यते।
द्वितीयसम्यग्ज्ञाने तु नैमित्तिकनिराकृतिः ॥
तृतीयपूर्णज्ञाने तु नित्यकर्मनिराकृतिः।
चतुर्थाद्वैतबोधेतु सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥

अतएव प्रथम तो योग साधना से ज्ञान का उदय होता है जिससे साधक लोग काम्य कर्म का त्याग करते हैं क्योंकि ज्ञान का प्रकाश होने से साधकों के मन में सांसारिक सुख प्राप्ति की कोई इच्छा नहीं रहती। इसलिये वे कामना करके कोई कर्म नहीं करते। इसी तरह ज्ञान का उदय होने से साधक के काम्य कर्म का त्याग होता है। दूसरे योग साधना से प्रकाशित हुआ ज्ञान साधक की बुद्धि में समा जाता है सम्यक प्रकार से ज्ञान

प्रतिष्ठा पा जाने से साधक लोग निमित्त कर्म का भी त्याग कर देते हैं क्योंकि वे लोग किसी निमित्त से कोई कर्म नहीं करते। इसी ज्ञान के विचार से उनके निमित्त कर्म का त्याग होता है। तीसरे योग साधना से साधक को पूर्ण ज्ञान हो जाता है तो वे नित्य कर्म का भी त्याग करते हैं और चौथे साधक को अद्वैत ज्ञान होने पर उनके वर्णाश्रम धर्म का भी त्याग हो जाता है। इसी तरह श्री शिव जी की कृपा क्रिया शक्ति से ज्ञान का उदय होकर प्रतिष्ठा पाकर पूर्णतया लाभ करने पर साधकों के नित्य निमित्त काम्य और प्रायश्चित तथा निषिद्धादि सब कर्मों का त्याग हो जाता है और साधक अद्वैत ज्ञान से शिवरूप होजाते हैं तब उनको कोई कर्म बांध नहीं सकते।



द्वादश प्रकाश

दीक्षा द्वारा कुण्डलिनी शक्ति की मन्त्र सृष्टि

यदा भवनि सा संविद्विगुणीकृतविग्रहा ।
सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्द ब्रह्ममयी विभुः ॥
शक्ति ततो ध्वनितस्मान्नादस्तस्मान्निबोधिका ।
ततोऽर्धेन्दुस्ततो विन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः ॥
पश्यन्ती मध्यमा वाणी वैखिरी सर्ग जन्मभूः ।
इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मासौ तेजोरूपा गुणात्मिका ।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम् ॥

गुरु दीक्षा से साधक को जब संवित्–स्वप्रकाशिका ज्ञान शक्ति कुण्डलिनी देवी अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए विशेष गुणयुक्त क्रियाशीला होती है तो शब्द ब्रह्ममयीशक्ति से अनेकानेक चमत्कार गुणवती शक्ति का प्रसव करती है और उस शक्ति से ध्वनि, नाद, निबोधिका, अर्धेन्दु, विन्दु, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वर्णमाला प्रकाशक के क्षेत्र वैखिरी वाणी को उत्पन्न करती है। यह कुण्डलिनी शक्ति ही तेजरूप होकर गुणों का आश्रय करके इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप से प्रकाशित होकर उपरोक्त क्रमसे वाणी और वर्णमाला को सृष्टि करता है

जिसका अनुभव साधनकाल में साधक अपने में होने वाली क्रियाओं के लक्षणों से जान सकते हैं कि वे कुण्डलिनी शक्ति की किन २ क्रियाओं का अनुभव कर रहे हैं।

कुण्डलिनी के प्रथम सम्वित्स्वरूप की अवस्था में साधक को अनुभव होता है कि शरीर, मन, प्राण शक्ति हीन हो गये हैं तथापि चेतना बनी है। दूसरे जब कुण्डलिनी, शक्तिरूप से प्रकाश पाती है तो साधक को अपने में मन, प्राण की क्रिया शक्ति का अनुभव होता है फिर ध्वनि के उत्पन्न होने पर साधक अन्तर में अव्यक्त ध्वनि शब्द सुनता है परन्तु नाद का ठीक निर्देश नहीं कर सकता। जब कुण्डलिनी नाद का रूप धारण करती है तब साधक अन्तर में व्यक्त सूक्ष्माति-सूक्ष्म नाद को स्पष्ट सुनता है इसके पश्चात् साधक को निबोधिका अवस्था का बोध होता है जिसमें ज्योतियों का दर्शन होना आरम्भ होता है फिर अर्धेन्दु—चन्द्रमा के दर्शन होते हैं उसके पश्चात् विन्दुरूप ज्योति का प्रकाश होता है उससे सब प्रकार के नाद सुस्पष्ट होकर भिन्न २ शब्द, वीणा, वंशी, भ्रमरादि रूप से परा, पश्यन्ती मध्यमा में अनुभव करता है और फिर वैखिरी द्वारा वर्णमाला के रूप में नाना प्रकार की क्रिया से शब्द के रूप में व्यक्त करता है।

गुणिता सर्वगात्रेषु कुण्डली पर देवता।
विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मंत्रमयं जगत्॥
एकधा गुणिता शक्तिः सर्व विश्वप्रवर्तिनीं।

वेदादिबीजं श्रीबीजं शक्तिबीजं मनोभवम् ॥
प्रासादं तुम्बुरं पिण्डं चिन्तारत्नं गणेशवरम् ।
मार्तण्डं भैरवं दौर्गं नारसिंहं वराहजम् ॥
वासुदेवं हयग्रीवं बीजं श्री पुरुषोत्तमम् ।
अन्यान्यपि च बीजानि तदोत्पादयति ध्रुवम् ॥

वह परम देवता स्वरूपिणी ईश्वरी शक्ति जाग्रत होकर अच्छी तरह क्रियायें कराती है तो साधक के शरीर में व्याप्त होकर मंत्रमय जगत् को रचने लगती है जिससे साधक वेदादि शास्त्र के बीज मंत्र प्रणव की ध्वनि करने लगता है साथ ही साथ आवेश में नाना प्रकार के देवी देवता शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य्य, गणपति, दुर्गा, भैरव, नृसिंह, वराह, वासुदेव, हयग्रीव, पुरुषोत्तम आदि देवताओं के ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इत्यादि बीज मंत्र उच्चारण करके जपने लगता है, इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जो कि साधक ने देखे सुने और सीखे न हों ऐसे अन्यान्य मंत्र सब निश्चय उस के मुख से प्रकाश कराती है कि जिससे साधक के नाम राशि के प्रतिकूल अनिष्ट करने वाले मंत्र भी चैतन्य और सिद्ध हो जांय इससे मंत्र प्रतिपाद्य कुण्डलिनी शक्ति और मंत्र चैतन्य की एकता की सिद्धि होती है ।

स्वतः सिद्ध प्रणव

एतदेवाक्षरं ब्रह्म ह्येतदेवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत् ॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की व्यक्त और अव्यक्त तथा व्यापक अवस्था से प्रथम वेद का बीज मंत्र ओंकार का प्रकाश होता है ॐ के पश्चात् और २ देवी देवताओं के मंत्र की रचना होती है इसलिये कुण्डलिनी शक्ति जागरण होने से साधक को प्रथम ध्वनि रूप शब्द ओंकार का बोध परावाणी में होता है क्योंकि ओंकार से ही मंत्र सृष्टि का आरम्भ होता है । यह ॐ अक्षर ही ब्रह्म है और यही महा श्रेष्ठ है इसको जो अपने अन्तरात्मा में स्वतः स्फुरित जानते हैं उनकी जो कोई भी इच्छा हो वही परिपूर्ण होती है यह ॐ ही परम श्रेष्ठ अवलम्बन है योग साधना से इस परम आश्रय को जान लेने से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है ।

अतएव यह बीजरूप ॐ ब्रह्म है ऐसा वेद का कथन है, ब्रह्म अवाङ्मनोगोचर है, तद्रूप वेद स्थित यह मूर्तिमान् ॐ भी मन वाणी से परे लक्ष्यार्थ है, जैसे ब्रह्म के रूप को वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता तैसे ही इस ॐ के रूप को भी सामान्य वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता, परन्तु इसका अन्तर में ब्रह्म की तरह बोध किया जाता है। साधारणतया व्यवहार में आने वाले अक्षर सोलह स्वर और छत्तीस व्यञ्जनवर्ण प्रचलित हैं, व्याकरण के हिसाब से उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से कई प्रकार के होकर ह्रस्व दीर्घ प्लुतादि

स्वर से उच्चारित किये जाते हैं परन्तु उद्गीथ स्वरूप इस ब्रह्मरूप ॐ के सदृश आकृति वाला उन अक्षरों में से कोई नहीं है इसलिये इसका उच्चारण भी उन अक्षरों की सहायतासे नहीं हो सकता है।

ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षदायकः ।
आप्यायनः प्लुतोवापि त्रिविधोच्चारणेन तु ॥

शास्त्र में वैदिक मंत्र जप के फल की अवधि कही है इसलिये सामवेद के मंत्र षडज, ऋषभ, गान्धारादि स्वर से उच्चारण करके जप हवन करने से उसका फल सद्य मिलता है। सामवेद के उद्गाता उद्गीथ उपासना में वेद के स्वरों से ॐ की ध्वनि करते हैं उसका स्वर भी उसके ही अन्तरगत है। यह ॐ स्वतः सिद्ध है इनके विचित्र स्वरों की योजना कुण्डलिनी शक्ति से होती है तब इसका ह्रस्व उच्चारण होने से पापोंका नाश होता है और दीर्घस्वर से उच्चारण होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है और प्लुत स्वर से उच्चारण करने से शरीर मन प्राण तृप्ति लाभ करते हैं।

सिद्ध महायोग का कार्य सम्पादन करने वाली योगमाया कुण्डलिनी शक्ति वैदिक मंत्र के समस्त स्वरों का सम्पादन करती है तब यही ॐकार परावाणी से प्रस्फुरित होकर पश्यन्ती मध्यमा में होता हुवा वैखिरी में व्यक्त होता है और वैखिरी की क्रिया आरम्भ होते ही साधक को मूलाधार एवं तालुमूल में कम्पन आरम्भ होता है और कम्पनके साथ षडज ऋषभ गान्धा-

रादि विचित्र स्वर से दीर्घ प्रणव उच्चारण होता है इस प्रणव की ध्वनि का अर्थ स्वर व्यञ्जन वर्णों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। मूलाधार से कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से साधक स्वयं उच्चारण करता है तब साधक प्रायः अर्द्ध संज्ञा शून्य हो जाता है और हृदयाकाश में बहुत से नादों का गुंजार सुनता है परन्तु नाद का निर्देश नहीं कर सकता और आवेश में आप्लुत हो जाता है, तब उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि मैं बड़े जोर की ध्वनि कर रहा हूं यह गगनभेदी ध्वनि यदि रात्रि के समय खुले मैदान में कीजाय तो दो तीन मील पर्य्यन्त गति शील होती है, सुनने में ऐसी श्रुति मधुर होती है कि सुनने वालों के मन को मुग्ध कर देती है परन्तु ध्वनि के स्वरादि समझ में नहीं आते हैं वरन् बहु स्वर मिश्रित कोई अद्भुत स्वर की प्रतीति होती है। जैसे सामवेद के उद्गाता और श्रोता स्वर की एकता में तल्लीन हो जाते है तैसे ही यह स्वतः प्रणव की ध्वनि उभय को अर्थ बोध रहित आश्चर्यता में निमग्न करती है इसके स्वर का कुछ भाग हुँकार शब्द के साथ मिलता है परन्तु ठीक हुँकार कहा नहीं जा सकता क्योंकि इसकी विचित्रता का वर्णन नहीं हो सकता।

जब वैखिरी क्रिया के प्रणव जप की ध्वनि अपना समय समाप्त कर लय हो जाती है तब इसके बाद साधक वैसी ध्वनि अपनी इच्छा से भी कर सकता है परन्तु मानसिक आनन्द नहीं आता और पांच दश बार ध्वनि करते ही चित्त चाहता है कि

अब न करें, क्रान्ति हाने लगती है और गले का स्वर भंग हो हो जाता है, स्वभावतः क्रिया के आवेश में कई एक साधकों ने प्रायः नित्यप्रति चार पांच घण्टा मासावधि काल दीर्घ प्रणव की ध्वनि की थी उस समय उसका स्वर गगनभेदी होता था और शरीर स्फुर्तियुक्त रहता था। महामायाकृत इस योगक्रिया कौशल का सामर्थ्य लिख कर समझाना सहज नहीं है। इस दीर्घ प्रणव ध्वनि के वाद किसी २ भाग्यवान् साधक को यही ध्वनि सूक्ष्म होती है महायोग में इसका नाम है स्वतः प्रणव जाप, उक्त दीर्घ प्रणव जाप की अपेक्षा इस सूक्ष्म जाप में मन उससे शतगुण अधिक सुख अनुभव करता है और इस जप की क्रिया अष्ट प्रहर चलती रहती है, स्वप्न में भी साधक का मन क्रियात्मक रहता है इसके आरम्भ और अवधि का कोई नियम नहीं है।

सूक्ष्म प्रणव जाप आरम्भ होने के पश्चात् मन योग से प्राप्त होंने वाले ऐश्वर्य की वाञ्छा नहीं करता और इस जप के कारण अन्तरमुख होकर रहता है विषय वासना ह्रास हो जाती है, एवं मन आत्म तत्त्व में अति निष्ठावान् हो जाता है और मूर्च्छित होकर रहता है, काम क्रोध से व्यथित नहीं होता, प्राण प्रवाह स्पन्द प्रायः रहता है और श्वास प्रश्वास दीर्घ नहीं होते साधक को क्रिया में बैठने पर और दूसरी क्रियायें कम आती हैं यही क्रिया मुख्य रह जाती है, इसके साथ २ साधक को सूक्ष्म नाद श्रवण गोचर होता है कभी दूर कभी निकट का लक्ष्य होता है, परन्तु इस अवस्था में भो साधक अन्तर में कोई दृश्य नहीं

देखता, उसका मन शान्त एवं शून्य एकाग्र रहता है, समयानुसार कभी २ बाहर की भी विस्मृति हो जाती है किन्तु प्रायः साधक का मन इस अवस्था में भी बाहर के विषय ग्रहण करने का सामर्थ्य रखता है, इस स्वतः प्रणव जप की अवस्था से मन धारणा में पूर्ण प्रतिष्ठित होता है जिससे साधक आलस्य एवं निद्रा को जीत लेता है, और शरीर में सत्वगुण का संचार सदा बना रहता है।

योग माया कृत वैखिरी क्रिया से प्रवर्तित स्वतः सिद्ध प्रणव यह ॐ वर्णरूप नहीं कहा जा सकता परन्तु ध्वनिरूप कहने की आवश्यकता है, क्योंकि षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इन सप्त स्वरों के साथ इसकी ध्वनि का सम्बन्ध प्रतीत होता है, किन्तु स्वरों का पृथक् निर्देश नहीं होता, इसलिये अद्भुत किंवा विचित्र कहने में अत्युक्ति नहीं है। अतएव स्वतःप्रणव जाप में मनकी अवस्था मन ही जानता है, सूक्ष्म प्रणव जप की ध्वनि के स्वर का कहना किसी साधक से अभी तक नहीं बना, साधक इस क्रिया को अनाहत ॐ ध्वनि अथवा नादानुसन्धान कह कर मौन हो जाते हैं, परन्तु अनाहत ध्वनि एवं स्वतः प्रणव जप की ध्वनि में विशेष तारतम्य है, क्योंकि अनाहत ध्वनि दश प्रकार की होती है, प्राणवायु के ब्रह्मरन्ध्र में जाते समय भेरी झरझरी शब्द सुने जाते हैं, अन्त में प्राण ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर होने पर किंकिणी, वंशी, वीणा, भ्रमरादि के शब्द सुने जाते हैं, अतएव नादानुसन्धान एवं स्वतः

प्रणव जप में तारतम्य अवश्य है, क्योंकि नादानुसन्धान स्थिर एवं चिरस्थायी है और स्वतः प्रणव जाप अस्थिर तथा क्षण-स्थायी है।

प्रणव नाम ॐ लक्ष्यार्थ है

समस्त वस्तुओं का नाम वाच्यार्थ है परन्तु उनका रूप लक्ष्यार्थ होता है, ऐसे ही यह परम पवित्र ब्रह्म का रूप ॐ जपादि साधन काल में प्रणव नाम से वाच्यार्थ होता है और जप करके स्थिति काल में ब्रह्म का रूप ॐ लक्ष्यार्थ है, जैसे किसी व्यक्ति का नाम हरि है, हरि शब्द से हरि के रूप का बोध नहीं होता किन्तु नाम का बोध होता है नाम वाच्यार्थ है, हरि से मिलने पर उनके रूपका बोध होता है वह उनका रूप लक्ष्यार्थ है। इसलिये योग दर्शन में कहा है कि—"तस्य वाचकः प्रणवः" प्रणव ईश्वर का वाचक है अर्थात् उनके नाम का प्रकाशक है इसलिये वाच्यार्थ होता है योगसाधन करके अथवा जप साधन करके ईश्वर से मिलने से ॐ लक्ष्यार्थ होता है अतएव प्रणव नाम है ॐ वस्तु है इसलिये पुनः कहा है कि "तज्जपस्तदर्थभावनम्," प्रणव का जप करते समय अर्थ चिन्तन करना भी आवश्यक है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रणव नाम है और ॐ वस्तु है यह ॐ स्वर व्यञ्जन वर्ण नहीं है। जो वर्ण ही नहीं है वह ह्रस्व दीर्घ प्लुत कैसे हो सकता है अतएव यह वर्णरूप 'प्र ण व' शब्द नाम वाच्यार्थ है और ध्वनिरूप यह 'ॐ' शब्द

लक्ष्यार्थ है। यह हृदय ग्रन्थी भेदी ॐ का विषय योग साधन से अनुभवगम्य है।

यन्नमस्यं चिदाख्यातं यत्सिद्धीनां च कारणम्।
येन विज्ञातमात्रेण जन्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥
अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।
मूलाधार गता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी ॥
तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजादिवाङ्कुरः।
तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः ॥

जो चिद्रूप है; नमस्कार करने योग्य है एवं जो सिद्धियों का कारण है और जिस का विज्ञान जानने मात्र से जीव जन्म मरण के बंधन से छूट जाता है ऐसे अक्षर ॐ की ध्वनि के परम नाद को शब्द ब्रह्म कहते हैं, मूलाधार चक्र में स्थित बिन्दुरूपिणी शक्ति से यह ध्वनिरूप ॐ प्रकट होता है। जैसे बीज से अङ्कुर निकलता है, तैसे ही ॐकार का प्रकाश होता है, इसको साधक मूलाधार में परावाणी तथा नाभि में पश्यन्ती में अनुभव करता है।

हृदये व्यज्यते घोषो गर्जत्पर्जन्य सन्निभः।
तत्र स्थिता सुरेशानि मध्यमेत्यभिधीयते ॥
प्राणेन च स्वराख्येन प्रथिता वैखरी पुनः।
शाखा पल्लव रूपेण ताल्वादि स्थानघट्टनात् ॥

अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत् ।
अक्षरेभ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्य संभवः ॥
सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः ।
पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि ॥

और हृदय में मध्यमा वाणी में मेघ गर्जनवत् इस ॐ की ध्वनि सुनता है। और हृदयस्थ प्राण की सहायता से तालु मूलादि स्थान से, शाखा पल्लव रूप में वैखरी वाणी से अकार से क्षकार तक अक्षरों का शब्द द्वारा प्रकाश करता है, उसके अक्षरों से पद और पद से वाक्य बनते हैं। जितने मंत्र वेद, शास्त्र पुराणादि हैं, वे सब और काव्य तथा नाना प्रकार की देश देशान्तरों की भाषायें सब वाक्यमय हैं।

सप्त स्वराश्च गाथाश्च सर्वे नाद समुद्भवाः ।
एषा सरस्वती देवी सर्व भूत गुहाश्रया ॥
वायुना वन्हि युक्तेन प्रेर्यमाणा शनैः शनैः ।
तद्विवर्तपदैर्वाक्यैरित्येवं वर्तते सदा ॥
य इमां वैखरीं शक्तिं योगी स्वात्मनि पश्यति ।
स वाक्सिद्धिमवाप्नोति सरस्वत्याः प्रसादतः ॥
वेद शास्त्र पुराणानां स्वयं कर्ता भविष्यति ।

इसी तरह सात स्वर तथा गाथायें ये सभी ध्वनिरूप नाद से ही उत्पन्न होते हैं। इनको उत्पन्न करने वाली सरस्वती देवी सब

के हृदय में स्थित है कुण्डलिनी शक्ति के कारण प्राण और अग्नि की प्रेरणा से इनको साधक क्रम से अनुभव करता है। यही वैखरी शक्ति विवर्त रूप होकर वाक्य रूप से वर्तती है। जो साधक योगी इस वैखरी शक्ति को अपने में देखता है वह सरस्वती की कृपा से वाक् सिद्धि लाभ करता है एवं वह स्वयं वेद और पुराणों का कर्त्ता बनता है।

दिव्यरूप दर्शन

यदा कुण्डलिनी शक्तिराविर्भवति साधके।
तदा स पश्चकोशे मत्तेजोऽनुभवति ध्रुवम् ॥
ततस्तु तमसि ध्यानी पश्यति ज्योतिरैश्वरम्।
श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णमिन्द्रायुधप्रभम् ॥
भ्रुवोर्मध्ये ललाटस्थं बालार्क सम तेजसम्।
दर्शनं नाम दिव्यानां दर्शनं चाप्रयत्नतः ॥

जब कुण्डलिनी शक्ति साधक में क्रिया रूप से प्रकाशित होती है तब साधक अन्नमय प्राणमय मनोमय आदि पंचकोश में मेरा सूर्य्यरूप ज्योतिर्मय तेज का निश्चय अनुभव करते हैं ध्यान के समय साधक अन्धकारमय अन्तर आकाश में ज्योतिरूप ईश्वर के दर्शन करते हैं वह ज्योति सफेद, लाल, पीली काली, इन्द्र-धनुष के सदृश्य नाना प्रकार के रंग की होती है। यह ज्योति भ्रूमध्य ललाट देश में प्रातःकाल में उदय हुवे सूर्य्य के सदृश्य

दीखती है, इसका ही नाम दिव्य दर्शन है जो बिना प्रयत्न के ही स्वयं होता है 'विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी' 'विशोका वा ज्योतिष्मती'

जब इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से क्रियायें करते २ साधकों के शरीर मन प्राण उत्कर्ष साधन करते हैं तो मन की स्थिति निवन्धन हेतु विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न होती है तब साधकों के चित्त की स्थिरता के लिये अन्तर में दिव्य वस्तु या ज्योति स्वयं प्रकट होती है उस दिव्य ज्योति को देखकर मन स्वभावतः उसी में लग जाता है और साधक साधना के फल की चिन्ता से शोक रहित हो जाते हैं, प्रकाशमान दिव्य ज्योति का दर्शन होते ही साधकों का चित्त उसी में ही महासुख अनुभव करता है।

दिव्यदर्शन के प्रकार

एतेष्वथारविन्देषु यत्रैवाभिरतं मनः ।
तत्रैव देवं देवीं च चिन्तयेद्धीरयाधिया ॥
अङ्गुष्ठमात्रममलं दीप्तमानं समन्ततः ।
शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ॥
इन्दुरेखा समाकारं तारारूपमथापि वा ।
नीवारशूकसदृशं विसस्त्राभमेववा ॥
कदम्बगोलकाकारं तुषारकणिकोपमम् ॥

इस ज्योति का दर्शन कई एक प्रकार से होता है जैसेः--- विद्युत् की चमक, विद्युत् का प्रकाश, नक्षत्र दर्शन, चन्द्र सूर्य और अग्नि का दर्शन, ज्योति का दर्शन कोटि २ सूर्य प्रकाश के सदृश उग्र ज्योति तथा अनुग्र सूचक महान् ज्योति का दर्शन होता है और उस ज्योति के रंग भी नाना प्रकार के होते हैं इसके अतिरिक्त प्रज्वलित अग्नि शिखा, प्रदीप शिखा के सदृश, विन्दु के सदृश तथा कांच स्फटिकमणि और खद्योत के सदृश छोटे बड़े नाना प्रकार के रूप रंग के दर्शन होते हैं कभी तारों से भरा हुआ आकाश, नीलाकाश, धुआं, शीकर, अन्धकार और महाघोर अन्धकार के दर्शन होते हैं साधना करते २ साधकों का मन जितना सूक्ष्म विषय ग्राही होता है उतने ही सूक्ष्माति सूक्ष्म दर्शन होते रहते हैं।

सिद्धं वा स्वगुरुदेवं प्रसन्नतां च कुमारिकाम् ।
गंगां भागीरथीं भानुं लिङ्गीनां लिङ्गमैश्वरम् ॥

इसी तरह ज्ञान, योग, भक्ति आदि किसी भी मार्ग से तपस्या करते रहने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने पर अथवा ईश्वर परायणता से चित्त शुद्ध होने पर साधकों को बिना आवाहन के उपरोक्त के अतिरिक्त और भी सिद्ध पुरुषों के दर्शन अपने गुरुदेव के दर्शन तथा ब्रह्मा विष्णु महेश्वर अथवा अपने इष्ट देवता के दर्शन और गन्धर्व, अप्सरायें, विद्याधर, पन्नग, यक्ष, रक्ष, किन्नरादि देवताओं के भी दर्शन होते हैं। योग, ज्ञान ध्यान परायण सात्त्विक भावापन्न साधकों को प्रायः संन्यासी,

ब्रह्मचारी, शिवलिङ्ग और अन्यान्य देवताओं की प्रतिमा के दर्शन ध्यान के समय अमनस्क अवस्था में, जाग्रत में अथवा स्वप्न में प्रायः होते रहते हैं विशेष करके साकार उपासक भक्ति प्रधान साधकों को ही ये दर्शन अधिकतर होते हैं।

कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम् ।
कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फणिनं द्रुमम् ॥
पर्वतं च हयं मेघमाममांसं सुरासवम् ।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

जो साधक कामना करके देवताओं के चैतन्य मंत्र जप अथवा गुरु प्रदत्त शक्तिकी साधना करते हैं उनकी कामना सिद्धि के सूचक उक्त दर्शनों के अतिरिक्त या उनके साथ में ये दर्शन भी होते हैं। जैसे:—बालक, कुमारी कन्यायें, छत्र, रथ, दीप, प्रासाद, देवमन्दिर, राजगृह, पद्म, नदी, हस्ती, घोड़ा, वृष, माल्य, समुद्र, फलित वृक्ष, पर्वत, ज्वलन्त अग्नि, कच्चा मांस आसव, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य, रत्न, अलंकार, सिंहासन, अकाशगामी विमान, ध्वजा राज्याभिषेक, सफेद चन्दन, शुभ्र वस्त्र, धान्य, कुंकुम, मधु, सफेद सरसों, राजा और बहुत सी स्त्रियां ये सब मंगलदायक वस्तुयें साधकों को स्वप्न में अथवा जब ध्यान के समय स्वप्न की सी अवस्था में दीखें तो उनके मन्त्र की सिद्धि शीघ्र ही होती है।

इसके अतिरिक्त नये पात्र, खीर, फल, सिद्ध अन्न, दही, दूध,

वाद्ययंत्र, सुन्दर स्त्रियां, ब्राह्मण, गौ, हंस, कबूतर, नीलकण्ठ, मयूर, नकुल, शृगाल, मृग, मेढ़क, पुष्प, सद्वाक्य, अञ्जन, जलपूर्ण कलश, दर्पण, एवं मीन मद्य भक्षण, तथा रोदन हीन शव, इक्षु, पताका, वेद ध्वनि, यान, चाबुक, अंकुश, मंगल-गीत, सैनिक, और अपने प्रियजनों के दर्शन तथा सूर्योदय, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण इत्यादि स्वप्न में दीखते हैं और बड़े २ मकान, श्रीमानों के घर, राजमहल एवं देव मन्दिरों में जाने का और हाथी पर, घोड़े पर, बैल पर बैठने का तथा पर्वत पर चढ़ने का और अग्नि में प्रवेश करने का स्वप्न साधकों को दीखता है, इनके अतिरिक्त भयजनक स्वप्न भी होते हैं बहुत सी स्त्रियों के साथ में भोजन करना, पकाया हुआ मांस खाना, शरीर में कीड़े लगते देखना, विष्ठा का लेपन करना, रक्त से स्नान करना, रक्त का पान करना, मद्य पान करना, कच्चा मांस खाजाना, इत्यादि प्रकार के भयंकर स्वप्न भी साधकों को दीखते हैं ये सब स्वप्नों के दर्शन मंत्र सिद्धि के सूचक हैं कामना सिद्धि के लिये शास्त्र में इनको मंगल रूप कहा है।

इस प्रकार निष्कामता से अथवा कामनायुक्त होकर कुण्ड-लिनी जागरण से क्रिया करने वाले साधकों को प्रायः स्वप्न में देव प्रतिमा के दर्शन, देवताओं के उत्सव, संकीर्तन, शंख घड़ी घण्टा के वाद्य, तथा उत्तम कथाओं का श्रवण और अति रम-णीय मनोहर दिव्य स्थानों के दर्शन होते हैं, साधक अपने को आकाश में उड़ते हुए शून्यगामी प्रायः देखते हैं, ये सब लक्षण

शुभ और सिद्धिदायक हैं क्योंकि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से साधक के अन्तर के द्वार खुल जाते हैं इसलिये मन अन्तर जगत् में जब २ चला जाता है तब २ चलते, फिरते, वैठते, क्रिया करते, और सोने में अपने २ संस्कार के अनुसार विशेष करके श्रद्धा भक्ति वाले साधकों को प्रायः ऐसे दर्शन होते रहते हैं।

दिव्य शब्द नादोत्पत्ति

उक्तात्मभानतः पूर्व पश्चात् च विविधः कपे ।
अभिव्यजन्त एतस्य नादास्तत्सिद्धि सूचकाः ॥
अनाहतमनुच्चार्यं शब्दब्रह्म परं शिवम् ।
तस्मात् शब्दा नव प्रोक्ताः प्राणविद्भिस्तुलक्षिताः ॥

अन्तर में ज्योतिरूप आत्मा के प्रकाश के पूर्व अथवा पश्चात् साधक नाना प्रकार के नाद सुनते हैं ये नाद शब्द व्यक्त और अव्यक्त दो प्रकार के हैं जिस शब्द की उपमा किसी बाहर के शब्द के साथ दी जाय उसको अव्यक्त कहते हैं और जो शब्द घड़ी घण्टा के तुल्य स्पष्ट प्रतीयमान होता हो उसको व्यक्त कहते हैं ये शब्द वर्णात्मक और ध्वनिआत्मक रूप से नाना प्रकार के हैं। विना आघात और विना उच्चारण के जो शब्द अन्तर में स्वतः होते हैं उनको मंगलदायक शब्द-ब्रह्म कहते हैं इसलिये शब्द ब्रह्म अनाहत ध्वनि को लक्ष्य करने वाले योगी लोग, इनको नौ प्रकार का कहते हैं, योग शास्त्र में नाद असंख्य प्रकार के कहे हैं परन्तु योग साधन करने वाले साधक इनको संख्यारूप से सुनकर अनुभव करते हैं।

आकाशंधारणयास्य व्योम सूक्ष्मं प्रवर्तते ।
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्तते ॥
ब्रह्मरन्ध्रंगतेवायौ नादश्चोत्पद्यतेऽनघ ।
शंख ध्वनि निभश्चादौ मध्ये मेघध्वनिर्यथा ॥
पवने व्योम सम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ।
घण्टादीनां प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥

जब योग साधना से मन आकाश तत्त्व में 'जाता है तब सूक्ष्म आकाश से नाद प्रवर्तित होता है, उस समय साधक अन्तर में सूक्ष्म शून्य रूप ज्योति का दर्शन करते हैं, एवं शब्द सुनते हैं, जब ब्रह्मरन्ध्र में प्राणवायु जाता है तब मेघध्वनि और शंख-ध्वनि सदृश शब्द सुने जाते हैं, अन्तर आकाश में प्राण जाने से ही यह महान् ध्वनि होने लगती है तो घण्टादि के सदृश वाद्य बजने लगते हैं, ये शब्द योग सिद्धि के सूचक हैं ऐसा हो तो साधक को समझ लेना चाहिये कि अब योगसिद्धि दूर नहीं है।

दिव्य नाद के प्रकार

आदौ जलधिजीमूत भेरीझरझर संभवाः ।
मध्ये मर्दल शंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा ॥
अन्ते तु किङ्किणी वंश वीणा भ्रमर निःस्वनाः ॥
इति नाना विधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यमाः ।

ये नाद सागर के जल के शब्द सदृश, मेघ गर्जनवत्, झरने के जल के प्रपात की तरह, अथवा गाड़ी के शब्द सदृश तथा जलती हुई अग्नि के शब्द के समान सुने जाते हैं, और भेरी, काहल, दुन्दुभि, मादल, मृदंग, शंख, घण्टा, किंकिणी, कांस, झांझर, करताल एवं तंत्री वीणा आदि वाद्य यंत्र के सदृश होते हैं, और वृषभ, मयूर, भ्रमर, मधुमक्षिका, झीन, झीणी, चिन्, चीणी आदि पशु पक्षी कीट, पतंग के शब्द सदृश और स्त्रियों के गीत तथा बहुत से लोगों के कोलाहल सदृश घोष शब्द भी सुनने में आते हैं, और कभी अव्यक्त ब्रह्म ॐकार की ध्वनि सुनी जाती है, इसमें चिन्, चिञ्चिण्, घण्टा, शंख, वीणा, करताल बंशी, मृदंग, भेरी और मेघ ये दश नाद मुख्य कहे हैं।

दिव्यनाद श्रवण का फल

प्रथमे चिञ्चिणी गात्रं द्वितीये गात्रभञ्जनम् ।
तृतीये स्वेदनं याति चतुर्थे कम्पते शिरः ॥
पञ्चमे स्रवते तालु षष्ठेऽमृतनिषेवणम् ।
सप्तमे गूढविज्ञानं परा वाचा तथाष्टमे ।
अदृश्यं नवमे देहं दिव्यं चक्षुस्तथामलम् ।
दशमे परमं ब्रह्म भवेद्ब्रह्मात्मसंनिधौ ॥

प्रथम चिण्नाद के प्रकट होने पर शरीर में झन २ होता है दूसरे चिञ्चिण्नाद होने से शरीर टूटने लगता है, तीसरे घण्टा

नाद सुनकर प्रस्वेद होता है चौथे शंखनाद श्रवण से शिर कांपता है, पांचवे तंत्री नाद सुनने पर तालु से अमृत टपकता है छठे करताल के नाद से अमृत का आस्वादन होता है सातवें वंशी नाद होनेपर गूढ़ विषय का ज्ञान होता है आठवें मृदंग नाद से परावाणीका ज्ञान होता है जिससे कि वाक् सिद्ध होती है, नवमे भेरीनाद सुनकर शरीर की सुन्दरता और अदृश्य सिद्धि तथा आवरण रहितदिव्य दृष्टि हो जाती है और दसवें मेघनाद श्रवण कर साधक समाधि में ब्रह्म के साथ एकता लाभ कर ब्रह्म रूप हो जाता है।

नव शब्द परित्यज्य ॐकारन्तु समाश्रयेत्।
ध्यायन्नेवं सदा योगी पुण्यपापै र्न लिप्यते ॥
नाद कोटि सहस्राणि बिन्दु कोटि शतानि च।
सर्वे तत्र लयं यान्ति ब्रह्म प्रणव नादके ॥

साधक को चाहिये कि उपरोक्त नौ शब्द त्याग कर मेघवत् केवल ध्वनि रूप ॐकार का ही आश्रय करके रहे अर्थात् ॐ ध्वनि स्वतः प्रकाशित हो जाने पर और किसी नाद में मन लगाने की आवश्यकता नहीं है ॐकार का ही नाद रूप से ध्यान करते रहने से योगी लोग पाप पुण्य से लिप्त नहीं होते और मोक्ष पा जाते हैं क्योंकि हजारों कोटि नाद और शत् कोटि बिन्दु रूप ज्योतियां, ये सब ब्रह्मस्वरूप ॐकार के नाद में लय हो जाते हैं।

ॐकारमधिकृत्याशु योगी ध्वन्यात्मकं मम।

सत्यलोकावधिं प्राप्तुं शक्नुयात्कोऽत्र संशयः ।
कर्मनिष्ठमहात्मानो योगनिष्ठास्तथामराः ॥
ॐकाराश्रयतो नूनं देवयान गतिं गताः ।
यस्मान्न पुनरावृत्तिस्तं लोकं प्राप्तुमीशते ॥

एक मात्र मेरे ध्वनिरूप ॐकार का ही आश्रय करके योगी लोग शीघ्र ही सत्य लोक को प्राप्त कर सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है जो महात्मा लोग वैदिक कर्म उद्गीथ उपासना परायण अथवा योग परायण हैं वे लोग ॐकार का आश्रय करके देवयान गति से मोक्ष लाभ करते हैं इसलिये जहां से पुनरावृत्ति नहीं होती उस लोक की प्राप्ति की इच्छा वाले साधक ॐकार की उपासना कर मोक्ष धाम को जाते हैं ।

दिव्य स्पर्श ज्ञान

अनन्तज्ञाननिलयां यां भजन्ति मुमुक्षवः ।
सुप्ता सर्वोपमा मौला पाति साधकमीश्वरी ॥
चैतन्या कुण्डलीशक्ति र्वायवी बलतेजसा ।
चैतन्या सिद्धिहेतुस्था ज्ञानमात्रं ददाति सा ॥
ज्ञानमात्रेण मोक्षः स्याद्वायवी ज्ञानमाश्रयेत् ।

अनन्त ज्ञान का आलय मूलाधार में स्थित सुप्त नागोपमा कुण्डलिनी शक्ति साधकों का पालन और रक्षा करती है, इस लिये मोक्ष की इच्छा वाले साधक प्राणायाम द्वारा उसका ही

भजन करते हैं, और वह वायवी शक्ति कुण्डलिनी साधकों के भजन प्राणायाम से जागती है और क्रियाशील चैतन्य होकर सिद्धि का कारण होती है। एवं साधकों को केवल आनन्द स्वरूप आत्मज्ञान प्रदान करती है, क्योंकि एकमात्र ब्रह्म ज्ञान से ही मोक्ष होता है, इसलिये साधकों को चाहिये कि वायवी कुण्डलिनी शक्ति के ज्ञान का आश्रय करें।

प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह ।
सूचीवद्गात्रमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ॥
यथा कुण्डलिनी देहे स्फुरत्यब्ज इवालिनी ।
तथा संविदुदेत्यन्तर्मृदुस्पर्शवशोदया ॥

उसका आश्रय करने से वह जाग्रता शक्ति अग्नि, मन और प्राण सहित सुषुम्णा में प्रवेश करके ऊपर चलती है, जैसे सुई वस्त्र को स्पर्श करके बींधती हुई ऊपर जाती है तैसे ही कुण्डलिनी शक्ति भी मूलाधार से सुषुम्णा में चक्र वेध करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में जाती है तो साधक को शरीर में उसके स्पर्श का अनुभव होता है, जब इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति जागकर शरीर में क्रियायें कराती है तब जैसे भ्रमर कमल पर मृदु २ विचरता है तैसे ही साधक के शरीर में ज्ञान का प्रकाश करने वाली यह शक्ति भी मृदु कोमल महासुख कर दिव्य स्पर्श का साधकों को बोध कराती है, यह स्पर्श आवश्यकतानुसार कोमल और कठोर भी होता है।

दिव्य रस

रेचकं पूरकं मुक्त्वा वायुना स्थीयते स्थिरम् ॥
नाना नादाः प्रवर्तन्ते संस्रवेच्चन्द्रमण्डलम् ॥
समाकुंच्याभ्यसेद्योगी रसनां तालुकं प्रति ।
किञ्चित्कालान्तरेणैव क्रमात्प्राप्नोति लम्बिकाम् ॥
ततः प्रस्रवते सा तु संस्पृष्टा शीतलां सुधाम् ।
पिबन्नेव सदा योगी सोऽमरत्वं हि गच्छति ॥

जब योग साधन करने वाले साधकों को कुण्डलिनी शक्ति की प्रेरणा से अथवा प्राणायाम के अभ्यास से रेचक पूरक का त्याग होकर केवल कुम्भक होने से प्राण स्थिर हो जाता है तो नाना प्रकार के नाद होने लगते हैं और मस्तक में स्थित चन्द्र-मण्डल से सुधा का क्षरण होता है उसका नाम पीयूष—अमृत है, आत्मशक्ति के उद्बोधन से खेचरी क्रिया के पश्चात् प्रायः देखा गया है कि साधक की जिह्वा उलट कर तालु में लग जाती है एव ऊपर की ओर खिंचती है उस समय और भी गले की कई एक क्रियायें होती हैं जिससे यह जिह्वा उपजिह्वा को जो कि काक से आगे गले में है ऊपर की ओर कर देती है तब अकस्मात् साधक को सुधा रस का पान हो जाता है अथवा यही जिह्वा आभ्यन्तरिक क्रिया शक्ति से तालु में लग जाती है तो सहस्रार से शीतल चन्द्रामृत का क्षरण होता है उसका साधक पान करता

है, जिससे नख से शिखा पर्यन्त कुछ समय के लिये साधक सुनसान होकर आश्चर्यता में निमग्न हो जाता है और नित्य अभ्यास से पान करते रहते रहने पर साधक निश्चय अमरत्व लाभ करता है।

दिव्य रस के प्रकार

आदौ लवणं क्षारश्च ततस्तिक्त कषायकम् ।
नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्र मधूनिच ॥
द्राक्षारसश्च पीयूषं जायते रसनोदकम् ।
मनोलयं यदा याति भ्रूमध्ये योगिनां नृणाम् ॥
जिह्वामूलेऽमृतस्रावो भ्रूमध्ये चात्मदर्शनम् ॥

इस प्रकार खेचरी मुद्रा द्वारा जिह्वा से अमृत का पान होता है। उस रस का स्वाद—प्रथम लवण, क्षारयुक्त, खट्टा, तीखा एवं कषैला होता है, और मध्य में मक्खन, घी, दूध, दही तथा मट्ठा जैसा होता है और अन्त में मधु, अंगूर रस सदृश एवं अमृत के समान रस पान होता है यह रस पान तभी होता है जब योग साधन करते रहने से साधक का मन आज्ञाचक्र में लय होकर भ्रूकुटी में आत्म दर्शन होता है तब जिह्वा मूल में अमृतस्राव होता है उस समय साधक को रस पान होता है।

दिव्य रस के गुण

रसनास्वादभेदेन विशेषं शृणु पार्वति ।

क्षारेण नश्यति व्याधिः कटुना कुष्ठनाशनम् ॥
अम्लकेन महादेवि वलिपलितवर्जितः ।
मधुस्वादुरसाद्देवि शास्त्रमुद्गीर्यते ध्रुवम् ॥
घृत स्वादु रसाद्देवि अमरत्वं प्रजायते ॥

श्री महेश्वर कहते हैं कि रसना के स्वाद के भेद से उपरोक्त रस यदि इच्छानुसार पान होते रहें तो लवणादि क्षार रस से रोग का नाश होता है, तथा तीखे रस से कुष्ठ रोग का भी नाश होता है, अम्ल रस से चर्म की शिथिलता तथा केश की अकाल पक्वता दूर होती है, मधुर रस के पान से शास्त्र ज्ञान का प्रकाश होता है और घृत रस का पान होते रहने से अमरत्व-मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

दिव्य गन्ध

दिव्यं स्तम्भं समाकर्षेद् गन्धो नासान्तिको ध्रुवः ।
गन्धलीनं मनः कृत्वा स्तम्भयेन्नात्र संशयः ॥

जैसे ऊपर कहे हुए शब्द स्पर्शादि दिव्य विषयों का साधकों को अनुभव होता है, उसी प्रकार दिव्य गन्ध का भी बोध होता है इस दिव्य गन्ध का स्थान भ्रूमध्य से नासाग्र पर्यन्त है, इस गन्ध में मन को लीन करने से निस्सन्देह मन स्तम्भित हो जाता है और बँध जाता है ।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध संसार के इन पांच विषयों में मनुष्यों का मन बलात्कार से बँध जाता है और उनमें आसक्त

हो जाने से मनुष्यों का सर्वनाश, पतन, अधोगमन होता है क्योंकि यही पांच विषय बाहर में मन को बांधने के लिये बड़े प्रबल और दुःखदायी हैं यह बात सभी शास्त्र कहते हैं, परन्तु यही पांच विषय योग साधना करके अन्तर में अनुभव करने से या भोगने से अथवा उसमें आसक्ति करके मन को बांधने से पतन तो क्या उल्टा ऊर्ध्व गमनही होता है, अतएव श्री महेश्वर कथित वास्तविक ज्ञान को न जान कर अज्ञानी मनुष्योंको विषयों का सुख भोगना भी दुःखदायी होता है, परन्तु ईश्वर-परायण बुद्धिमान् साधकों का विषय भोगना भी सब अवस्थाओं में सुखदायक है।



त्रयोदश प्रकाश

ब्रह्म के तीन शरीर

नाडीचक्रमिति प्रोक्तं विन्दुरूपमतः श्रृणु ।
स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः ॥
स्थूलं शुक्रात्मकं विन्दुः सूक्ष्मं पञ्चाग्निरूपकम् ।
भ्रूमध्यनिलयो विन्दुः शुद्धस्फटिक सन्निभः ॥
महाविष्णोश्चदेवस्य तत्सूक्ष्मं रूपमुच्यते ।
सोमात्मकः परः प्रोक्तः सदासाक्षी सदाच्युतः ॥

श्री महेश्वर ब्रह्मा के प्रतिनाड़ी चक्रों का वर्णन करके अब ब्रह्म के ज्योति स्वरूप स्थूल सूक्ष्म और पर तीनों शरीरों का वर्णन करते हैं; ब्रह्म का जीवरूप स्थूल शरीर, ज्योतिरूप विन्दु, शुक्र अर्थात् शुक्रात्मक शुभ्रज्योति है जिसको कि योग·साधन करने वाले धारणाज प्रज्ञा से ध्याता ध्यान और ध्येय रूप से अपने अन्तर में प्रत्यक्ष देखते हैं। दूसरा ब्रह्म का सूक्ष्म शरीर पञ्चाग्नि रूप कहलाता है अर्थात् कालाग्नि, वडवाग्नि, पार्थिवअग्नि, विद्युत् और सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि में भौतिक अग्नि जो कि स्थूल रूपसे बाहर ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और सूक्ष्म रूप से अन्तर्जगत् पिण्ड में है; पृथिवी के निम्न देश पाताल में रहने वाला

जो अग्नि है वह कालाग्नि कहलाता है वह ही सूक्ष्म रूप से शरीर में मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी शक्ति अग्नि के तेजःपुञ्ज रूप से प्रतिष्ठित मूलाग्नि है कि जिससे नाद उत्पन्न होता है; समुद्र और जलमें रहने वाले अग्नि का नाम वडवाग्नि है वह शरीर की अस्थि में निवास करता है जिससे शुक्र मज्जादि उत्पन्न होते हैं और काष्ठपाषाणादि में रहने वाला दावानल पार्थिव अग्नि कहलाता है वह शरीर में कठिन पदार्थ अस्थि तथा आंतों में वास करता है जिससे कि शरीर की दृढ़ता और वल तथा अन्न की पाक क्रिया संपादित होती है, चौथा विद्युत्रूप अग्नि अन्तरिक्ष में मेघ में रहता है जो शरीर में हृदयाकाश में आत्मारूप से अवस्थित है वह ध्यान से विद्युत् सदृश दृष्टिगोचर होता है, पांचवां आकाश स्थित सूर्याग्नि है जो शरीर में नाभिस्थान में रहकर शारीरिक क्रियाओं का सम्पादन करता है यह ही ब्रह्म का व्यापक महाविष्णु रूप सूक्ष्म शरीर भ्रूमध्य में शुद्ध स्फटिक सन्निभ नील ज्योतिर्मय विन्दुरूप योग साधना करने वालों को ध्यानज प्रज्ञा से ध्यान और ध्येय रूप से ध्यान गम्य होता है। तीसरा ब्रह्म का पररूप कारण शरीर सोमात्मक है जो सहस्रार में स्थित चन्द्रामृत से परिपूर्ण नित्य तृप्त सदा अच्युत सर्वदा साक्षीभूत परब्रह्म का महान् ज्योतिर्मय पररूप है उसको योगी लोग समाधिज प्रज्ञा से ध्याता ध्यान वृत्ति का त्याग करके ध्येयाकार तद्रूप होकर देखते हैं।

अतएव ब्रह्म का स्थूल शरीर ज्योतिर्मय शुक्रात्मक शुभ्रविन्दु

शुक्लरूप धारणा से उत्पन्न हुई प्रज्ञा से ध्याता ध्यान ध्येय रूप त्रिपुटि सहित देखा जाता है और ब्रह्म का सूक्ष्म शरीर पंचाग्नि रूप ज्योतिर्मय नील विन्दु, महाविष्णुरूप, धारणा की परिपक्वता के अनन्तर ध्यान से उत्पन्न हुई ध्यानज प्रज्ञा से ध्यान और ध्येयरूप से दीखता है; ब्रह्म का पररूप कारण शरीर सोमात्मक सच्चिदानन्दस्वरूप ध्यान के परिपक्व होने पर समाधिज प्रज्ञा से ध्येयाकार तद्रूपता से अनुभव गम्य होता है।

योग जप तप पाठ पूजन भक्ति श्रद्धा आदि सत्कर्म करने वाले साधकों को अपने अन्तर में ब्रह्म का ज्योतिर्मय स्थूल सूक्ष्म रूप स्वतः प्रकाशित होता है उसको शास्त्रों में कोई शिव, कोई विष्णु, कोई शक्ति, कोई आत्मा, कोई परमात्मा, कोई ओंकार अथवा परब्रह्म परतत्त्व तथा कोई कुण्डलिनी महाशक्ति एवं कोई अपने उपास्य देवी देवता कहकर नाना प्रकार से वर्णन करते हैं अतएव उसमें किसी भी प्रकार का सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह परब्रह्म शिव ही सर्वत्र विराजमान है इसलिये द्वैतभावना करना अनुचित है; इसका वास्तविक ज्ञान तो समाधि से ही होता है परन्तु साधना करने वालों को समाधि के पूर्व धारणा और ध्यान से पाप क्षय होकर मन एकाग्र होने पर नाद विन्दु कला ज्योतिरूप से ब्रह्म का दर्शन क्षणिक और प्रायः होता है।

कलारूप ब्रह्म ज्योति दर्शन

अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत कला।

एष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥

अकल्पितोद्भवं ज्योतिः स्वयं ज्योतिः प्रकाशितम्।
अकस्माद्दृश्यते ज्योतिस्तज्ज्योतिः परमात्मनि ॥

स्व शरीरे स्वयं ज्योतिः स्वरूपं पारमार्थिकम्।
क्षीणदोषाः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ॥

अग्नि सूर्य चन्द्र और विद्युत् ये चारों ब्रह्म की कला–अंश हैं, इनको वेद में ब्रह्म के ज्योति रूप पाद कहा हैं, इसलिये योग साधन करने वाले साधक ब्रह्म के अंश रूप कला को अग्नि, सूर्य, चन्द्र और विद्युत् रूप से ज्योतिर्मय देखते हैं, यह ब्रह्म-ज्योति बिना कल्पना के प्रगट होती है । ऐसी स्वयं प्रकाशित ज्योति अकस्मात् दीखती है, साधारणतया ध्यान भजन करने वाले साधक कल्पना करके ही देवी देवता और ज्योतियों को देख पाते हैं; परन्तु ये आत्म ज्योति बिना धारणा, ध्यान, कल्पना के स्वयं दीखती है ऐसी अपने आप बिना कल्पना के ध्यान में आने वाली ज्योति परमात्मा में अवस्थित है अतएव अपने ही शरीर में अपने आप जो ज्योति प्रकाशित होती है उसको परमार्थतः ब्रह्म रूप कहा है, तपस्या के द्वारा जिनके पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे पुण्यात्मा मनुष्य ही उस ब्रह्म ज्योति को देखते हैं किन्तु माया से आवृत पाप कर्म वाले तप हीन जड़ बुद्धि वाले मनुष्य इस ज्योति को देख नहीं सकते ।

विन्दुरूप ब्रह्म ज्योति दर्शन

विन्दु ब्रह्म सकृद्दृष्ट्वा मनस्तस्मिन्नियोजयेत् ।
स्वयमेव तु संपश्येद्देहे विन्दु च निष्कलम् ॥

भ्रूदहरादुपरि सच्चिदान्द तेजः कूटरूपम् ।
परब्रह्म अवलोकयन्तद्रूपो भवति गर्भजन्मजरा-
मरणसंसारभयात्संतारयति तस्मात्तारकमिति ॥

शरीर के मध्य में अग्नि, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र एवं श्वेत-स्फटिक सदृश प्रकाशमान विन्दु हैं, इन पांचों ज्योतियों को ब्रह्म का सूक्ष्म रूप कहकर शास्त्र में निर्देश किया है, इसलिये योग साधना से इनका दर्शन सर्वदा होता है । अतएव विन्दु रूप ब्रह्म को देखके उसमें ही मन लगाना चाहिये, उसका ही ध्यान करना चाहिये और कुछ देखने की साधक आकांक्षा न करें, दृष्टि ज्योतिरूप विन्दु की ही अपने इष्ट देवता रूप में भावना करें क्योंकि अपने में विन्दु रूप निष्कल ब्रह्म को तो साधक स्वयं ही देखते हैं, इसलिये और किसी देवी देवता की कल्पना या भावना करने की कोई आवश्यकता नहीं है, भ्रू मध्य के ऊपर सच्चि-दानन्दमय तेज राशि है उसको परब्रह्म कहते हैं, उसको देखते देखते साधक तद्रूप हो जाते हैं जिससे गर्भ, जन्म, जरा, मृत्यु और भय से त्राण पाते हैं इसलिये इसको उपनिषद् में तारक ब्रह्म या तारक योग कहा है ।

आत्मरूप ब्रह्म ज्योति दर्शन

अन्तःकरण मध्येतु ज्योतिरात्मा प्रवर्तते ।
लिङ्गदेहं तु तं प्राहुर्योगिनस्तत्त्ववेदिनः ॥

तत्प्रतीतौ भवेन्मुक्तिर्नान्यतो जन्मकोटिभिः ।
तदा लक्षणमात्मनो ज्योतीरूपं प्रपश्यति ॥

तत्तेजो दृश्यते येन क्षणमात्रं निराविलम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥

यह आत्मा अन्तर में ज्योतिरूप से प्रकाशित हो रहा है उसको तत्त्व से जानने वाले योगी लोग लिङ्ग-देह-सूक्ष्म शरीर कहते हैं उसका प्रत्यक्ष दर्शन होने से ही मुक्ति होती है अतएव जब तक अन्तःकरण में ज्योति स्वरूप आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता तब तक कोटि जन्म में भी मुक्ति नहीं हो सकती; ध्यान परायण योगी लोग बाह्य नेत्र बन्द करके अन्तर्चक्षु-दिव्य-नेत्र से ज्योति स्वरूप आत्मा को देखते हैं, उस तेज को जो कोई साधक क्षण मात्र भी सुस्पष्ट और निर्मल भाव से देख लेते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होकर परम गति–ज्ञान लाभ करते हैं।

विधूम इव दीप्तार्चिरादित्य इवदीप्तिमान् ।
विद्युतोऽग्निरिवाकाशे पश्यन्त्यात्मानमात्मनि ॥
नेत्रे पश्यति यज्जयोतिस्तारा रूपं प्रकाशकम् ।

स जीवः सर्व भूतानामात्मानं च समाहितः ॥
यदा प्रकाशते ह्यात्मा घटे दीपो ज्वलन्निव ।
ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ॥

धूम रहित प्रज्वलित अग्नि के सदृश अथवा प्रकाशमान् सूर्य की तरह और आकाश में चमकती हुई विद्युत् की नांई अपने अन्तराकाश में आत्मा को साधक देखते हैं; ध्यान करने वाले व्यक्ति नेत्र में जो नक्षत्र की तरह प्रकाशित ज्योति देखते हैं वही ज्योति समस्त प्राणियों का जीवन जीवात्मा है जो दीप-शिखा के आकार से सर्वदा हृदय में स्थित है, जब आत्मा शरीर के मध्य में प्रज्वलित प्रदीप के नांई प्रकाशित होता है तब सब पाप कर्म क्षय हो जाते हैं एवं मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न होता है।

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं चैतन्यज्योतिरव्ययम् ।
निवातदीपसदृशमकृत्रिममणिप्रभम् ॥
ध्यायतो योगिनस्तस्य मुक्तिः करतलेस्थिता ।
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्यचन्द्रवत् ॥
सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनं तु न विद्यते ।

यह ज्योति रूप चैतन्य अव्यय आत्मा हृदय कमल में निर्वात दीपक सदृश स्थिर और अकृत्रिम मणि की नांई प्रकाशित है उसका ध्यान करके योगी लोग निश्चय मुक्ति पाते हैं; ध्यान-युक्त होकर ही सदा आत्मा को सूर्य और चन्द्रवत् देखा जाता

है परन्तु सत्त्व गुण उत्पन्न नहीं होने से ऐसा दर्शन नहीं हो सकता, इसलिये साधकों को सदा सत्त्व गुण का आश्रय लेना चाहिये कि जिससे आत्म दर्शन हो जाय।

ध्यायन्ते योगिनस्तश्च शुद्धं ज्योतिःस्वरूपिणम् ।
हस्तपादादिर्रहितं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥
करपादोदराङ्गास्थिरहितं परमेश्वरम् ।
सर्वं तेजोमयं ध्यायेत्सच्चिदानन्दलक्षणम्

जिस परब्रह्म परमात्मा के योगीजन प्रकृति से परे निर्गुण हस्तपादादि रहित निराकार शुद्ध ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान करतेहैं, वह परमेश्वर हाथ, पैर, उदर आदि अङ्ग और अस्थि मांसादि के स्थूल शरीर से रहित निराकार है इसलिये साधकों को उसका सत्-चित्-आनन्द लक्षण स्वरूप तेजोमय ध्यान करना चाहिये ।

नव चक्र में विभिन्न रूप ब्रह्म ज्योति दर्शन

मूलाधाराभिधं चक्रं प्रथमं समुदीरितम् ।
तत्र ध्येयं स्वरूपं तु पावकाकारमुच्यते ॥
स्वाधिष्ठानाभिधं चक्रं द्वितीयं चोपरिस्थितम् ।
प्रवालाङ्कुर तुल्यं तु तत्र ध्येयं निगद्यते ॥
तृतीयं नाभिचक्रं तु ध्येयं रूपं तडिन्निभम् ।
तुर्यं हृदयचक्रं तु ज्योतिर्लिङ्गाकृतीर्य्यते ॥

मूलाधार नामक प्रथम चक्र में ध्यान करने से वहां पर अपना ज्योतिर्मय स्वरूप अग्नि रूप भासता है, मूलाधार के ऊपर स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र में ध्यान करने से आत्म ज्योति प्रस्फुटित प्रवालांकुर के सदृश प्रतीयमान होती है। तृतीय मणिपूर नाभिचक्र में ध्यान करने से ज्योति का रूप विद्युत् के सदृश दीखता है। चतुर्थ अनाहत चक्र हृदय कमल में ध्यान द्वारा आत्मस्वरूप ज्योति का दर्शन लिङ्गाकृति रूप से होता है।

पञ्चमे कण्ठचक्रे तु सुषुम्ना श्वेतवर्णिनी।
ध्येयं षष्ठे तालुचक्रे शून्यचित्तलयार्थकम्॥
भ्रूचक्रे सप्तमे ध्येयं दीपाङ्गुष्ठप्रमाणकम्।
आज्ञाचक्रेऽष्टमे ध्येयं रूपं धूम्रशिखाकृतिः॥
आकाशचक्रे नवमे परशुः स्वोद्र्ध्वे शक्तिकः।
एवं क्रमेण चक्राणि ध्येयरूपाणि विद्धि च॥

पंचम कंठ में विशुद्ध चक्र है वहां ध्यान करने से स्वरूप ज्योति सुषुम्ना श्वेत वर्ण प्रतीत होती है। षष्ठ तालु चक्र है जहां चित्त का लय साधित होता है, वहां पर ध्यान करने से ब्रह्म ज्योति शून्याकार एक रस अपने आप अनुभव गम्य होती है। सप्तम भ्रूचक्र में ध्यान करने से जैसे निर्वात स्थान में जलती हुई दीप शिखा अङ्गुष्ठ मात्र प्रतीत होती है तैसे ही अपने आत्म स्वरूप ज्योति का रूप भी प्रकाशित दीपक की तरह स्वयं प्रकाशित होता है। अष्टम आज्ञा चक्र में ध्यान से ठीक देखने पर,

ज्योतिरूप स्वरूप, जैसे अग्नि लगने के समय जलने वाली सामग्री से धूम्र शिखाकृति होकर ऊर्ध्वगामी दीखता है, तद्रूप आत्म ज्योति धूम्रवर्ण दीखती है। नवम आकाश चक्र में ध्यान करने से निजरूप ज्योति का आकार चमकते हुए परशु सदृश प्रतीत होता है, इसी तरह जैसे ऊपर कहा है आत्म ज्योति नाना प्रकार के रूप से नवों चक्रों में ध्यान गोचर होती है।

अखण्डैकरसत्वेन ध्येयस्यैक्येऽप्युपाधितः।
आकारा विविधायुक्ता नोपाधिश्चेतरः स्वतः॥
विद्याशक्ति विलासेन पावकात् विस्फुलिङ्गवत्।
अकस्मात् ब्रह्मणोऽखण्डात् विविधाकृतयोऽभवन्॥
प्रत्यगात्माभिधानां तदेतेषां ध्येय वस्तूनाम्।
अचेतनत्वं स्वप्नेऽपि न शक्यं विबुधैरपि॥

यह अपने आप ध्यान में आने वाली प्रत्येक ज्योति आनन्द प्रदान करती है इसलिये ये सब आत्म स्वरूप ज्योतियां एक ही हैं, तथापि ये नाना प्रकार की ज्योतियां अखंड एक रस एक रूप होते हुए भी उपाधि भेद से विभिन्न रूप धारण करती हैं। विद्या शक्ति कुण्डलिनी देवी के क्रीडा करने के कारण जैसे अग्नि से चिंगारी निकलती रहती हैं तैसे ही एक अखंड ब्रह्म से विविध प्रकार की ज्योति रूप आकृतियां प्रकाश पाती हैं, इसलिये ज्योतिरूप प्रत्यगात्मा नामक ये सब ध्येय वस्तु अचेतन नहीं हैं अतएव ध्यान में प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले साधकों को बाहर के सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् की तरह अन्तर में होने वाले ज्योति दर्शनों को स्वप्न में भी अचेतन नहीं समझना चाहिये।

आकार रूप ब्रह्म ज्योति दर्शन

अन्ये च योगिभिर्ध्यानेष्वाकाराश्चेतनात्मकाः ।
दृश्यन्ते तांश्च वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥
वटस्य कणिकाकारः श्यामाकसदृशः क्वचित् ।
श्यामाकतण्डुलाकारो वालाग्रशतभागवत् ॥
नीवारशूकवत् शुक्रज्योतिर्वत्सूर्यवत् क्वचित् ।
चन्द्रवच्चाणुवत्सूक्ष्मं प्रादेशपरिमाणवत् ॥

उक्त ज्योतियों से भिन्न और भी चेतनात्मक आकार वाले ज्योतिर्मय दृश्य योग साधना करने वाले योगी जन ध्यान में देखते हैं वे अब कहे जाते हैं, जैसे बड़ के बीज के कण की तरह तथा सांवां धान्य और उसके चावल सदृश कभी उससे भी छोटे धान्य की तरह सूक्ष्म और उससे भी सूक्ष्म बाल के अग्र भाग के सौवें भाग के बराबर अति सूक्ष्म दृश्य प्रकाश रूप से अन्तर में दीखते हैं, ये अन्तर में ज्योति दर्शन प्रकाशित शुक्र तारे की तरह ज्योतिर्मय तथा कभी सूर्य की तरह चन्द्र की तरह और परमाणुवत् ब्रह्मनाड़ी शुषुम्णा के मध्य अन्तर आकाश में अति क्षुद्र प्रमाण प्रदेश में ये आकार महान् ज्योतिरूप से दीखते हैं ।

खद्योतवच्च स्फटिकसदृशस्तारवत्क्वचित् ।
नीलज्योतिः क्वचित् रक्तज्योतिः शुभ्रद्युतिः क्वचित् ॥
विविध ज्योतिरन्यत्र ज्योतिषां ज्योतिरेव सः ।

अभिव्यक्तिकरा एवं आकारा ब्रह्मणि स्थिताः ॥
योगिनां यतचित्तानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ।
ध्यानेनामी प्रकाशन्ते चिदाकाराः पुनः पुनः ॥

यह महान आत्म ज्योति कभी पटबीजने की तरह या स्फटिक के सदृश अथवा मुक्ता की तरह चमकती हुई दीख पड़ती है, इनका रंग कभी नीला, कभी लाल और कभी विद्युत् के सदृश श्वेत होता है, ये नाना प्रकार का अथवा सब रंग की ज्योतियों का दर्शन एकत्र हो जाता है क्योंकि आत्मा ही समस्त ज्योतियों का महान् ज्योति है इसलिये ये नाना प्रकार की ज्योतियां स्वयं आत्मा की ज्योति से प्रकाशित होती हैं; ब्रह्म की अभिव्यक्ति कारक ये विविध प्रकार के आकार से प्रकाश पाने वाली ज्योतियां ब्रह्म में ही अवस्थित होती हैं अतएव जिन साधक योगियों ने योग साधना से मन प्राण और इन्द्रियों का जय किया है ऐसे योगियों के ध्यान में ये चिदाकार चैतन्य स्वरूप ज्योतियां बार २ प्रकट होती हैं।

व्यवहार दशा में ब्रह्म ज्योति दर्शन

व्यवहारदशायां च योगिनः खण्ड रूपकम् ॥
स्तंभ कुड्य कुशूलादिष्विदं ज्योतिः प्रकाशते ॥
यत्र यत्र विकारेषु दृष्टिः पतति योगिनः ।
ते सर्वे चिन्मया भान्ति तडिद्वत्तत्क्षणे भृशम् ॥

ज्योतिरेव परं ब्रह्म ज्योतिरेव परं सुखम् ।
ज्योतिरेव परा शान्तिर्ज्योतिरेव परं पदम् ॥
नवचक्रेषु यः पश्येद्यत्र कुत्रापि योगतः ।
प्रत्यगात्मानमन्तेऽथं ब्रह्मलोके महीयते ॥

कुण्डलिनी शक्ति जागने से जिनके अन्तर में ये ज्योतियां प्रकट हो गई हैं उनको योग साधन के समय बिना व्यवहार दशा में भी काम काज करते समय जहां कहीं भी उनका मन लगता है वहां २ ये अखण्ड ज्योतियां दीखने लगती हैं, जिस २ पदार्थ में साधक की दृष्टि पड़ती है उसी में उसी क्षण विद्युत् के सदृश चिन्मय ज्योति स्पष्ट प्रकाश पाती है, यह ज्योति ही परब्रह्म है यह ब्रह्म ज्योति परम सुख और परम शान्ति दायक है, यह आत्म ज्योति ही परम पद है; जो साधक योग साधना से योगावलम्बन करके नवों चक्रों में अथवा किसी भी स्थान में ज्योति रूप प्रत्यगात्मा का दर्शन करते हैं वे अन्त में ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं।

उक्तलक्षणमात्मानं कूटस्थं सद्गुरोर्मुखात् ।
श्रुत्वात्र पश्येद्ध्यानेन मुद्रया भद्रयापि च ।
आधारेषु समस्तेष्वप्युक्तस्य प्रत्यगात्मनः ॥
द्रष्टव्यत्वस्य नियमो नैव चित्त विशुद्धये ॥
यत्र कुत्रापि चाधारे दृष्ट्वा ध्यानेन तं ततः ।

शुद्धचित्तो महावाक्य श्रवणेऽधिकृतो भवेत् ॥

जो लोग वेदान्त कथित ज्ञान के अधिकारी होकर ज्ञान लाभ करना चाहते हैं उनको चाहिये कि सद्गुरु के मुख से पूर्वोक्त ज्योति के आकार से कूटस्थ आत्मा का विषय सुनके योग साधन रूप तपस्या करके ध्यान द्वारा एवं शाम्भवी मुद्रा से अपने ज्योति स्वरूप आत्मा को देखें क्योंकि चित्त शुद्धि का फल आत्म प्रतीति है इसलिये जब अन्तर में यह अनुभव होने लगे तो समझना कि चित्त शुद्धि हो रही है अतएव उक्त प्रत्यगात्मा को चित्त शुद्धि के लिये प्रत्येक चक्र में ही देखना होगा ऐसा कोई नियम नहीं है परन्तु कोई भी स्थान में या किसी भी आधार चक्र में ध्यान द्वारा ज्योतिर्मय आत्मा को देखने से चित्त की शुद्धि होती है, चित्त शुद्धि हो जाने पर गुरु से महावाक्य श्रवण द्वारा साधक ज्ञान का अधिकारी हो सकता है और योग साधना करके समाधि में ज्ञान लाभ करता है।

इस प्रकार ईश्वर के अनुग्रह से एवं गुरु कृपा रूप शक्तिपात से साधकों को शास्त्र कथनानुसार उपरोक्त नाना प्रकार के आध्यात्मिक अनुभव होते हैं कि जिनका वर्णन करना भी सहज साध्य नहीं है तथापि अनुभव करना ही ज्ञान है।

शक्तिपात के प्रकार और फल

सति तस्मिंश्च चिह्नानि तस्यैतानि विलक्षयेत्।
तत्रैतत्प्रथमं चिह्नं रुद्रे भक्तिः सुनिश्चला ॥

द्वितीयंमन्त्रसिद्धिस्स्यात्सद्यः प्रत्ययकारिका।
सर्वसत्त्व वशित्वं च तृतीयं तस्य लक्षणम् ॥
प्रारब्ध कर्म निष्पत्तिश्चिह्नमाहुश्चतुर्थकम्।
कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं सालङ्कारमनोहरम् ॥
सर्व शास्त्रार्थ वेतृत्वं अकस्मात्तस्य जायते ॥

श्री शम्भु से परम्परा आगत शैवीशक्ति का यह शक्तिपात उत्कृष्ट तीव्र, मध्यतीव्र, मन्दतीव्र निकृष्ट तीव्र, अथवा मृदु, मध्य तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम भेद से कई प्रकार का है जिसका फल देशकालपात्रानुसार विलम्ब से क्रम से और तत्काल इष्ट अनिष्ट और निकृष्ट रूप से गुरु शिष्य की योग्यतानुसार इच्छा होने न होने पर भी स्वयं हो जाता है।

गुरु के द्वारा तीव्र शक्तिपात होने से विना प्रयत्न के अकस्मात् शिष्य में जो लक्षण प्रकाशित होते हैं उसमें प्रथम लक्षण यह है कि साधक की श्री महेश्वर में दृढ़ भक्ति हो जाती है, द्वितीय उसको प्रत्यक्ष विश्वास योग्य सत्वर मन्त्र की सिद्धि होती है, तृतीय लक्षण से सब प्राणियों को अपने अनुकूल वश में करने की क्षमता आती है, चतुर्थ उसके प्रारब्ध कर्म की निष्पत्ति हो जाती है वह वेभोगे भी छूट जाता है तथापि साधक दैवयोग से सुख दुःख का भोग जो कुछ भी आजाय उसका कोई विशेष प्रतिकार वा प्रयत्न न करके प्रसन्न चित्त से आनन्दपूर्वक भोग के शेष कर लेने में ही प्रसन्न रहता है और पञ्चम

लक्षण से साधक को कविता रचने की योग्यता तथा सब शास्त्रों का ज्ञान जानने की शक्ति स्वयं हो जाती है।

जिस शक्ति के प्रभाव से साधक दिव्य ज्ञान का अनुभव करके मोक्ष लाभ करते हैं उस शक्तिपात के वास्तविक विज्ञान के स्वरूप को तो श्री महेश्वर ही जानते हैं और जिस पर वह कृपा करें वे भी कुछ जान सकते हैं, परन्तु वर्त्तमान काल में यह परम दुर्लभ रुद्रशक्ति का सम्पूर्ण प्रकाश क्वचित् कहीं किसी में होगा या नहीं यह तो ईश्वर ही जाने, तथापि श्रीमन्नारायण तीर्थ देव गुरु की परम कृपा से इस विषय में अनुशीलन करके जो कुछ सामान्य जाना गया है उसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ है।

एवमस्यात्मनः काले कस्मिंश्चिद् योग्यतावशात्।
शक्तिः संबध्यते शैवी शान्ता मुक्तिफलप्रदा॥
तत्संबन्धात् ततः कश्चित् तत्क्षणापवृज्यते।
अज्ञानेन सहैकत्र कस्यचिद् विनिवर्त्तते॥
रुद्रशक्तिसमाविष्टः स जिज्ञासुः शिवेच्छया।
भुक्तिमुक्तिप्रसिद्ध्यर्थं नीयते सद्गुरुं प्रति॥
तमाराध्य ततस्तुष्टाद् दीक्षामासाद्य शांकरीम्।
तत्क्षणाद् वोपभोगाद् वा देहपाते शिवं व्रजेत्॥

मनुष्यों को पूर्व जन्म के सुकृत से इस जन्म में जब किसी समय तत्व ज्ञान लाभ करने का अधिकार प्राप्त होता है तब शैवी

शक्ति ग्रहण की योग्यता आती है पश्चात् आत्मा को परम शान्ति-प्रदायिनी मुक्ति रूप फल देने वाली शैवी शक्ति का गुरु द्वारा सम्बन्ध होता है, और उसका सम्बन्ध होने से किसी २ को तो तत्काल ही मोक्ष की प्राप्ति होजाती है और किसी को अज्ञान की निवृत्ति होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्थात् किसी को तो शक्तिपात होते ही पूर्ण ज्ञान हो जाता है और किसी को ज्ञान का होना आरम्भ होता है। जब योग, ज्ञान, ध्यान, जप, तप आदि साधन करते रहने से साधक में इस मंगलमयी शक्ति का आविर्भाव होता है, तब रुद्र शक्ति समाविष्ट वह जिज्ञासु श्री शिवजी की इच्छा से भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिये दीक्षार्थ गुरु के पास प्रेरित होता है, क्योंकि भुक्ति और मुक्ति देने वाले और शक्ति को सुचारु रूप ठीक क्रम से चलाने वाले गुरु ही हैं, इसलिये भक्ति से गुरु को प्रसन्न करके उनसे शांकरी दीक्षा लेकर साधक उसी क्षण समाधि द्वारा सब कर्म बन्धन का नाश करके मोक्ष लाभ करता है और जीवन-मुक्त हो जाता है। अथवा भोगों का उपभोग करके देहपात होने पर शिवपद को प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपरोक्त शास्त्र कथित क्रम से शक्तिपात के कई प्रकार के भेद हैं जिनका ठीक प्रयोग शक्तिमान् गुरु की योग्यता पर निर्भर करता है, क्योंकि जिस परमा शक्ति से तत्काल दिव्य ज्ञान और मोक्ष होता है, वह दिव्य शक्ति सामान्य वस्तु नहीं है। जैसे इसके उचित प्रयोग से महान् कल्याण होता है वैसे

ही इसके अनुचित व्यवहार से महा अनिष्ट भी होता है। इसलिये गुरु परम्परा क्रम से सिद्ध शक्ति का उचित प्रयोग नहीं होने पर वह शक्ति गुरु तथा शिष्य दोनों का असंगल करती है, ऐसा भी देखा गया है। इसलिये जो गुरु शक्तिपात के भेद को यथा विधि नहीं जानते अथवा जो अनुग्रह करके निग्रह करने में अक्षम हैं, और जो शक्तिपात के वास्तविक विज्ञान से तथा उसके तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, उत्कृष्ट, निकृष्ट भेद से अनभिज्ञ हैं और जो अपने गुरु परम्परा क्रम का व्यतिक्रम कर के रूपान्तर कर हरेक शिष्य को मन माने क्रम से निकृष्ट प्रकार का शक्तिपात करते हैं उनके द्वारा दीक्षित शिष्यों को इष्ट की अपेक्षा अनिष्ट होने की ही अधिक संभावना है। क्योंकि जो गुरु स्वयं शैवीशक्ति को सामान्य समझकर शास्त्र विधि अनुसार न वर्तें तो उनसे शक्ति प्राप्त करने वाले साधकों को ऐसे गुरु के ज्ञान से कैसे फल मिल सकता है।

योग साधन गुप्त रखना चाहिये

प्रवृत्ति लक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा।
विज्ञानं विलयं याति तस्मात् गोप्याः प्रवृत्तयः॥

एकान्त मन से दृढ़ता पूर्वक तपस्या, भगवद् भजन करते रहने से साधकों को दिव्य दर्शन तो होते ही हैं, किन्तु साथ ही ईश्वर के अनुग्रह से अलौकिक शक्ति भी प्राप्त होती है, और दिव्य दर्शन का होना ही सामर्थ्य प्राप्ति का लक्षण है यदि ऐसा

न होता तो गुरु कृपा और ईश्वर की महानता ही क्या है ? जिस तपस्या का कोई फल न हो उसको कौन करेगा। परन्तु यह बात नहीं है, ईश्वर बड़े कृपालु हैं साधकों के साधन का फल वृथा नही जाता साधक चाहे या न चाहे तथापि मंगलमय महेश्वर अवश्य और शीघ्र ही साधक की तपस्यानुसार फल देते हैं, अतएव यह कोई नई अथवा आश्चर्य चकित एवं विस्मित होने की बात नहीं है तपस्या और योग साधना से तो स्वाभाविक ही साधकों को ईश्वर की दिव्य शक्ति के गुण का प्रकाश होता ही है इसमें किञ्चित् मात्र भी संदेह नही है।

सामर्थ्य वाले गुरुओं से दीक्षित होने पर उनकी कृपा से योग के आरम्भ काल में ही नाना प्रकार के दिव्य आन्तरिक अनुभव होते हैं और उनसे मानसिक शक्ति उत्पन्न होती है परन्तु विस्मयवशातः अथवा कुतूहल से वहुत से साधक उन अनुभवों को अपने से भिन्न प्रकृति वालों को कह देते हैं यहां तक कि अपना महत्व दिखाने के लिये नाम देकर समाचार पत्रों में भी छपवा कर प्रकाश कर देते हैं फलस्वरूप उनका विज्ञान नष्ट हो जाता है ओर आगे जाने से उनका मन रुक जाता है, फिर वैसे अनुभव भी नहीं होते, इस लिये तपस्या एवं योग साधना करने वालों को योग में प्रवृत्त होने से जो २ दिव्य अनुभव होते हैं अथवा ईश्वर के अनुग्रह से वहुत से सांसारिक कार्य अपने मन के अनुकूल होजाते हैं उनसे विस्मित न होकर चञ्चलता त्याग करके शान्त चित्त से उन्हें हृदय में धारण करना चाहिये और प्रयत्न करके गुप्त रखना चाहिये।

योग योगाद्भवेन्मोक्षो मंत्र सिद्धिरखण्डिता ।
न प्रकाश्यमतोयोगं भुक्तिमुक्तिफलाय च ॥
योग योगाद्भवेन्मोक्षस्तत्प्रकाशाद्विनाशनम् ।
अतो न दर्शयेद्योगं यदीच्छेदात्मनः शुभम् ॥

योग साधना करके योग से ही मोक्ष की प्राप्ति और अखण्डित मंत्र सिद्धि होती है क्योंकि एक मात्र योग ही भुक्ति और मुक्ति दोनों ही प्रदान करता है इसलिये योग का फल भोग और मोक्ष प्राप्त करने के लिये योग साधन को गुप्त रखना चाहिये, एकान्त मन से योग साधन करते रहने से योग से ही निश्चय मोक्ष होता है परन्तु इसको अपक अवस्था में प्रकाश करने से विनाश हो जाता है, योग साधना से जो शक्ति-विभूति आती है उसका चमत्कार प्रलोभन में आकर लोगों को नहीं दिखाना चाहिये जब योग से मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है तो फिर भोग मिले विना कैसे रह सकता है अतएव प्रकाश करने से मोक्ष की हानि होती है और फिर भोग ही रह जाता है, इसलिये जब तक समाधि से दिव्य आत्म ज्ञान की सिद्धि न हो तब तक प्राणान्त होने पर भी प्रकाश नहीं करना चाहिये दुर्बुद्धि से भोग प्राप्ति की इच्छा करके लोगों को दिखाने से सिखाने से साधक की साधना का विनाश होता है इसलिये यदि साधक अपना मंगल चाहे तो जब तक अपने अभीष्ट की सिद्धि न हो, ज्ञान परिपक्व न हो और गुरु प्रसन्न होकर आज्ञा

न देवें तब तक योग साधन न किसी को दिखाना और न सिखाना ही चाहिये ।

तस्मान्ति वा गुरोराज्ञां विनापि गुरुतां व्रजन् ।
शक्तिसम्पातकृद्योऽसौ क्रीडेद्विषधरैः सह ॥

परन्तु जो लोग गुरु से योग दीक्षा लेकर गुरु की आज्ञा बिना पूर्णत्व प्राप्त न करके दूसरों को शक्ति सञ्चार कर गुरु होने जाते हैं वे विषधर सर्प के साथ खेलने का फल पाते हैं क्योंकि यह शैवी शक्ति परंपरागत नियम की रक्षा न करके स्वेच्छा से वर्तने वाले प्रदाता और गृहीता उभय का अनर्थ साधन करती है ।

योग का रहस्य अप्रकाश्य है

स्वशास्त्रोक्तं रहस्याद्यं न वदेद्यस्य कस्यचित् ।
यदि ब्रूयात्स समयाच्च्युत एव न संशयः ॥
एतत्प्रकाशनं यच्च आयुः क्षयकरं स्मृतम् ।
साधकस्य विनाशस्तु तस्मान्नैतत्प्रकाशयेत् ॥
लोभान्मोहाच्च गर्वाद्वा विक्षेपाद्वाप्रकाशयेत् ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति शस्त्राघातविषादिभिः ।

श्री महेश्वर कहते हैं कि जो साधक शास्त्र कथनानुसार गुरु प्रदत्त योग की साधना करते हैं उसका आद्यन्त रहस्यादि जिस किसी को कहना नहीं चाहिये क्योंकि यदि उस समय कह दिया जाय तो निस्सन्देह साधक साधना से गिर जाता है

इसलिये आरम्भ काल में जो दर्शनादि अनुभव होते हैं उनको प्रकाश करने से अथवा किसी को मंत्र उपदेश कर देने से साधक का आत्म सामर्थ्य एवं गुरु कृपा का फल नष्ट हो जाता है जिससे नाना प्रकार के रोग होकर आयु भी क्षीण हो जाती है और साधक की साधना का भी विनाश हो जाता है इसलिये किसी विशेष प्रयोजन के विना योग का यथातथ्य रहस्य प्रकाश नहीं करना चाहिये परन्तु जो कोई साधक दुष्ट बुद्धि से लोभ मोह और धन, कीर्त्ति, सम्मान पाने की इच्छा से या मोह से तथा गर्व से कि मैं बड़ा साधक योगी हूं ऐसी भावना से मेरा कोई क्या कर सकता है ? मैं गुरु क्यों न बनूं ? या गुरु जनों के द्वेष से और साधना में तिरस्कार बुद्धि से विद्वेषी होकर जो अपनी साधना को प्रकाश करता है।वह पूरी आयु न भोग के अकाल में ही अस्त्राघात से या किसी के विष प्रयोग से शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है।

सदा बुद्धिमता भाव्यं योगिना योगसिद्धये ।
एते विघ्ना महासिद्धेर्न रमेत्तेषु बुद्धिमान् ॥
न दर्शयेत्स्वसामर्थ्यं यस्य कस्यापि योगिराट् ।
यथा मूढो यथा मूर्खो यथा बधिर एव वा ॥
तथा वर्तेत लोकस्य स्वसामर्थ्यस्य गुप्तये ।
शिष्याश्च स्वस्वकार्येषु प्रार्थयन्ति न संशयः ॥
तत्तत्कर्मकरव्यग्रः स्वाभ्यासेऽविस्मृतो भवेत् ।
अविस्मृत्य गुरोर्वाक्यमभ्यसेत्तदहर्निशम् ॥

श्री महेश्वर की आज्ञानुसार आत्मज्ञान के पूर्व साधकों को अपना योग साधन और उससे प्राप्त सामर्थ्य प्रकाश नहीं करना चाहिये तैसे ही महान् ऐश्वर्य सम्पन्न योगियों को भी सदा यह विचारते रहना चाहिये कि आत्म ज्ञान महासिद्धि के बिना योग का और जो कुछ भी ऐश्वर्य है वह सब ब्रह्म ज्ञान के लिये विघ्न रूप है इसलिये बुद्धिमान् योगी को उसमें आसक्त नहीं होना चाहिये और अपना सामर्थ्य भी हर किसी को दिखाना नहीं चाहिये वरन् सामर्थ्य गुप्त रखने के लिये व्यवहार में भी लोगों के साथ मूढ़ की तरह, मूर्ख के समान, और बहरे के सदृश वर्तना चाहिये ताकि लोग जान न सकें क्योंकि सामर्थ्य जान लेने से योग अपने २ कार्य के लिये निस्सन्देह शिष्य बनाने की प्रार्थना करते रहते हैं और उन पर कृपा करते रहने से अपना नित्य का योगाभ्यास छुट जाता है फल स्वरूप गुरु के वाक्यों का उलंघन हो जाता है और मन की स्थिति भी पहिले जैसी नही रहती इसलिये गुरु के वाक्य की स्मृति करके अपने अभ्यास में लगे रहना चाहिये ताकि इस जन्म में ही योग से दिव्य ब्रह्मज्ञान हो जाय और जीवन मुक्त दशा शीघ्र प्राप्त हो जाय।

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुन भेषजम् ।
तपोदानापमानञ्च नवगोप्यानि यत्नतः ॥

गुप्त विषय प्रकाश कर देने से महा अनर्थ होता है इसलिये शास्त्र में कहा है कि मनुष्यों को अपनी आयु और धन का परिमाण; अपने घर के छिद्र, मंत्र, मैथुन, औषध, तपस्या—योग

साधन, दान और निज का अपमान ये विषयगुप्त रखने चाहिये क्योंकि इन के प्रकाश से महा अनर्थ और बड़े विघ्न होते हैं।

योग साधन के अन्तराय :

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति-
दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्ते-
ऽन्तरायाः"

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थित्व ये नव अन्तराय योग शास्त्र में चित्त विक्षेप के कारण और योग के विरोधी विघ्न-रूप कहे हैं।

व्याधि—अनियमित आहार से अथवा ऋतु के दोष से वात पित्तादि के बढ़ने से होने वाले रोगों का नाम व्याधि है, स्त्यान—इच्छा होने पर भी योग में प्रवृत्त होने की चित्त की असमर्थता और तमोगुण के कारण चित्त की मूढ़ता से साधक की अकर्मण्यता का नाम स्त्यान है, संशय—योग सिद्ध होता होगा कि नहीं, उसका फल सत्य है कि मिथ्या कल्पना मात्र हैं इत्यादि सन्देह युक्त मन की अवस्था का नाम, साधक का सर्वनाश करने वाला संशय है, प्रमाद—समाधि के साधन में प्रयत्न न करना और योग साधन से उदासीन रहना प्रमाद का लक्षण है, इस प्रमाद से प्राप्त योग भी नष्ट होता है, आलस्य—कफादि

से शरीर का तथा तमोगुण से चित्त का भारी होना एवं योग साधन में प्रवृत्त न होना, ध्यान में चित्त का न लगना इत्यादि चित्त की दुरावस्था का नाम आलस्य है, अविरति—ध्यान करने बैठते ही मन में विषय व्यापार के संकल्प का होना और उस संकल्प के आधीन हो कर ध्यान का त्याग कर देना, विषय तृष्णा-अविरति है जो साधक के मन को बलात्कार से ज्ञानध्यान से हटा कर विषय में लगाती है और नीचा दिखाती है, भ्रान्ति दर्शन—योग साधन में असाधनपने की बुद्धि किम्बा विपर्यय ज्ञान भ्रान्ति कहलाता है जिससे साधक कुछ की कुछ धारणा कर लेता है, अलब्ध भूमिकत्व—समाधि का अभ्यास करते रहने पर भी किसी निमित्त से लाभ न होना ही अलब्धभूमिकत्व है यह विघ्न भी साधक को संतोष से च्युत करता है, अनवस्थित्व—पहिले योग में अच्छी स्थिति थी परन्तु अब नहीं है यह भाव उत्पन्न करने वाला अनवस्थित्व अन्तराय साधक को आक्षेप कराता है और समाधि की स्थिति होने नहीं देता।

इन नौ योग-विघ्नों के अतिरिक्त और इनके ही सहकारी दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व और श्वास प्रश्वास हैं। दुःख-आधिभौतिक इत्यादि नाना प्रकार का प्रसिद्ध है, दौर्मनस्य इच्छा का विघात होने से मन का क्षोभ, अंगमेजयत्व-विना इच्छा के शारीरिक कम्पन अंगों का प्रचलन भी विघ्न है, श्वास प्रश्वास-ध्यान के समय अधिक श्वास प्रश्वास चलने से मन चञ्चल होता है ये सब योग के मूलरूप विघ्न ही हैं इसके

लिये इनके प्रतिषेधार्थ एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिये। इसका विशेष विवरण योग दर्शन में है।

योग विघ्न का प्रतिकार

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः।
उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः॥
योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः।
तपोमंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत्॥
कांश्चिन्ममानुध्यानेन नाम संकीर्तनादिभिः।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः॥
यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम्।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन॥

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि योग साधन करने वाले साधकों को योग सिद्धि होने से पूर्व बीच में ही यदि कोई शारीरिक मानसिक अध्यात्मिक व्याधिरूप विघ्न आजाय तो उनके लिये यह प्रतिकार है कि किसी रोग को योग धारणा से और किसी को धारणायुक्त आसन प्राणायाम के अभ्यास से किसी उपसर्ग को जप, तप, मंत्र और औषध से शान्त करना चाहिये इस प्रकार किसी को मेरे ध्यान से किसी को नाम संकीर्तन से और किसी विघ्नरूप उपद्रव को मंगलदायक योगीश्वरों के ध्यान से शनैः २ नष्ट कर देना चाहिये, यदि प्रमादवश साधक योगी से लोक निन्दित कोई गर्हित कर्म हो जाय तो उसका भी प्रायश्चित् योग साधना से ही कर लेना चाहिये उसके लिये और योग के बिना कोई उपाय करने की आवश्यकता नहीं है।

केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ।
विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥

कोई २ धीर योगी पुरुष इस शरीर को मन्त्र औषधादि नाना प्रकार के उपायों से कल्प करके सुदृढ़ युवावस्था में स्थिर करके फिर सिद्धि के लिये योग साधनें करते हैं परन्तु चतुर पुरुष को ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है यह तो व्यर्थ का ही परिश्रम है क्योंकि वृक्ष में लगे हुये फल की तरह यह शरीर भी एक दिन तो गिरने वाला ही है नित्यप्रति एक मात्र हठ योग करने रहने से यदि शरीर का कल्प होकर सुदृढ़ हो जाय तथापि मुझे भजने वाला बुद्धिमान् पुरुष योग साधन को छोड़कर केवल शरीर को ही सर्वस्व न समझ कर रह जायं क्योंकि शरीर दृढ़ करने में लगा रहना भी मेरी प्राप्ति के अर्थ विघ्न रूप है इसलिये जो साधक योगी निष्काम होकर योग साधक से मेरे में लगे रहते हैं और सब सुख अपने में ही अनुभव करते हैं ऐसे मेरे आश्रय वाले योगपरायण साधकों को कोई विघ्न नहीं आता और यदि दैवात् कोई विघ्न आभी जाय तो बाधक नहीं होता ।

योग सिद्धि का उपाय

भयं क्रोधमथालस्यमतिस्वप्नातिजागरम् ।
अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥
अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः ।
जनसङ्गश्च लौल्यश्च षड्भिर्योगो विनश्यति ॥

उत्साहसाहसधैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात् ।
जनसङ्गपरित्यागात्षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति ॥
युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

योग साधना करने वाले साधकों को भय, क्रोध और आलस्य तथा बहुत सोना और बहुत जागना एवं अधिक खाना, और उपवास करना सदा वर्जित है। क्योंकि अति आहार बहुत परिश्रम तथा वृथा बहुत बोलना, नियमों का ग्रहण कर किसी नियम में प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना, एवं योग साधन के विरोधी लोगों का संग करना, और चंचलता, ये छः योग साधन का नाश करने वाले हैं, इसलिये इनका त्याग करना चाहिये। और उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, तथा शास्त्र द्वारा अपने कल्याण का दृढ़ निश्चय कर लेना और प्रतिकूल जनसंग का परित्याग करना, ये छः योग की सिद्धि कराने वाले हैं इनको ग्रहण करना चाहिये। जो साधक परिमित आहार और नियमित विहार करते हैं तथा जो नियम से ठीक समय पर सोते जागते हैं और अपने व्यवहारिक कर्म में आवश्यकतानुसार चेष्टा करते हैं उनको सब दुःखों का नाश करने वाला योग सिद्ध होता है।

प्राप्ति स्थान—

(१) श्री स्वामी महानन्द जी, शिवालय (बंगाली मंदिर)
ऋषिकेश (देहरादून)

(२) पं० विष्णुदत्तशर्मा शास्त्री, वैद्यराज
विष्णु फार्मेसी, कनखल (हरिद्वार)

(३) पं० मोहन स्वामी, भिषगाचार्य धन्वन्तरी।
वैद्य गाजियाबाद (मेरठ)

(४) अन्जनी ब्रदर्स-सिंगी गली, आगरा

(५) बाबू ज्वालाप्रसाद जी
कटड़ा बडियान, गली कलारांन्,
(देहली)

(६) सरस्वती सदन, देहली।

(७) रायबहादुर पं० बैजनाथ पांड्या B.A.
Rd. Dy. Collector
21/21 Kamacha
Benaras.

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२	प्रल	प्रवल
१८	११	ब्रह्म दिव्य ज्ञान	दिव्य ब्रह्म ज्ञान
२४	१५	भवन	भुवन
३१	१२	उस को	उन को
३३	६	प्रकुवर्ती	प्रकुर्वीत
३५	११	शुभ तीर्थ	शिव तीर्थ
३५	१२	पूर्णा	पूर्णो
४०	७	उस में	उस ने
४८	१८	विसोंपवित	विसोर्णवत्
५३	३	निर्विष्णो	निर्विण्णों
७७	२०	आसक्त है	आसक्त नहीं है
८५	६	षोऽशा	षोडश
६६	१४	पाप	पाय
१३८	१३	श्रेष्ठ सर्व	सर्व श्रेष्ठ
१७५	६	संसार तत्व	संसार में तत्त्व
२२४	५	का	को
२३१	६/७	छःठी पंक्ति के आरम्भ में विधि के पूर्व सातवीं पंक्ति के "अधिकारी नहीं है जो"	
२८४	२१	गुरु क्त्रैक	गुरुवक्त्रैक
३०२	७	उचडान	उडचान
३४८	११	छुद्र	क्षुद्र

त्रयोदश प्रकाश के आगे नीचे दिये हुवे विषय और हैं

जो अभी छप नहीं सके हैं। वे छपने वाले हैं उनमें षड्चक्र सोलहआधार-पञ्चव्योम-त्रिलक्ष्य जीवतत्त्व-प्रकृतितत्त्व-आत्म-तत्त्व-शिवतत्त्व-विद्यातत्त्व-ब्रह्मतत्त्व और पूर्णतत्त्व इत्यादि, तथा अष्टाङ्गयोग- यम- नियम- आसन- प्राणायाम- प्रत्याहार धारणा-ध्यान-समाधि और संयम, सिद्धियों के प्रकार और मंत्र जप से कुण्डलिनी जागरण, मन्त्र जप की विधि मंत्र सिद्धि उपाय, उनका फल इत्यादि और विश्वव्यापी प्राण, श्वास की क्रिया, उद्गीथविद्या वेद का अनादित्व वेद का परिमाण वेद की शाखायें और मन्त्रों की संख्या, वेद का रहस्य मनुष्य बुद्धि के अगम्य है इत्यादि, अपराविद्या-पराविद्या महाविद्या और परम-विद्या इत्यादि योगसाधना से ज्ञातव्य साधन के सभी ज्ञातव्य विषय प्रकाशित होंगे अतएव जिन सज्जनों ने यह ग्रन्थ लिया है वे कृपया ऋषिकेश के पते से पत्र द्वारा अपना पता नीचे लिखकर इस पृष्ठ को -) पोस्टेज स्टाम्प सहित भेजेंगे उनको यदि संभव हुवा तो बिना मूल्य भेज दिया जायगा, यदि यह भाग बड़ा हुआ तो -) काट कर आधे मूल्य पर वी० पी० द्वारा भेजा जायगा।

मंगाने वाले ग्राहक का पता } ______________________

____